एमएएचआई –604

मास्टर ऑफ आर्ट्स (हिस्ट्री)

तृतीय सेमेस्टर

भारत का इतिहास: सोलहवीं सदी ईस्वी के प्रारंभ से अठारहवीं सदी ईस्वी के मध्य तक

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष,

कुलपति,

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे, निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
2. प्रोफेसर रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, इतिहास विभाग एवं संस्कृति विभाग, जामिया मिल्लिआ इस्लामिय विश्वविद्यालय , दिल्ली
3. प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी , इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढ़वाल
4. प्रोफेसर वी.डी.एस. नेगी , इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा
5. डॉ. मदन मोहन जोशी, समन्वयक इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक: डॉ. मदन मोहन जोशी

इकाई लेखन-

ब्लॉक एक

इकाई एक- मुगल साम्राज्य की स्थापना: बाबर एवं हुमायूं, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी!

इकाई दो- शेरशाह, इस्लामशाह तथा सूरी सैनिक प्रशासन, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी!

इकाई तीन-मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार: अकबर, जहांगीर, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी!

ब्लॉक दो

इकाई एक - मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार: शाहजहां औरंगजेब, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी!

इकाई दो - मुगलों की धार्मिक नीति, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी!

इकाई तीन - मराठों का उदय: शिवाजी की उपलब्धियां, डॉ.सुबीर डे, सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज, जं.एन.यू., नई दिल्ली

ब्लॉक तीन

इकाई एक - मुगलों के विरूद्व विद्रोह, डॉ.सुबीर डे, सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज, जं.एन.यू., नई दिल्ली

इकाई दो - मुगल साम्राज्य का पतन, फरजाना असफाक,इतिहास विभाग, सत्यवती कालेज(सांध्य)दिल्ली विश्वविद्यालय,

इकाई तीन - साम्राज्य का विघटन और उत्तराधिकारी राज्य, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी!

आई.एस.बी.एन. :

कॉपीराइट : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष :

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल-263139

Printed at :

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

ब्लॉक एक

इकाई एकः मुगल सामांज्य की स्थापनाः बाबर एवं हुमायूँ

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 फरगना के शासक के रूप में, बाबर
1.3.1 समरकन्द के विरूद्ध बाबर का अभियान
1.3.2 बाबर का राजनीतिक निर्वासन
1.3.3 काबुल पर अधिकार
1.3.4 समरकन्द पर विजय
1.3.5 काबुल से वापसी
1.3.6 काबुल से भारत की ओर
1.4 भारत की राजनीतिक स्थिति
1.5 भारत की सामाजिक स्थिति
1.6 भारत की आर्थिक स्थिति
1.7 बाबर द्वारा भारत पर आक्रमण करने के कारण
1.7.1 बाबर की महत्वकांक्षाएँ
1.7.2 धन प्राप्ति की कामना
1.7.3 भारत में सुरक्षा
1.7.4 बाबर को आक्रमण करने का निमंत्रण
1.7.5 बाबर को अमीरों से मिली प्रेरणा
1.8 भारत पर बाबर के आक्रमण
1.8.1 पानीपत के प्रथम युद्ध का स्वरूप
1.8.2 पानीपत के युद्ध का परिणाम
1.8.3 खनुआ का युद्ध
1.8.4 बाबर और मेदिनी राय
1.8.5 अफगानों का दमन एवं घाघरा का युद्ध
1.9 हुमायूँ का प्रारम्भिक जीवन
1.9.1 हुमायूँ और शेरशाह
1.9.1.1 चुनार पर आक्रमण
1.9.1.2 बंगाल पर अधिकार
1.9.1.3 चौसा का युद्ध
1.9.1.4 कन्नौज का युद्ध
1.9.2 हुमायूँ का निर्वासन जीवन
1.9.3 हुमायूँ की भारत की और वापसी
1.9.3.1 पंजाब पर हुमायूँ का आक्रमण
1.9.3.2 मच्छीवाड़ा का युद्ध
1.9.3.3 सरहिन्द का युद्ध
1.9.4 हुमायूँ का प्रतिस्थापना
1.9.5 हुमायूँ का अंतिम दिन और मृत्यु
1.10 सारांश
1.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
1.12 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

भारत में मुगल वंश का संस्थापक जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर का जन्म 14 फरवरी 1983 को फरगना में हुआ था। उसके पिता का नाम उमर शेख मिर्जा एवं माता का नाम कुतलुग निगार खानम था। बाबर के पिता तैमूर के तथा माता चंगेज खां के वंशज थे। इस प्रकार उसमें मंगोलों की क्रूरता एवं तुर्कों की योग्यता व साहस का समन्वय था। इन गुणों के अतिरिक्त उसमें ईरानियों की विनीत विशिष्टता भी मौजूद थी, जो उसे पालन–पोषण के कारण उपलब्ध हुई थी। उसका कुटुम्ब तुर्की जाति के चुगताई वर्ग के अन्तर्गत आता था, किन्तु वह अपने को आम तौर पर मुगल ही मानता था। इसलिए, भारतीय इतिहास में इसका वंश मुगलिया वंश या तैमूरी वंश के नाम से जाना जाता है।

1.2 उद्‌देश्य

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगें।

- बाबर का भारत के विरूद्ध विभिन्न सैनिक अभियान।
- बाबर का चुनौतीपूर्ण जीवन एवं संघर्ष।
- बाबर का राजनीतिक निर्वासन।
- बाबर का काबुल विजय एवं पादशाह का पद धारण करना।
- बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक समाजिक एवं आर्थिक स्थिति।
- बाबर के भारत पर आक्रमण करने के कारण ।
- पानीपत का प्रथम युद्ध एवं मुगल वंश की स्थापना
- खानुआ एवं चन्देरी का युद्ध एवं राजपूत शक्ति पर प्रहार
- घाघरा का युद्ध एवं अफगान शक्ति पर अंकुश।
- बाबर एक सहित्यकार एवं कला के संरक्षक के रूप में।
- हुमायूँ का प्रारम्भिक जीवन और चुनौतियां के सम्बन्ध में
- हुमायूँ शेरशाह का संघर्ष तथा हुमायूँ का भारत से पलायन
- हुमायूँ का निर्वासन जीवन एवं धैर्यता का परिचय
- हुमायूँ का भारत वापसी एवं पुनः मुगल राज्य की स्थापना
- हुमायूँ का अंतिम दिन और अकस्मात मृत्यु

1.3 फरगना के शासक के रूप में बाबर

8 जून 1494 ई0 को अपने पिता उमर शेख मिर्जा के अकस्मात मृत्यु के पश्चात बाबर फरगना का शासक बना। इस समय की इसकी आयु मात्र 11 वर्ष 4 महिने की थी। बाबर ने अपनी दादी एशान दौलत बेगम की सहायता से शासन करना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में उसने अपने चाचा अहमद मिर्जा के साथ शान्ति समझौता हेतु प्रयत्न किया परन्तु उसका प्रयास असफल रहा और इन दोनों के बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया। कतिपय कारणों से युद्ध में बाबर को सफलता मिली और फरगना आक्रमणकारियों से बच गया। इसके पश्चात बाबर फरगना के शासक के रूप में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का सफल प्रयास किया। उसने शासन व्यवस्था को अच्छे ढ़ग से व्यवस्थित किया जिससे प्रजा में लोकप्रिय हो गया और जनता का समर्थन मिलने लगा।

1.3.1 समरकन्द के विरूद्ध बाबर का अभियान

फरगना की स्थिति सुधारने के पश्चात बाबर ने राज्य विस्तार की और अपना ध्यान केन्द्रित किया। बाबर तैमूर की राजधानी समरकन्द पर अधिकार करना चाहता था। समरकन्द फरगना की सीमा के

निकट था। इसलिए इस पर अधिकार हो जाने से पश्चिम की ओर से फरगना के राज्य की सुरक्षा हो जाती। इसके अतिरिक्त समरकन्द उस समय कला, शिक्षा और संस्कृति का केन्द्र भी था। सरकन्द पर अधिकार हो जाने से बाबर की प्रतिष्ठा एवं शक्ति में वृद्धि हो जाती। जुलाई 1494 ई0 मे समरकन्द के शासक अहमद मिर्जा की मृत्यु के पश्चात बाबर ने समरकन्द को जीतने का निश्चय किया, किन्तु 1496 ई0 के पूर्व वह इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण प्रयास न कर सका। बाबर ने इस वर्ष समरकन्द को जीतने का असफल प्रयत्न किया। 1497 ई0 मे उसने समरकन्द पर दूसरी बार आक्रमण किया। इस बार उसे अस्थायी सफलता मिली। उसने समरकन्द को जीत लिया और लगभग सौ दिनों तक वह तैमूर के राज सिंहासन पर विराजमान रहा। इसी बीच फरगना के विद्रोह की सूचना पाकर वह वहां के विद्रोहियों को दबाने के लिए फरगना गया। समरकन्द से हटते ही बाबर की सत्ता वहां समाप्त कर दी गई। राजधानी अंदीजान पर भी विद्राहियों ने कब्जा कर लिया। इधर फरगना भी बाबर के हाथों से समरकन्द के साथ–साथ निकल गया।

1.3.2 बाबर का राजनीतिक निर्वासन

बाबर अब केवल नाममात्र का शासक रह गया था, और उसके पास खोजंद नाम का एक छोटा सा पहाड़ी प्रदेश के अतिरिक्त कोई क्षेत्र नहीं बच पाया। उसके अपने लोग भी उसे छोड़कर अलग हो गये थे और उसके अनुयायियों की संख्या मात्र दो सौ रह गयी थी। बाबर ने अपने जीवन के दो वर्ष धुमक्कड़ के रूप में बिताया। उसने स्वंय लिखा है ''जब से मैं ग्यारह वर्ष का हुआ' मैने रमजान के दो त्योहार कभी एक स्थान पर नहीं मनाया। उसी दुर्भाग्य की चर्चा करते हुए इतिहासकार फरिश्ता ने लिखा है, कि 'भारत की गेंद अथवा शतरंज के बादशाह की भांति वह इधर उधर मारा–मारा फिरा जैसे समुन्द्र के किनारे कंकड़ धक्के खाते फिरते है। किन्तु इन दुर्भाग्य के दिनों में भी उसने अपने धैर्य एवं साहस का त्याग नहीं किया। वह अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त करने के लिए प्रयास करता रहा। 1498 में वह पुनः फरगना पर अधिकार कायम कर सका, परन्तु इस बार भी भाग्य ने पूरी तरह बाबर का साथ नहीं दिया। फरगना पर उसकी पकड़ स्थायी नहीं हो सकी। 1500 ई0 में फिर फरगना उसके हाथों से निकल गया तथा बाबर का धुमक्कड़ जीवन एक बार पुनः आरम्भ हुआ। बाबर के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह भी थी कि वह कभी भी विषम परिस्थिति में घबराता नहीं था। उसने अपने राज्य को पुनः हस्तगत करने क प्रयास जारी रखा।

1500–1501 में बाबर ने उजबेग नेता शैवानी खां को पराजित कर समरकन्द पर अधिकार कर लिया। वहीं उसने अपनी चचेरी बहन आयशा से शादी भी की। दुर्भाग्यवश न तो बाबर की शादी और न ही समरकन्द की विजय ही स्थायी सिद्ध हुई। आयशा ने बाद में उसका साथ छोड़ दिया। शैवानी खां ने भी कुछ ही महिनों के अन्दर सर–ए–पुल नामक स्थान पर हुए युद्ध में बाबर को पराजित कर उसे समरकन्द से भागने पर मजबूर कर दिया। उसे पुनः कंटीली राहों पर भटकना पड़ा।

1.3.1 काबुल पर अधिकार

समरकन्द और फरगना से निराश होकर बाबर ने अब अपना ध्यान अफगानिस्तान की ओर दिया। भाग्य ने इस बार बाबर का साथ दिया। कुंदुज के गर्वनर खुसरोशाह की पराजय के पश्चात उसकी सेना के बहादुर सिपाही बाबर से आ मिले। फलतः बाबर का हौसला पुनः बढ़ गया। इस समय अफगानिस्तान की राजधानी काबुल पर मुकीम अरगों का अधिपत्य था। 1504 ई0 में बाबर ने काबुल पर आक्रमण कर उस पर आसानी से अधिकार कर लिया। काबुल की विजय से बाबर के राजनीतिक जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया। काबुल विजय के पश्चात बाबर के जीवन में स्थिरता आई तथा आगामी सैनिक अभियानों के लिए तैयारी करने का उसे मौका मिला। काबुल पर अधिकार कर बाबर वहां का शासक बन बैठा। उसने तैमूरी परम्परा के विरूद्ध पहली बार मिर्जा की जगह पादशाह (बादशाह) की उपाधि धारण की। इससें बाबर की शक्ति और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई।

1.3.2 समरकन्द पर विजय

काबुल का शासक बनकर बाबर ने राज्य विस्तार की योजना बनाई। 1507 ई0 में उसने कंधार पर विजय प्राप्त कर इसे अपने भाई को सौंप दिया, परन्तु, शीघ्र ही कंधार पर मुगल अधिकार समाप्त हो गया। बाबर का समस्त ध्यान समरकन्द पर लगा हुआ था। इसे प्राप्त कने के लिए वह व्याकुल था। इसके लिए उसने अपने सम्बन्धियों से सहायता मांगी जो उसे नहीं मिली। हेरात से निराश लौटकर भी वह हताश नहीं हुआ। शैवानी खां की मृत्यु के पश्चात ईरान के शाह इस्माईल शफवी की सहायता से उसने समरकन्द बुखारा एवं खोरासां पर विजय प्राप्त की। बाबर की अभिलाषा अब पूरी हुईं उसने सजधज के तैमूर की राजधानी में प्रवेश किया। बाबर अब एक बड़े राज्य का मालिक बन चुका था। उसका राज्य ताशकंद, हिसार, समरकन्द, बुखारा, फरगना, काबुल और गजनी तक विस्तुत हो गया। उसके राज्य की सीमा अब भारतीय सीमा के निकट पहुंच गई।

1.3.5 काबुल से वापसी

दुर्भाग्यवश इस बार भी बाबर की सफलताएँ छणिक सिद्ध हुई। ईरान के शाह के वापस लौटते ही उजबेगों ने पुनः समरकन्द एवं निकटवर्ती प्रदेशों (ट्रांस ऑक्सियाना) पर आक्रमण कर दिया। 1512 ई0 में उजबेग नेता उबेदुल खां ने बाबर को परास्त कर समरकन्द से खदेड़ दिया। इतना ही नहीं, धीरे–धीरे ट्रांन्स आक्सियाना का समस्त प्रदेश (बदख्शां को छोड़कर) उसके हाथों से निकल गया। बदख्शां का प्रबंध खान मिर्जा के हाथों सौंपकर बाबर को 1513–14 में काबुल वापस लौटना पड़ा। इस प्रकार उत्तर–पश्चिम में साम्राज्य–विस्तार की उसकी योजना विफल हो गई

1.3.6 काबुल से भारत की ओर

1514–25 तक बाबर काबुल का शासक बना रहा। बाबर के जीवन के ये वर्ष अत्यन्त ही महत्वपूर्ण थे। हिन्दुस्तान की भावी विजय की योजनाएं और तैयारियां इसी दौरान हुई। कठिनाइयों एवं विपरित परिस्थितियों से जूझते–जूझते बाबर की राजनीतिक सूझ–बूझ अत्यधिक बढ़ गई थी। उसने राज्य की व्यवस्था को ठीक करने और सैनिक संगठन का गुण सीख लिया। निरंतर युद्धों में लिप्त रहने के कारण वह मध्य एशिया की लड़ाई जातियों की युद्ध प्रणाली से पूरी तरह परिचित हो गया। उजबेगों से उसने 'तुलगुमा' ब्यूह प्रणाली, ईरानियों से बन्दूकों का प्रयोग, तुर्कों से घुड़सवारी तथा मंगोलों और अफगानों से ब्यूह रचना सीखी। सैनिक संचालन के इन गुणों से बाबर को भारत में आशासीत सफलता मिली। काबुल में ही बाबर को उस्ताद अली तथा मुस्तफा नामक तुर्क तोपचियों की सेवाएं प्राप्त हुई, जिन्होनें बाबर के तोपखाने को सेना का सबसे महत्वपूर्ण विभाग बना दिया। काबुल में रहकर बाबर भारत की राजनीतिक गतिविधियों पर भी निगाह रखे हुए था। यहीं पर उसे दौलत खां, आलम खां, और राणा सांगा का भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण मिला। उत्तर पश्चिम में असफल होकर बाबर ने दक्षिण–पूर्व की और बढ़ने का प्रयास किया और इसमें वह सफल भी हुआ। भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने की प्रेरणा दी।

1.4 भारत की राजनीतिक स्थिति

1526 में भारत की राजनीतिक अवस्था अत्यन्त दयनीय थी। दिल्ली सल्तनत अपनी अंतिम सांस ले रहा था पूरे भारत में अनेक छोटे–छोटे राज्यों का उदय हो चुका था। इनमें आपसी एकता एवं संगठन न होकर आपसी प्रतिस्पर्द्धा एवं वैमनस्य की भावना थी। ये सदैव एक दूसरे को पराजित एवं अपमानित करने का सपना देखा करते थे। किसी भी महत्वकांक्षी आक्रमणकारी के लिए ऐसी स्थिति काफी उपयुक्त थी। भारत की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का वर्णन प्रो0 ईश्वरी प्रसाद ने इस ढ़ंग से

किया है। उन्हीं के शब्दों में 'सौलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत छोटे–छोटे राज्यों का एक संघ था। शक्तिशाली और दृढ़ संकल्प वाले आक्रमणकारी के लिए उसकी विजय एक अनायास शिकार थी'।
स्वंय बाबर ने भी भारत की तत्कालीन स्थिति (प्राकृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक) का वर्णन अपनी आत्मकथा तुजुक–ए–बाबरी (बाबरनामा) में किया है। उसके अनुसार, 'हिन्दुस्तान की राजधानी दिल्ली है। सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी के समय से लेकर फिरोज शाह के समय तक हिन्दुस्तान का अधिकतर भाग दिल्ली के सम्राटों के अधिकार में रहा। उस समय जब मैंने देश विजय की पांच मुसलमान राजा तथा दो काफिर शासन कर रहे थे। यहाँ पहाड़ी तथा जंगली प्रदेशों में छोटे–छोटे तथा महत्वहीन अनेक राजा और राय थे। बाबर ने जिन पांच मुसलमान और दो काफिर राज्यों का उल्लेख किया है, वे थे दिल्ली, गुजरात, बहमनी, मालवा, बंगाल (मुसलमान राज्य) तथा विजयनगर और मेवाड़ (काफिर राज्य)।

1.5 भारत की सामाजिक स्थिति

यद्यपि बाबर समान्यतः भारत की सामाजिक स्थिति के विषय में कोई विशेष बात नहीं कहता है, यद्यपि अन्य स्रोतों से ज्ञात होता है कि हिन्दुस्तान में उस समय मुसलमान और हिन्दू समाज के दो प्रमुख वर्ग थे। लम्बे समय तक एक साथ रहने की वजह से दोनो ने एक दूसरे के खान–पान वेश भूषा एवं रिति–रिवाजों को बहुत कुछ अपना लिया था। सल्तनत के अन्तर्गत मुसलमान शासक वर्ग में थे किन्तु हिन्दुओं की सहायता भी प्रशासन में ली जाती थी। हिन्दुओं से जजिया लिया जाता था। सामान्यतः उन्हें प्रशासन में महत्वपूर्ण पद नहीं दिए जाते थे, उन पर कुछ धार्मिक प्रतिबन्ध भी थे तथापि हिन्दू–मुस्लिम विभेद की खाई बहुत गहरी नहीं थी। अनेक स्थानीय सुल्तानों ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति भी अपनाई। भक्ति–आन्दोलन ने भी आपसी भेद–भाव को मिटाने मे मदद किया। बोलचाल की सामान्य भाषा हिन्दी अथवा उर्दू बन गई थी। हिन्दू–मुसलमान दोनों ही वर्गों में तीन सामाजिक उपवर्ग थे – सामंत वर्ग, माध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग, समाज में अनेक कुप्रथाएं – बाल विवाह, सती–प्रथा, जौहर, मधपान, ध्रुतकीड़ा, वेश्यावृत्ति इत्यादि प्रचलित थी। स्त्रियों की स्थिति दयनीय थी। राज्य की तरफ से शिक्षा की कोई भी व्यवस्था नहीं की गई थी।
हिन्दू विद्यार्थी पाठशाला एवं मुस्लिम बच्चे मकतब में शिक्षा ग्रहण करते थे। शिक्षा आम होने के कारण इससे अभिजात वर्ग ही लाभाविन्त होते थे। सामाजिक भेद–भाव एवं छुआ–छूत जैसी बुराईयां समाज में मौजूद थीं। इस प्रकार, भारतीय समाज अनेक दुर्बलताओं से ग्रस्त था।

1.6 भारत की आर्थिक स्थिति

भारत की आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए बाबर लिखता है कि हिन्दुस्तान एक विशाल देश है। यहां पर पर्याप्त मात्रा में सोना और चांदी है। यहां हर एक पेशे और व्यापार के अनगिनत व्यक्ति है। रोजगार एवं व्यापार में लोग पुश्तैनी आधार पर काम करते है। जहांगीर के समय के एक ग्रन्थ तारीख–ए–दाऊदी में भी बाबर के भारत आगमन के समय की आर्थिक अवस्था का उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार अलाउदीन खिलजी के शासन के अतिरिक्त अनाज कपड़ा एवं अन्य वस्तुएं सुल्तान इब्राहिम के समय मे जितनी सस्ती थी उतनी कभी भी नहीं हुई। एक बहलोली सिक्के मे दस मन अनाज, पांच सेर मक्खन (घी) तथा दस गज कपड़ा खरीदा जा सकता था। अत्यधिक वर्षा होने से उपज बहुत अधिक होती थी। अन्य विवरणों से भी भारत की आर्थिक सम्पन्नता की जानकारी मिलती है। भारतियों का मुख्य व्यवसाय कृषि उद्योग एवं व्यापार था। वस्त्र उद्योग सबसे प्रमुख उद्योग था। भारत का आंतरिक एवं विदेशी व्यापार काफी विकसित था। भारत का व्यापारिक सम्बन्ध चीन, अफगानिस्तान, ईरान, तिब्बत, भूटान, मध्य एशियाई देशों तथा यूरोप से भी था। भारत विदेशों को वस्त्र, अफीम, अनाज, नील, एवं गरम मसालों का निर्यात करता था, तथा घोड़ो का आयात मख्य रूप से करता था। भारत की आर्थिक सम्पन्नता जानकर ही बाबर ने भारत विजय की योजना बनाई। इस

प्रकार, बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक, सामाजिक, एवं सैनिक व्यवस्था अत्यन्त दुर्बल थी, राजनीतिक प्रतिर्स्पद्धा एवं विद्वेष की भावना चरम सीमा पर पहुंच गई थी। राष्ट्रीयता एवं देशप्रेम की भावना का सर्वथा अभाव था। भारतीय समाज एवं सैन्य व्यवस्था भी खोखली हो चुकी थी भारत बिल्कुल निःसहाय स्थिति में था। बाबर ने इस परिस्थति का लाभ उठाया।

1.7 बाबर द्वारा भारत पर आक्रमण करने के कारण

भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक विषमता का लाभ बाबर ने उठाया। उसने अपने राज्य विस्तार के लिए भारत पर आक्रमण किया। उसने तीन महत्वपूर्ण युद्धों (पानीपत, खानवा, और घाघरा) में विजय प्राप्त कर भारत में मुगल वंश की सत्ता स्थापित की। बाबर द्वारा भारत पर आक्रमण करने के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे।

1.7.1 बाबर की महत्वकाक्षाएं

भारत पर बाबर के आक्रमण करने के एक प्रमुख कारण उसकी असीम महत्वकाक्षाएं थी। बाबर तैमूर के कार्यों से अत्यन्त ही प्रभावित हुआ था। उसने देखा था कि किस प्रकार तैमूर ने भारतीय धन और संसाधनों का सहारा लेकर अपने मध्य–एशियाई साम्राज्यों को सुदृढ़ किया था तथा राजधानी को कला–कौशल का केन्द्र बना दिया था। इतना ही नहीं पंजाब का एक भाग तो तैमूर एवं उसके वंशजो के अधीन रहा भी था। अतः अफगानिस्तान पर अधिकार करते ही वह पंजाब पर अधिकार करना अपना कानूनी अधिकार मानने लगा। बाबर के समक्ष एक अन्य कारण भी था जिसने उसे भारत पर आक्रमण करने को प्रेरित किया। वह देख चुका था उसके राज्य का विस्तार मध्य–एशिया में उत्तर पश्चिम में संभव नहीं था। इसलिए एक महत्वकांक्षी शासक होने की वजह से उसने दक्षिण पूर्व अर्थात भारत की तरफ पांव फैलाकर एक साम्राज्य की स्थापना करने का निश्चय किया।

1.7.2 धन प्राप्ति की कामना

बाबर द्वारा भारत पर आक्रमण किए जाने का एक मुख्य कारण धन प्राप्त करना भी था। उसके अपने राज्य काबुल की आय तथा इसके आर्थिक साधन अत्यन्त ही सीमित थे। इनसे सेना एवं प्रशासन का खर्च जुटाना भी कठिन था। इसके विपरीत भारत अपनी धन–सम्पदा के लिए विख्यात था। भारत से पर्याप्त मात्रा में धन प्राप्त कर बाबर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता था। इसलिए, वह भारत की तरफ आकर्षित हुआ।

1.7.3 भारत में सुरक्षा

यद्यपि बाबर ने बदख्शां, काबुल और कंधार पर अधिकार कर लिया था ; तथापि उसकी स्थिति निरापद नही हुई थी। उसे सदैव उज़बेगों के आक्रमण का खतरा सताता रहता था। भारत (पंजाब) पर विजय प्राप्त करने से उसे उजबेगों के आक्रमण के अवसर पर बढ़िया शरण–स्थल पंजाब में मिल सकता था। इसके अतिरिक्त वह पंजाब को केन्द्र बनाकर उजबेगों के विरूद्ध अभियान भी चला सकता था।

1.7.4 बाबर को आक्रमण करने का निमंत्रण

1526 ई0 में बाबर के आक्रमण का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह था कि इब्राहिम लोदी से असंतुष्ट कुछ अफगान सरदार बाबर की सहायता से इब्राहिम की सत्ता समाप्त करने की योजना बना रहे थे। इसी योजना के तहत संभवतः आलम खां ने बाबर से मुलाकात कर सहायता की मांग की। 1524 ई0 में पंजाब के गवर्नर दौलत खां ने अपने पुत्र दिलावर खां को बराबर के पास भेजकर इब्राहिम पर

आक्रमण करने का प्रस्ताव रखा। दौलत खां ने बराबर को सम्भावित आक्रमण के समय सहायता करने का वचन भी दिया। इसके पूर्व ही आलम खां ने भी बाबर से मुलाकात कर उसके सामने प्रस्ताव रखा था कि अगर आलम खां को दिल्ली की गद्दी मिल जाएगी तो वह बाबर को लाहौर और पश्चिमी पंजाब के इलाके सौंप देगा। इन घटनाओं ने बाबर के सामने भारतीय राजनीति की दुर्लबताओं को स्पष्ट कर दिया। अफगानों के आपसी वैमनस्य को भाँपकर उसने पंजाब की तरफ बढ़ने का निश्चय किया।

जिस समय पंजाब में उपुर्यक्त घटनाएँ घट रही थीं उसी समय राणा सांगा ने भी बाबर के पास भारत पर आक्रमण करने का सन्देश भेजा। बाबरनामा में बाबर इसे स्वीकार करता है। राणा सांगा भी अफगान की शक्ति को समाप्त कर हिन्दू राज्य का स्वप्न संजो रहा था। सांगा समझता था कि अन्य मध्य एशियाई लुटेरों की भांति बाबर भी भारत से धन लूटकर वापस चला जाएगा और उसके पश्चात् वह स्वयं दिल्ली तक पहुंचेगा तब तक वह भी आगरा के निकट आ जाएगा। राणा सांगा के निमंत्रण से निश्चय ही बाबर का हौसला बढ़ा होगा और उसने भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया होगा।

1.7.5 बाबर को अमीरों से मिली प्रेरणा

यह भी कहा जाता है कि बाबर को भारत पर आक्रमण करने की प्रेरणा उसके एक अमीर से मिली थी। बाबर स्वयं अपनी आत्मकथा, बाबरनामा में उल्लेख करता है। उसने कहा था ''इसलिए आगे बढ़िये और संसार के सर्वश्रेष्ठ देश (भारत) पर अधिकार कर लीजिए। सिन्धु के उस पार एक साम्राज्य की स्थापना कीजिये जिसके लिए आपके पूर्वज मार्ग दिखा गये है। जाइए और हिन्दुस्तान के मध्य में अपना दरबार लगाइए और तातारी की बर्फ और तुषार को छोड़कर हिन्दुस्तान के सुखों का आनन्द लुटिए। हर वस्तु आपको दक्षिण की ओर आमंत्रित कर रही है। ईश्वर आपको काबुल तक लाया है और हिन्दुस्तान के मार्ग पर खड़ा कर दिया है। ईश्वर और मुहम्मद साहब की आज्ञा है कि आप भारतीयों की मूर्ति पूजा का नाश करें''। बाबर पर निश्चय ही इसका गहरा प्रभाव पड़ा होगा। भारत की आर्थिक सम्पन्नता देखकर बाबर प्रारम्भ से ही भारत विजय के लिए लालयित था परन्तु उसे कभी इसका उचित अवसर नही मिल सका था मौका मिलते ही बाबर ने भारत पर आक्रमण कर दिया।

1.8 भारत पर बाबर के आक्रमण

पानीपत की प्रथम लड़ाई से पूर्व बाबर ने भारत पर पाँच बार आक्रमण कर चुका था। शायद ये आक्रमण शत्रु की स्थिति और शक्ति को समझने के उद्देश्य से किये गये थे। 1519 ई0 से प्रारम्भ में उसने भारत में प्रथम अभियान किया। यह युसुफजाई कबीला के विरूद्ध किया गया था। उसने युसुफजाइयों को निमंत्रण भेजकर बाजौर के दुर्ग पर अधिकार किया। बाजौर के पश्चात् उसने झेलम नदी के किनारे स्थित भीरा पर भी अधिकार कर लिया। भीरा से ही उसने अपने दूत मुल्ला मुर्शीद के द्वारा दौलत खां लोदी और इब्राहीम लोदी के पास संदेश भेजवाया कि जिन स्थानों पर बाबर के पूर्वजों का अधिकार था उन्हें वापस लौटा दिया जाए। दौलत खां ने इस दूत को दिल्ली जाने नहीं दिया बल्कि लाहौर में ही रोक लिया। बाबर की भीरा विजय अस्थायी सिद्ध हुई। उसके काबुल वापस जाते ही बाबर के प्रतिनिधि हिन्दूबेग को भीरा से भगा दिया गया। सितम्बर 1519 ई0 में बाबर ने दूसरी बार भारत का रूख किया। वह खैबर मार्ग से भारत की तरफ बढ़ा। वह युसुफजाइयों का दमन करना तथा पेशावर को अपनी सैनिक शक्ति का केन्द्र बनाना चाहता था, लेकिन बदख्शां में उपद्रव की सूचना पाकर उसे वापस लौटना पड़ा।

बाबर का तीसरा आक्रमण 1520 ई0 में हुआ। इस बार पुनः बाजौर तथा भीरा पर विजय प्राप्त की। सियालकोट पर भी उसका अधिपत्य हो गया। इन विजयों से भारत का द्वार मुगलों के लिए खुल गया। बाबर आगे बढ़ने की योजना बना ही रहा था कि उसे कंधार में शाहबेग अरगों के उपद्रव की सूचना मिली। फलतः बाबर को वापस लौटना पड़ा। इसी समय बाबर को पंजाब के गवर्नर दौलत खां

लोदी का निमंत्रण, भारत पर आक्रमण करने के लिए मिला। इसे स्वीकार कर बाबर पंजाब की तरफ बढ़ा। उसने लाहौर, दीपालपुर एवं जालंधर पर अधिकार कर लिया। लाहौर में ही बाबर ने पहली बार इब्राहिम लोदी की सेना को परास्त किया। बाबर ने युद्ध के पश्चात् आलम खां को दीपालपुर दिया तथा दौलत खां लोदी को जालंधर , सुलतानपुर तथा कुछ अन्य क्षेत्र दिया जिससे वह असंतुष्ट हो उठा। उसने बाबर के विरूद्ध षड्यंत्र किया जो विफल हो गया। बाबर के जाने के बाद पुनः दौलत खां लोदी अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास करने लगा। उसने आलम खां को भी दीपालपुर से निकाल दिया। अब आलम खां बाबर की शरण में पहुंचा। नवम्बर 1525 ई0 में बाबर दौलत खां लोदी के विरूद्ध आगे बढ़ा, मार्ग में हुमायूँ और ख्वाजा कलां भी अपनी सेनाओं के साथ बाबर से आ मिले। बाबर की सैनिक शक्ति को देखकर दौलत खां लोदी को आत्मसमर्पण करना पड़ा। उसे गिरफ्तार कर भीरा भेजा गया, परन्तु मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो गई। उसका पुत्र गाजी खां, इब्राहीम की शरण में चला गया परन्तु दिलावर खां बाबर के साथ ही बना रहा। बाबर ने समस्त पंजाब में आसानी से अधिकार कर लिया। अब दिल्ली का रास्ता उसके सामने साफ था।

1.8.1 पानीपत के प्रथम युद्ध का स्वरूप

बाबर द्वारा पंजाब पर अधिकार किया जाने तक इब्राहीम लोदी ने बाबर को आगे बढ़ने से रोकने का कोई विशेष प्रयास नही किया था, परन्तु जब बाबर पंजाब से आगे दिल्ली की ओर बढ़ा तो इब्राहिम ने स्वयं ही उसका मुकाबला करने का निश्चय किया। वह एक विशाल सेना के साथ पानीपत के मैदान की तरफ बढ़ा। बाबर भी तेजी से लाहौर से पानीपत की तरफ चला। मार्ग में उसने अनेक लोदी चौकियों पर अधिकार कर लिया। 12 अप्रैल 1526 को बाबर पानीपत पहुंचा जहां अफगान सुल्तान एक बड़ी सेना के साथ उसकी प्रतिक्षा कर रहा था।

पानीपत के युद्ध के अवसर पर दोनों पक्षों की सैन्य संख्या क्या थी यह निश्चित तौर पर नही कहा जा सकता है। बाबर अपने संस्मरण में सैनिकों की संख्या के विषय में नही बताता है। कहा जाता है कि इब्राहिम की सेना में एक लाख सैनिक एवं एक हजार हाथी थे। इस संख्या के विषय में संदेह व्यक्त किया गया है। वस्तुतः इब्राहिम की सेना में वास्तविक सैनिक के अतिरिक्त बड़ी संख्या में सेवक भी थे जिनका युद्ध से कोई वास्ता नही था।

सर जादूनाथ सरकार के अनुसार इब्राहिम की सेना में करीब 20,000 घुड़सवार थे। इसी संख्या के लगभग सरदारों द्वारा भेजे गये घुड़सवार सैनिक एवं करीब 30,000 पैदल सैनिक थे। हाथियों की एक बड़ी संख्या भी उसके पास थी। इसके विपरीत बाबर की सेना अत्यन्त ही छोटी थी। अबुल फजल के अनुसार बाबर की सेना में 12000 घुड़सवार थे। रशब्रुक विलियम यह संख्या 8000 बताते हैं। घुड़सवारों के अतिरिक्त बाबर के पास एक तोपखाना भी था। इसके अतिरिक्त पंजाब विजय के पश्चात् उसकी सेना में भारतीय मित्रों के सैनिक अफगान सैनिक एवं किराये के तुर्की सैनिक शामिल हो चुके थे। अतः बाबर की सेना भी कम नहीं थी लेकिन यह निश्चित रूप से इब्राहिम की सेना से छोटी मगर ज्यादा सशक्त थी।

पानीपत पहुंचकर बाबर स्थिति का जायजा लेता रहा। उसने खाइयां खोदकर और पेड़ो की बार खड़ी कर अपनी सुरक्षा की व्यवस्था की। खाइयों के सामने गाड़िया खड़ी कर उसने सुरक्षात्मक दीवार सी बना डाली और अधिक सुरक्षा और तोपचियों की सुविधा के लिए हर दो गाड़ियों के बीच लकड़ी की तिपाइयों पर पाँच या छः खालें खड़ी कर दी गई जिससे कि गोलंदाज सुगमतापूर्व खड़ा होकर गोला दाग सके। हर दो गाड़ियों के पहियों को मजबूती से बांध दिया गया तथा गाड़ियों के मध्य आने–जाने के लिए मार्ग छोड़ दिया गया, जिससे आवश्यकतानुसार बाबर के घुड़सवार निकल सकें। इस प्रकार बाबर ने अपनी व्यूह–रचना 'रूमी' अथवा 'ऑटोमन' पद्धति द्वारा किया। बाबर ने अपनी समस्त सेना को दाहिने, मध्य, बायां, अग्रिम और सुरक्षित पंक्तियों में विभाजित कर रखा था। इसके अतिरिक्त दो विशाल पार्श्व दल या तुलुगमा की भी व्यवस्था की गई। बाबर की सहायता के लिए हुमायूँ, बाबर के

योग्य सरदार और दो कुशल तोपची–उस्ताद अली और मुस्तफा भी मैदान में थे। बाबर की तुलना में इब्राहिम की सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ नही थी।

21 अप्रैल 1526 को प्रातः ही दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। अफगान तेजी से आगे बढ़े परन्तु बाबर की सुरक्षा पंक्ति को देखकर उनमें घबराहट फैल गई। बाबर ने मौके का लाभ उठाकर इब्राहिम पर चारों ओर से आक्रमण कर उसे घेर लिया। बाबर के तीरंदाजों और तोपचियों, उसकी तुलुगमा पद्धति ने इब्राहिम की सेना के पाँव उखाड़ दिए। इब्राहिम वीरतापूर्वक युद्ध में बाबर का सामना करता रहा परन्तु युद्धक्षेत्र में ही पन्द्रह हजार सैनिकों के साथ मारा गया। इब्राहिम के साथ मारे जाने वालों में ग्वालियर का राजा विक्रम भी था। बाबर अपने संस्मरण में लिखता है कि आगरा पहुंचकर उसे ज्ञात हुआ कि पानीपत के मैदान में 40–50 हजार व्यक्ति मारे गये थे। निश्चित ही बाबर की यह उक्ति अतिश्योक्तिपूर्ण है तथापि इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कुछ घंटों के युद्ध ने ही भारत का भाग्य परिवर्तित कर दिया। इस महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख करते हुए बाबर कहता है, ''सर्वशक्तिमान परमात्मा की अपार अनुकंपा से यह कठिन कार्य मेरे लिए सुगम बन गया और वह विशाल सेना आधे दिन में ही मिट्टी में मिल गई''।

1.8.2 पानीपत के युद्ध का परिणाम

पानीपत के युद्ध के परिणाम भारतीय इतिहास और बाबर के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण एवं निर्णायक सिद्ध हुए। पानीपत के युद्ध ने भारतीय इतिहास के एक अध्याय को समाप्त कर दूसरे की शुरूआत कर दी। इस युद्ध ने विघटनशील तुर्क–अफगान अमीरों को अपने आघात से कुचल दिया तथा भारतीय राजनीति में एक नए खून–मुगल का प्रवेश कराया। बाबर की विजय ने लोदी वंश की सत्ता समाप्त कर दी। अफगान कुछ समय के लिए भारत की सर्वोच्चसत्ता से वंचित कर दिए गये। अब लोदी वंश की जगह एक ऐसे वंश मुगल का शासन प्रारम्भ हुआ। जिसने अपना विदेश दृष्टिकोण पूरी तरह से त्याग कर हर तरह से अपना भारतीकरण किया तथा लगभग पन्द्रह वर्षों से मध्यांतर के बाद लगभग तीन शताब्दियों तक भारत का सम्राट बने रहने का गौरव प्राप्त किया। इस वंश ने अनेक योग्य शासकों को दिया जिन्होंने भारत की सांस्कृतिक, कलात्मक एवं भौतिक प्रगति में अमूल्य योगदान दिया।

पानीपत के युद्ध के पश्चात् बाबर के अधीन पंजाब से आगरा तक का क्षेत्र आ गया। लोदियों (अफगानों) की कमर टूट चुकी थी। इतिहासकार लेनपूल के शब्दों में, ''अफगानों के लिए पानीपत का युद्ध उनका दुर्भाग्य था। इसने उनके राज्य और शक्ति का अंत कर दिया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप भारत में बाबर की विजय का दूसरा चरण पूरा हुआ। बाबर के घुमक्कड़ी के दिन समाप्त हो गए। उसकी विजयों में भाग बांटने वाला कोई नही था। आलम खां और दौलत खां की शक्ति समाप्त हो चुकी थी। राजा सांगा मेवाड़ में ही व्यस्त था। अतः निर्विरोध बाबर, लोदी राज्य का मालिक बन गया। 27 अप्रैल 1526 को दिल्ली में 'खुतबा' में उसका नाम पढ़ा गया हुमायूं ने आगरा पर अधिकार कर बाबर को वहां का बादशाह घोषित किया। अब लोदियों के सम्पूर्ण राज्य पर उसकी सत्ता स्थापित हो चुकी थी। आगरा में एकत्र लोदी खजाना भी मुगलों को मिल गया इससे बाबर की आर्थिक कठिनाई दूर हो गई।

सैनिक दृष्टिकोण से भी पानीपत के युद्ध के परिणाम महत्वपूर्ण निकले। इस युद्ध ने भारतीय सैन्य दुर्बलता को उजागर कर दिया। इब्राहिम की विशाल सेना को बाबर ने अपने कुशल सैन्य संचालन से परास्त कर दिया। इस युद्ध में भारत में पहली बार तोपखाने एवं तुलुगमा पद्धति का प्रयोग बाबर ने सफलतापूर्वक किया। इस नवीन युद्ध पद्धति ने भारत में युद्ध स्वरूप ही बदल दिया। इसके साथ–साथ बाबर की विजय से उसकी सैनिक क्षमता की धाक भारतीय राज्यों पर जम गई। वे उससे भयभीत हो गये, परन्तु सभी राज्यों की ऐसी स्थिति नही थी। अतः शीघ्र ही उत्तर भारत पर अधिपत्य स्थापित करने के लिए एक नये संघर्ष का आरम्भ हुआ।

1.8.3 खनुआ की युद्ध (16 मार्च 1527)

पानीपत के पश्चात् बाबर द्वारा भारत में लड़े गये युद्धों में सबसे महत्वपूर्ण खनुआ का युद्ध था जहां पानीपत के युद्ध में विजय ने बाबर को दिल्ली और आगरा का शासक बना दिया, वहीं खनुआ के युद्ध ने बाबर के प्रबलतम शत्रु राणा सांगा का अंत कर बाबर की विजयों को स्थायित्व प्रदान किया। राणा–सांगा बाबर द्वारा कालपी, बयाना, आगरा, और धौलपुर पर अधिकार किए जाने से क्रुद्ध था और इसे अपने राज्य पर बाबर का अतिक्रमण मानता था। दूसरी तरफ पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम के विरूद्ध राणा सांगा ने बाबर की सहायता नही की जिसके लिए बाबर उसे जिम्मेदार एवं विश्वासघाती मानता था। अतः दोनों पक्षों में युद्ध अवश्यंभावी बन गया।

राणा सांगा ने बाबर पर आक्रमण करने के पूर्व अपनी स्थिति सुदृढ़ की। उसकी सहायता के लिए हसन खां मेवाती, महमूद लोदी तथा उनके राजपूत सरदार अपनी–अपनी सेना के साथ आ पहुंचे। इससे राणा सांगा का हौसला बढ़ गया वह एक विशाल सेना के साथ बयाना एवं आगरा पर अधिकार करने को बढ़ा। बयाना के शासक ने बाबर से सहायता की याचना की। बाबर ने ख्वाजा मेंहदी को राजपूतों का सामना करने को भेजा, लेकिन सांगा ने उसे परास्त कर बयाना पर अधिकार कर लिया। सीकरी के पास भी आरम्भिक मुठभेड़ में मुगल सेना को पराजित होकर पीछे हटना पड़ा। इन आरम्भिक विफलताओं से मुगलों में भय व्याप्त हो गया है। मुगल सैनिक आतंरिक हो गये, उनका मनोबल गिर गया। राजपूत की विजय से प्रभावित होकर कुछ अफगान सरदारों ने भी बाबर का साथ छोड़ दिया। यह एक कठिन परिस्थिति थी लेकिन बाबर ने धैर्यपूर्वक परिस्थिति का मुकाबला किया। अपनी सेना के मनोबल को बढ़ाने के लिए उसने 'जिहाद' की घोषणा कर दी। उसने शराब नही पीने की कसम खाई तथा शराब की सभी बरतनों को तोड़ दिया। उसने मुसलमानों पर से तमगा (एक प्रकार का सीमा कर) भी उठा लिया। उसने अपने–अपने सैनिकों से निष्ठापूर्वक युद्ध करने एवं प्रतिष्ठा की सुरक्षा करने का वचन लिया। सेना को यह भी आश्वासन दिया गया कि युद्ध के पश्चात जो सैनिक घर जाना चाहेंगे उन्हें जाने दिया जाएगा। इससे बाबर के सैनिकों में उत्साह जगा और वे युद्ध के लिए तत्पर हो गये।

बाबर राणा सांगा का मुकाबला करने के लिए फतेहपुर सीकरी के निकट खनुआ नामक स्थान पर पहुंचा। राणा सांगा वहीं उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। बाबर ने जिस व्यूह रचना का प्रयोग पानीपत में किया था वही यहां भी किया। बाबर के अनुसार राणा सांगा की सेना में 2 लाख से अधिक सैनिक थे परन्तु यह संख्या अतिश्योक्ति पूर्ण है। परन्तु यह निश्चित है कि बाबर की तुलना में राजपूतों की सेना की संख्या अधिक थी। 16 मार्च 1527 को खनुआ के मैदान में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। राजपूत वीरता से लड़े परन्तु बाबर के तोपखाना और उसकी 'तुलुगमा' युद्ध पद्धति ने राजपूतों के पाँव उखाड़ दिए। अनेक राजपूत योद्धा युद्ध क्षेत्र में मारे गये। राणा सांगा गम्भीर रूप से घायल अवस्था में रणक्षेत्र से निकल भागा ताकि वह पुनः बाबर से युद्ध कर सके परन्तु उसके सामन्तों ने बाद में विष देकर उसकी हत्या कर दी। बाबर की यह अद्भुत एवं महान विजय थी। युद्ध के इस अपार सफलता के पश्चात् उसने गाजी की उपाधि धारण की। पानीपत में एक अयोग्य और दुर्बल अफगान सुल्तान की पराजय हुई थी परन्तु खनुआ में वीर राणा सांगा के साथ–साथ राजपूत अफगानों का संयुक्त 'राष्ट्रीय मोर्चा' भी समाप्त हो गया। इस पराजय से राजपूत शक्ति को गहरा धक्का लगा।

1.8.4 बाबर और मेदिनी राय

यद्यपि खनुआ के युद्ध में राजपूत शक्ति को गहरी क्षति पहुंची तथापि इससे राजपूत शक्ति का सर्वनाश नही हो गया। राणा सांगा की तरह चन्देरी का शासक भी एक वीर राजपूत शासक था। राजपूताना पर अधिकार करने से पूर्व बाबर का इसके साथ संघर्ष होना अनिवार्य था क्योंकि राणा संग्राम सिंह के साथ ही मेदिनी राय भी राजपूतों को संगठित करने का प्रयास कर रहा था। अतः

खनुआ के पश्चात बाबर ने विद्रोहियों के दमन का निश्चय किया। अलवर, चंदवार, रापड़ी, इटावा पर मुगलों ने पुनः अधिकार कर लिया। अब बाबर चंदेरी की ओर बढ़ा। उसने मेदिनी राय को अपने पक्ष में मिलाने एवं चन्देरी के बदले शम्शाबाद देने का प्रस्ताव रखा परन्तु मेदिनी राय ने बाबर के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। युद्ध समाप्त होकर बाबर ने चंदेरी के दुर्ग को घेर लिया। राजपूत दुर्ग की रक्षा नही कर सके उन्हें पराजित होना पड़ा। जनवरी 1528 ई0 को बाबर का अधिकार चन्देरी पर हो गया।

1.8.5 अफगानों का दमन एवं घाघरा का युद्ध

राजपूतों पर अपना प्रभाव स्थापित करने के पश्चात बाबर ने पुनः अफगान विद्रोहियों की ओर ध्यान दिया। जिस समय बाबर चन्देरी अभियान में व्यस्त था। अफगानों ने अवध में विद्रोह कर दिया। शम्साबाद और कन्नौज पर अधिकार कर वे बिहार के अफगान शासक की सहायता से आगरा विजय की योजना बना रहे थे। अफगान विद्रोहियों को बंगाल का सुल्तान नुसरत शाह भी सहायता पहुँचा रहा था। अतः चंदेरी विजय के पश्चात उसने अफगानों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

चन्देरी से बाबर अवध की तफर बढ़ा। उसके आगमान की खबर सुनकर अफगान चेता बिब्बन बंगाल भाग गया। बाबर ने लखनऊ पर अधिकार कर लिया। इधर बिहार में अफगान महमूद लोदी के नेतृत्व में अपने आपको संगठित कर रहे थे। बंगाल के सुल्तान से भी उन्हें सहायता मिल रही थी। अफगानो ने बनारस से आगे बढ़ते हुए चुनार का दुर्ग घेर लिया। इन घटनाओं की सूचना पाकर बाबर तेजी से बिहार की ओर बढ़ा। उसके आगमन की सूचना पाकर अफगान भयभीत होकर चुनार का घेरा उठाकर भाग खड़े हुए। बाबर ने महमूद लोदी को शरण नहीं देने का निर्देश दिया, परन्तु नुसरत शाह द्वारा प्रस्ताव ठुकरा दिया गया। फलतः 6 मई 1529 को घाघरा के निकट बाबर और अफगानों की मुठभेड़ हुई। अफगान बुरी तरह पराजित हुए। महमूद लोदी ने भागकर बंगाल में शरण ली।

घाघरा का युद्ध भारत में बाबर का अंतिम युद्ध था। भारत में लड़े गये युद्धों के परिणाम स्वरूप बाबर एक बड़े राज्य का स्वामी बन गया। उसका राज्य सिन्ध से बिहार तथा हिमालय से ग्वालियर और चन्देरी तक विस्तृत था। उसने भारत में मुगलों की सत्ता स्थापित कर दी थी। भारत में बाबर का अधिकांश समय युद्धों में ही व्यतीत हुआ। अतः वह प्रशासनिक व्यवस्था की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सका। अंतिम समय में वह काबुल जाना चाहता था, वह लाहौर तक गया भी, परन्तु हुमायूँ की बिमारी की वजह से उसे आगरा वापस आना पड़ा स्वंय बाबर का स्वास्थ्य गिर रहा था। महल में भी षड़यन्त्र होने लगे थे। ऐसी ही परिस्थिति में 23 दिसम्बर 1530 को बाबर ने हुमायूँ को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। 26 दिसम्बर 1530 को आगरा में बाबर की मृत्यु हुई।

1.9 हुमायूँ का प्रारम्भिक जीवन (1508–30)

बाबर की मृत्यु के पश्चात 30 दिसम्बर 1530 को हुमायूँ का आगरा में राज्यभिषेक हुआ। यद्यपि, अपनी मृत्यु के पूर्व ही बाबर ने हुमायूँ को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था। तथापि बाबर की मृत्यु के चौथे दिन ही वह गद्दी पर बैठ सका। इस विलम्ब का कारण सम्भवतः बाबर के वजीर निजामुद्दीन अली अहमद खलीफा का षड़यंत्र था। वह बाबर के बहनोई मेंहदी ख्वाजा को गद्दी दिलवाना चाहता था, परन्तु षड़यन्त्र विफल हो गया और हुमायूँ आगरा की गद्दी पर बैठा। हुमायूँ के जीवन एवं कार्यकलापों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है, प्रारम्भिक जीवन (1508–30) शेरशाह से संघर्ष (1530–56) निर्वासित जीवन (1540–55) एवं सत्ता की पुर्नस्थापना (1555–56)।

हुमायूँ का पूरा नाम नासिरूद्दीन मुहम्मद हुमायूँ था। उसका जन्म 6 मार्च, 1508 को काबुल में हुआ था। उसकी माता माहिम बेगम थी। बाबर हुमायूँ से अगध प्रेम करता था और उसे अपने पुत्रों में सबसे अधिक योग्य समझता था। गुलबदन बेगम ने हुमायूँ में लिखा है कि बाबर ने अपने राज्य का निर्माण हुमायूँ के लिए ही किया था। अपने प्रिय पुत्र की शिक्षा–दिक्षा का बाबर ने उचित प्रबन्ध किया था।

उसे अरबी, फारसी एवं तुर्की भाषा की शिक्षा के अतिरिक्त सैनिक शिक्षा भी दी गई। वह तीरदांजी एवं घुड़सवारी में माहिर था। उसे युद्ध के मोरचे तथा व्यूह सरंचना एवं इसे तोड़ने की भी शिक्षा दी गई। 1526 ई0 के पानीपत के युद्ध में हुमायूँ ने बाबर की जीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। आगरा विजय में भी मुगल सेना ने हुमायूँ के नेतृत्व में कार्य किया था। इससे हुमायूँ की सैनिक क्षमता का आकलन किया जा सकता है।

1.9.1 हूमायूँ और शेर खां– (1530–40)

हुमायूँ का प्रबलतम शत्रु अफगान सरदार शेर खां था। वह एक योग्य एवं महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। अफगानों की दुर्बल स्थिति देखकर उसने अपनी शक्ति बढ़ाना आरम्भ कर दी। इसके लिए वह युद्ध एवं कूटनीति दोनों का सहारा लिया। बिहार के अल्पायु शासक जलाल खां के संरक्षक के रूप में वह बिहार का वास्तविक शासक बन बैठा। शेर खां की बढ़ती शक्ति से भयभीत होकर एवं अफगानों के दम के उद्देश्य से हुमायूँ ने गद्दी पर बैठने के पश्चात शेर खां पर आक्रमण कर चुनार का घेरा डाल दिया। हुमायूँ को बहकाकर शेर खां ने उसकी अधीनता को स्वीकार करने का ढ़ोंग किया। फलतः हुमायूँ चुनार उसी को सुपुर्द कर वापस लौट गया। 1533–36 के मध्य जब हुमायूँ आंतरिक विद्रोहो को दबाने मालवा एवं गुजरात की विजय में व्यस्त था, तब शेर खां ने अपनी शक्ति बढ़ा ली। उसने बिहार की प्रशासनिक व्यवस्था सुदृढ़ कर ली तथा एक विशाल और मजबूत सेना इकट्ठी की उसकी शक्ति से प्रभावित हो कर अफगान उसे ही अपना नेता मानने लगे थे। शेर खां ने हजरत–ए–आला की भी उपाधी धारण की। यद्यपि उसने अभी तक मुगलों के विरूद्ध खुला विद्रोह नहीं किया था, तथापि अंदर ही अंदर वह इसकी तैयारी कर रहा था। वह गुप्त रूप से बहादुर शाह की सहायता भी कर रहा था। उसका पुत्र कुतुब खां भी अपनी सैनिक टुकड़ी के साथ आगरा से भागकर अपने पिता के पास पहुँच चुका था। शेर खां ने बंगाल पर चढ़ाई कर तेलियागढ़ी पर अधिकार कर लिया। बंगाल के नए सुल्तान महमूद शाह ने शेर खां को धन देकर अपनी रक्षा की।

1.9.1.1 चुनार पर आक्रमण

जुलाई 1537 में हुमायूँ ने शेर खां के विरूद्ध अपना अभियान आरम्भ किया। मार्ग में उसने चुनार के दुर्ग का घेरा डाला। यह दुर्ग शेर खां के अधीन था। चुनार का सामरिक महत्व बहुत अधिक था। यहां शेर खां का पुत्र कुतुब खां दुर्ग की रक्षा के लिए तैनात था। मुगल सेना के आगमन की खबर प्राप्त कर हुमायूँ को धोखा देने के लिए उसने अपनी सेना की एक टुकड़ी पहाड़ियों पर नियुक्त कर दी। इससे हुमायूँ धोखे में पड़ गया। वस्तुतः शेर खां

पहले ही चुनार में रसद एवं सैनिकों के साजो सामान हटा चुका था। हुमायूँ ने लगभग छः महिनों तक दुर्ग का घेरा डाले रखा। 1538 में रूमी खां के चालाकी से दुर्ग पर अधिकार कर लिया परन्तु इससे हुमायूँ को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। चुनार पर अधिकार कर वह बनारस गया और उस पर अधिकार कर बंगाल विजय की योजना बनाने लगा।

1.9.1.2 बंगाल पर अधिकार

जिस समय हुमायूँ चुनार का घेरा डाले हुआ था। उसी समय शेर खां रोहतास गढ़ के शक्तिशाली दुर्ग पर अधिकार कर बंगाल की राजधानी गौड़ की तरफ बढ़ रहा था। गौड़ पहुँचकर शेर खां ने अपना अधीपत्य स्थापित किया। गौड़ में उसे अथाह सम्पत्ति हाथ लगी। बंगाल का शासक महमूद शाह भागकर हुमायूँ के शरण में चला गया। अब शेर खां हुमायूँ से संधि की बातों में फसाकर अपनी शक्ति को सुदृढ़ करता रहा।

अगस्त 1538 में हुमायूँ ने बंगाल की ओर कूच किया और वह निर्विरोध बंगाल पर अधिकार कर उसने वहां प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की। हुमायूँ की बंगाल विजय निरूद्देश्य थी। इससे उसे कोई लाभ नहीं हुआ, बल्कि बंगाल की विजय से ही उसके पतन की प्रक्रिया आरम्भ हुई। बंगाल में आवश्यकता से अधिक समय तक रूके रहने के परिणाम हुमायूँ के लिए घातक सिद्ध हुए। हुमायूँ को बंगाल में आराम करते देखकर शेर खां ने क्रमशः चुनार , बनारस, जौनपुर, कन्नौज पटना इत्यादि पर अधिकार कर लिया। वह अब कन्नौज से बहराइस एवं मुंगेर से संभल तक के क्षेत्र का स्वामी बन गया। इसी समय हुमायूँ का भाई हिन्दल ने आगरा पहुँचकर स्वंय को शासक घोषित कर दिया तथा कामरान भी काबुल छोड़कर दिल्ली आ धमका। अब हुमायूँ ने शीघ्र ही आगरा लौटने का निश्चय किया।

1.9.1.3 चौसा का युद्धा (1539)

हुमायूँ के बंगाल से लौटने की सूचना पाकर शेर खां ने मार्ग में ही हुमायूँ को घेरने का निश्चय किया। हुमायूँ ने वापसी में अनेक गलतियाँ की। सबसे पहले उसने अपनी सेना को दो भागो में बाट दिया। सेना की एक टुकड़ी दिलावर खां के अधीन मुंगेर पर आक्रमण करने के लिए भेजी गई थी। सेना की दूसरी टुकड़ी के साथ हुमायूँ स्वंय आगे बढ़ा। कर्मनासा नदी के किनारे चौसा नामक स्थान पर उसे शेर खां की उपस्थिति का पता चला उसने तत्काल शेर खां पर आक्रमण नहीं किया और तीन महिनों तक गंगा नदी के किनारे समय बरबाद करता रहा। वर्षा आरम्भ होते ही शेर खा ने आक्रमण की योजना बनाई। हुमायूँ का शिविर गंगा और कर्मनासा नदी के बीच एक बीची जगह पर था अतः बरसात का पानी इसमें भर गया। मुगलों का तोपखाना नकाम हो गया तथा सेना में अव्यवस्था व्याप्त हो गई। इसका लाभ उठाकर 26 जून 1539 की रात्रि में शेर खां ने मुगल छावनी पर अचानक आक्रमण कर दिया। मुगल खेमें मे खलबली मच गई। सैनिक प्राण बचाने के लिए गंगा में कूदकर भाग खड़े हुए। हुमायूँ स्वंय एक भिश्ती की सहायता से जान बचाकर गंगा पार कर सका। उसका परिवार भी खेमें में ही रहा गया। उसकी सेना नष्ट हो चुकी थी। अफगानों की शक्ति एवं महत्वकाक्षांए पुनः बढ़ गई। अब वह मुगलों को भगाकर आगरा पर अधिकार करने की योजनाएं बनाने लगे। शेर खां ने इस विजय के बाद शेरशाह की उपाधि धारण कर ली और पूर्ण रूप से स्वतंत्र शासक बन बैठा।

1.9.1.4 कन्नौज का युद्ध (1540)

हताश और परेशान हुमायूँ आगरा पहुंचकर शेरशाह से अंतिम लड़ाई के लिए तैयारी शुरू कर दी। उसने अपने विद्रोही भाई कामरान और हिन्दल को क्षमा कर दिया परन्तु इन भाइयों ने विपत्ति में भी उसकी सहायता नहीं की। हुमायूँ ने स्वंय ही जल्दी बाजी में सेना इकट्ठी की और अंतिम संघर्ष के लिए कन्नौज की और बढ़ गया। अप्रैल 1540 ई0 को हुमायूँ

कन्नौज पहुंच गया जहां शेरशाह पहले से ही मौजूद था। हुमायूँ ने यहां पुनः पहले वाली भूल दुहराई। उसने तत्काल शेरशाह पर आक्रमण नहीं किया, बल्कि उसके साथ वार्ता में संलग्न रहा। भीषण वर्षा के कारण मुगल शिविर में पानी भर गया। शेरशाह ने इस स्थिति का लाभ उठाकर 17 मई 1540 को हुमायूँ पर अचानक आक्रमण कर दिया। यद्यपि हुमायूँ ने वीरता से लड़ा परन्तु शेरशाह के हाथों पराजित होना पड़ा। युद्ध में परास्त होकर हुमायूँ आगरा पहुंचा। शेरशाह ने उसका पीछा जारी रखा। अफगानों की आगमन की खबर पाकर आगरा से लाहौर गया परन्तु वहां भी कामरान ने कोई सहायता नहीं की। वह स्वंय शेरशाह से गुप्त वार्ता कर रहा था। उसने उसके कश्मीर और बदख्शां जाने के मार्गों में भी रोड़े अटकाए। हुमायूँ ने 1543 ई0 तक भारत में ही शरण लेकर पुनः सत्ता प्राप्त करने का प्रयास किया, परन्तु विफल होकर, ईरान चला गया। भारत में मुगल सत्ता, कश्मीर के अतिरिक्त सवतः समाप्त हो गई।

1.9.2 हुमायूँ का निर्वासन जीवन

फरवरी 1544 ई0 को ईरान के शाह तहमस्प के सहायता की स्वीकृति प्राप्त कर ईरान पहुंचा। रास्ते मे उसके स्वागत की भरपूर व्यवस्था की लेकिन ईरान पहुँचनें पर बैरम खां के व्यवहार से क्षुब्ध होकर उसने हुमायूँ को अपमानित करना प्रारम्भ कर दिया। हुमायूँ इन्हें बर्दाश्त करता रहा। अंततः वह कुछ निश्चित शर्तों के बदले शाह की सहायता पाने में सफल रहा। ईरान के शाह ने उसे 14,000 सैनिकों की सहायता दी। उसने हुमायूँ को अपने भाइयों से सावधान रहने और अफगानों के विरूद्ध राजपूतों का सहयोग प्राप्त करने की भी सलाह दी। इस सबके बदले हुमायूँ को शिया मत स्वीकार करना पड़ा। भारत में शियामत को राज्य धर्म बनाने का और कंधार शाह को सौंपने का वादा करना पड़ा। हुमायूँ को यह सारी शर्ते आसान लगी क्योंकि बाकी शासक उसके पकड़ने अथवा जान से माने के षड़यन्त्र कर रहे थे। राजपूतों से

भी बहुत अधिक एवं प्रभावशाली सहायता नहीं मिल पाई थी। अतः हुमायूँ के पास शाह के शर्तों को न मानने का कोई और विकल्प नहीं था।

1.9.3 हुमायूँ की भारत की ओर वापसी

ईरान के शाह की सहायता हुमायूँ के लिए एक वरदान सिद्ध हुई उसने अपना खोया हुआ धैर्य एवं शक्ति पुनः प्राप्त कर ली। एक बार फिर वह भारत में भाग्य आजमानें को लालचित हो उठा, लेकिन इसके पूर्व उसके लिए मध्य एशिया में अपनी शक्ति संगठित करना एवं विद्रोही भाइयों को वश में लाना आवश्यक था। इसलिए सबसे पहले कंधार विजय की योजना उसने बनाई। कंधार में उस समय अस्करी, कामरान, का प्रतिनिधि शासक के रूप शासन कर रहा था। हुमायूँ ने उसे पराजित कर अपने अधिकार में कर लिया वादा के अनुसार, ईरान के शाह को कंधार सौंप दिया गया परन्तु शीघ्र ही ईरानी गर्वनर की मृत्यु के बाद हुमायूँ ने इसे अपने अधिकार में कर लिया। बैरम खां को वहां का शासक नियुक्त किया गया। कुछ समय के बाद हुमायूँ ने काबुल और बदख्शां पर भी अधिकार कर लिया। 1553 ई0 तक हुमायूँ आंतरिक विद्रोहो पर नियंत्रण प्राप्त कर चुका था। काबुल कंधार, गजनी, तथा बदख्शां पर उसकी सत्ता स्थापित हो चुकी थी। वह पुनः भारत विजय के लिए तैयार हो उठा।

1.9.3.1 पंजाब पर हुमायूँ का आक्रमण

नवम्बर 1554 ई0 में हुमायूँ पंजाब की ओर रवाना हुआ। शीघ्र ही पेशावर पहुचं गया। सिन्धु पार करके वह लाहौर की तफर बढ़ा। इस बीच बैरम खां भी अपनी सेना के साथ कंधार से आकर हुमायूँ से मिल गया था। अतः हुमायूँ ने बिना किसी प्रतिरोध के फरवरी 1555 में लाहौर पर अधिकार कर लिया। लाहौर के पश्चात सरहिन्द, हिसार, और दीपालपुर पर भी मुगलों ने अधिकार कर लिया।

1.9.3.2 मच्छीवाड़ा का युद्ध

मुगलों के आगमन एवं पंजाब पर उनके अधिकार की सूचना पाते ही अफगान सुल्तान सिकन्दर सूर ने अपने योग्यतम सेनापति तातार खां और हैवात खां को सेना के साथ मुगलों को रोकने के लिए भेजा। लुधियाना के निकट मच्छीवाड़ा नामक स्थान पर मुगलों एवं अफगानों की मुठभेड़ हुई। मुगल तोपचियों के आगे अफगान धनुर्धर टिक नहीं पाए। 15 मई 1555 को अफगान पराजित होकर भाग खड़े हुए। इस विजय के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण पंजाब, सरहिन्द, हिसार–फिरोजा और दिल्ली के कुछ सीमावर्ती क्षेत्र पर भी मुगलों का अधिपत्य स्थापित हो गया।

1.9.3.3 सरहिन्द का युद्ध

मच्छीवाड़ा में पराजय के पश्चात स्वंय सिकन्दर सूर एक विशाल सेना के साथ सरहिन्द पर अधिकार करने के लिए दिल्ली से चला। बैरम खां, हुमायूँ एवं अल्पायु अकबर ने भी इस युद्ध में भाग लिया। 22 जून 1555 में सरहिन्द के निकट मुगलों और अफगानों की मुठभेड़ हुई। अफगानों की विशाल सेना मुगलों के सामने टिक नहीं पाई। अनेक अफगान सैनिक मारे गये सरहिन्द के युद्ध ने अफगानों की सत्ता समाप्त कर दी। जिस प्रकार पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम की पराजय ने भारत में मुगलों की सत्ता स्थापित की थी, उसी प्रकार सरहिन्द के युद्ध में सिकन्दर सूर की पराजय ने भारत में मुगल सत्ता की पुनर्स्थापना कर दी। इस युद्ध ने अफगानों के भाग्य का फैसला कर दिया। दिल्ली का सिंहासन उनके हाथों से निकल गया।

1.9.4 हुमायूँ की प्रतिस्थापना

सरहिन्द के युद्ध के पश्चात हुमायूँ के लिए दिल्ली का मार्ग प्रशस्त हो गया। सरहिन्द से हुमायूँ समाना गया। उसने सिकन्दर खान उजबेग को दिल्ली पर अधिकार करने को भेजा। मुगल सेना के आगमन की खबर पाकर अफगान बिना विरोध किये ही दिल्ली छोड़कर भाग खड़े हुए। दिल्ली पर मुगलों का पुनः अधिकार हुआ। 23 जुलाई 1555 ई0 को विजेता हुमायूँ

ने दिल्ली में प्रवेश किया। एक बार फिर उसका अभिषेक हुआ। 'खुतबा' पढ़ा गया एवं हुमायूँ के नाम के सिक्के ढलवाए गये। मुगल अमीरों को इनाम बाटे गये।

1.9.5 हुमायूँ के अंतिम दिन और मृत्यु

हुमायूँ ने बहुत कठिन परिश्रम से विपत्तियों से जूझते हुए अंततः अपना खोया हुआ राज्य वापस पाया था। उसने अपने शेष समय आराम करने मे व्यतीत किया। वह अन्य, भागों की विजय और प्रशासनिक व्यवस्था की योजना बनाने में व्यस्त रहा, परन्तु दुर्भाग्य ने एक बार पुनः हुमायूँ पर प्रहार किया। 24 जनवरी 1556 को अपने पुस्तकालय की सीढ़िया से गिरकर वह गंभीर रूप से घायल हो गया। उपचार के बावजूद हुमायूँ के दुर्भाग्य पर व्यंग करते हुए इतिहासकार लेनपूल ने ठीक ही लिखा है, 'हुमायूँ जीवन भर ठोकरे खाता रहा ओर ठोकर खाकर ही उसके जीवन का अंत हुआ'।

1.10 सारांश

अनेक इतिहासकारों ने बाबर की भूरी–भूरी प्रशंसा उसके चरित्रिक गुणों, उसकी सैन्य प्रतिभा, शैक्षिक एवं कलात्मक अभिरूचि के आधार पर किया है। बाबर का जीवन–चरित्र एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है। बाल्यकाल से ही कठिनाईयों से जूझते रहने के बावजूद उसने कभी अपना धैर्य नहीं खोया और सदैव अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में संलग्न रहा। बाबर की ख्याति मुख्यतया उसके अदभुत सैनिक गुणों एवं अदम साहस के कारण से है। वह एक वीर सैनिक एवं कुशल सेनानायक था। वह घुड़सवारी, निशानेबाजी तथा तलवार चलाने में निपुण था। बाबर अपने सहयोगियों से सदैव मित्रवत व्यवहार करता था। यद्यपि बाबर ने राणा सांगा के विरूद्ध राजनीतिक कारणों से प्रेरित होकर 'जिहाद' की घोषणा की तथापि वह धर्मांध नहीं था। कट्टर सुन्नी होते हुए भी शियाओं एवं अन्य समुदायों पर अत्याचार नहीं किया। बाबर में साहित्यिक एवं कलात्मक प्रतिभा भी थी। वह तुर्की, अरबी एवं फारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञाता था। उसे तुर्की साहित्य के दो सर्वाधिक प्रसिद्ध लेखकों में से एक माना जाता है। उसकी आत्मकथा तुजुक–ए–बाबरी की गणना विश्व के महान साहित्यिक ग्रन्थों में की जाती है।
बाबर की भारत विजय अनेक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण माना जाता है। बाबर ही पहला शासक था, जिसने कुषाण साम्राज्य के पतन के पश्चात पहली बार भारतीय साम्राज्य में काबुल और कंधार को

सम्मलित किया। इससे भारतीय विदेशी व्यापार के विकास में मदद मिली। बाबर के आगमन के पश्चात भारत की परम्परागत युद्ध प्रणाली में परिवर्तन आया। अब बारूद, तोपखाना और घुड़सवारी पर भारत में भी बल दिया जाने लगा। बाबर ने तुर्क–अफगानों द्वारा धारण की जाने वाली 'सुल्तान' की उपाधि त्याग दी एवं अपने आपको पादशाह अथवा अथवा आरम्भ किया उसने देवी शक्ति पर आघृत सर्वशक्तिशाली बादशाह की स्थापना की। अब राजा का आधार प्रजा की इच्छा नहीं, बल्कि दैवी इच्छा मानी गई। इससे बादशाह की शक्ति और प्रतिष्ठा में अत्यधिक वृद्धि हुई। बाबर ने अपनी सैनिक प्रतिभा के बल पर भारत में उस विशाल और वैभवशाली राजवंश की नींव डाली, जिस पर अकबर ने एक विशाल और सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना की। इतिहासकार लेनपूल बाबर को एक भाग्यशाली सैनिक, मध्य एशिया और भारत की के बीच की कड़ी तथा मुगल साम्रज्य का संस्थापक मानते है।

हुमायूँ का व्यक्तित्व एवं चरित्र विवादास्पद है। तबकात ए–अकबरी के लेखक निजामुद्दीन अहमद और इतिहासकार फरिश्ता हुमायूँ के व्यक्तिगत चरित्र और मानवीय गुणों की प्रशंसा करते है। वा दयालु, विद्या प्रेमी, साहित्य, कला एवं विज्ञान में रूचि रखने वाला था परन्तु उसमें अनेक चरित्रिक दुर्बलताएं भी थी। वह आलसी, सुस्त और अदूरदर्शी था। इसीलिए, उसे अपना राज्य खोकर वर्षों तक भगौड़े का जीवन व्यतीत करना पड़ा। हुमायूँ की सबसे प्रशंसनीय बात यह है कि घोर निराशा की परिस्थिति में भी उसने कभी धैर्य और साहस नहीं खोया। अंततः सफल हुआ यद्यपि वह बाबर की ही तरह अपने उत्तराधिकारी के लिए निरापद विरासत नहीं छोड़ सका, तथापि उसने मुगलों के शासन के लिए मार्ग अवश्य प्रशस्त कर दिया। आगे चलकर उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी अकबर ने मुगल साम्राज्य को और सुदृढ़ एवं स्थायित्व प्रदान किया।

1.11 अभ्यासार्थ प्रशन

1. बाबर के जीवन एवं संघर्षों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
2. बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिये।
3. बाबर कालीन युद्धों के कारणों एवं परिणामों पर प्रकाश डालें
4. बाबर के चरित्र एवं व्यक्तित्व की समीक्षा कीजिये।
5. भारत के विरूद्ध बाबर के विभिन्न सैनिक अभियानों के कारणों की समीक्षा कीजिये।
6. पानीपत के प्रथम युद्ध युगान्तकारी घटना थी विश्लेषण कीजिये।
7. बाबर के भारत आगमन के प्रभावों का समीक्षा कीजिये।
8. हुमायूँ के प्रारम्भिक जीवन एवं संघर्षों को रेखांकित कीजिये।
9. हुमायूँ एवं शेरशाह के मध्य सत्ता संघर्ष को दर्शाएं।
10. हुमायूँ के भारत से पलायन एवं वापसी का वर्णन कीजिये।
11. लेनपूल के कथन हुमायूँ जीवन भर ठोकरे खाता रहा और ठोकर खाकर ही जीवन का अंत हुआ से आप कहां तक सहमत है।
12. हुमायूँ के व्यक्तित्व एवं चरित्र पर एक नोट लीखिये।

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हरीश चन्द्र वर्मा :– मध्यकालीन भारत खण्ड 2 (1540–1761) हिन्दी माध्यम का0नि0 दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली
2. बिपिन बिहारी सिन्हा :– मध्यकालीन भारत ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली
3. जे0एल0मेहता :– मध्यकालीन भारत का वृहत् इतिहास खण्ड–2
4. आर्शिवादी लाल श्रीवास्तव :– मध्यकालीन भारत (1000–1707)
5. अवधेश बिहारी पाण्डेय :– मध्यकालीन भारत का इतिहास
6. एल0पी0शर्मा :– मध्यकालीन भारत (1000–1761)
7. कामेश्वर प्रसाद :– भारत का इतिहास (1526–1757)

इकाई दोः शेरशाह, इस्लामशाह तथा सूरी सैनिक प्रशासन

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्रारम्भिक जीवन

2.3.1 फरीद,सहसराम के जागीरदार के रूप में

2.3.2 शेर खां के सैनिक अभियान

2.3.3 शेर खां एवं हुमायूँ

2.3.3.1 चौसा का युद्ध

2.3.3.2 कन्नौज का युद्ध

2.4 शेरशाह का प्रशासन

2.5 केन्द्रीय संगठन

2.5.1 प्रशासकीय विभाग

2.5.2 प्रान्तीय व्यवस्था

2.5.3 स्थानीय शासन

2.5.3.1 सरकार

2.5.3.2 परगना

2.5.3.3 ग्राम्य व्यवस्था

2.6 राजस्व व्यवस्था एवं आर्थिक सुधार

2.6.1 भूमि एवं राजस्व व्यवस्था

2.6.2 मुद्रा व्यवस्था में सुधार

2.6.3 व्यापार को प्रोत्साहन

2.7 इस्लामशाह के कार्य

2.7.1 इस्लामशाह एवं आदिलशाह

2.7.2 अन्य अमीरों का दमन

2.7.3 नियाजी विद्रोह

2.7.4 सुजात खां का विद्रोह

2.7.5 खवास खां की हत्या

2.8 इस्लामशाह के सैनिक अभियान

2.9 प्रशासनिक व्यवस्था

2.10 सूरी सैनिक प्रशासन

2.10.1 घुड़सवार सेना

2.10.2 पैदल सेना

2.10.3 बन्दूकची अथवा तोपची सेना

2.10.4 स्थायी सेना की व्यवस्था

2.10.5 सैनिक को राज्य द्वारा वेतन

2.10.6 व्यक्तिगत दिलचस्पी

2.10.7 दाग एवं हुलिया की प्रथा

2.10.8 कठोर अनुशासन

2.11 सारांश

2.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

भारत में द्वितीय अफगान राज्य का संस्थापक शेरशाह था। उसकी गणना मध्यकालीन भारत के महान शासकों में की जाती है। एक सामान्य वंश का होते हुए भी अपनी प्रतिभा के बल पर वह इतिहास का एक महत्वपूर्ण शासक बन गया। उसकी प्रशंसा एक राज्य निर्माण एवं कुशल प्रशासक के रूप में की जाती है। शेरशाह के कार्यकलापों एवं जीवन को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। आरम्भिक जीवन (1486–1550) , हूँमायू से संघर्ष (1530–40) और शासक के रूप में (1540–45) ।

2.2 उद्देश्य

इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न प्रमुख बातें जान सकेंगें।

- शेरशाह के प्रारम्भिक जीवन एवं संघर्ष
- हुमायूँ एवं शेरशाह के बीच संघर्ष और भारत का शासक बनना।
- शेरशाह का प्रशासनिक व्यवस्था।
- शेरशाह का अदभुत राजस्व–व्यवस्था एवं आर्थिक सुधार।
- इस्लामशाह का राज्यारोहण एवं चुनौतियां।
- इस्लामशाह के सैनिक अभियान एवं प्रशासनिक व्यवस्था।
- सूर सैनिक प्रशासन।
-

2.3 प्रारम्भिक जीवन

शेरशाह का बचपन का नाम फरीद खां था। उनका जन्म बहलोल लोदी के समय में 1472 में हिसार फिरोजा में हुआ था। उसके पिता का नाम हसन खां एवं पितामह का नाम इब्राहिम खां सूर था। इब्राहिम के पूर्वज मूलतः अफगानिस्तान में रोहड़ी (शेरगढी) के निवासी थे। रोहड़ी में सूरों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। इसी समय (1452–53) सुल्तान बहलोल लोदी ने अफगानों को भारत आने का खुला निमंत्रण दिया। अतः इब्राहिम खां सूर अपने पुत्र हसन खां के साथ जीविका की खोज में भारत आया।

भारत आने पर इब्राहिम एवं उसके परिवार ने पंजाब में बजवाड़ा नामक स्थान को अपना ठिकाना बनाया। यहाँ पर इब्राहिम को हिसार फिरोजा के जागीरदार जमाल खां सारंगखानी के यहाँ नौकरी मिल गई। हसन खां ने भी बहलोल लोदी के दरबारी, खान–ए–आज़म उमर खां के यहां नौकरी मिल गई। हसन को शाहाबाद परगने की अनेक जागीरें दी गई। सुलतान सिकन्दर लोदी के समय में जब जमाल खां को जौनपुर की सुबेदारी मिली तब हसन खां के कार्यों से प्रसन्न होकर वह उसे अपने साथ जौनपुर ले गया। उसने हसन खां को सहसराम, हाजीपुर खवासपुर एवं टांडा परगानों की जगीरें सौप दी।

फरीदखां अपने पिता के साथ ही सहसराम आ गया। सहसराम में फरीद का जीवन कष्टपूर्ण था। अपनी विमाता के दुर्व्यवहार से परेशान होकर फरीद सहसराम छोड़कर जौनपुर चला गया। जौनपुर उस समय इस्लामी संस्कृति और विद्या के क्रेन्द्र के रूप में विख्यात था। अतः जौनपुर में ही रहकर फरीद ने अरबी और फारसी का गहन अध्ययन किया। उसने जैनपुर में सिकन्दरनामा, गुलिस्तां एवं बोस्तां जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ एवं दर्शन का अध्ययन किया । उसकी कुशाग्रता से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति फरीद के प्रशंसक एवं समर्थक बन गए। जमाल खां भी फरीद के गुणों से प्रभावित था। अतः उसने पिता–पुत्र में मेल कराने का प्रयास किया। उसने हसन खां को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह अपने जागीर का प्रबन्ध फरीद को सौप दें। फरीद ने इस शर्त पर यह कार्यभार संभाला कि उसका पिता प्रशासन के कार्यो में अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप नही करेगा।

2.3.1 फरीद, सहसराम के जागीरदार के रूप

जमाल खां के आदेशानुसार हसन खां ने फरीद को बिहार में सहसराम एवं खवासपुर की जागीरें सौंप दी। जागीरदार के रूप में फरीद ने करीब 21 वर्षो तक अपना समय बिहार में ही व्यतीत किया। इस समय का सदुपयोग उसने शासन प्रबन्ध को व्यवस्थित करने में किया। फलस्वरूप उसे पर्याप्त प्रशासनिक शिक्षा एवं अनुभव प्राप्त हुए। जागीरदार के रूप में उसके कार्यों की प्रशंसा अब्बास खां शेरवानी खूब करता है। इसी अवधि में उसने कृषकों , जागीरदारों, मुकद्दमों से सीधा सम्पर्क स्थापित किया एवं विद्रोही जमीन्दारों पर नियंत्रण स्थापित किया। कृषि एवं भू–राजस्व व्यवस्था की तरफ प्रयाप्त ध्यान दिया। सेना का समुचित संगठन किया तथा स्थानीय अधिकारीयों के प्रति निश्चित नीति तय की

शासन–प्रबन्ध संभालतें ही फरीद ने देखा कि कृषि एवं भू–राजस्व की व्यवस्था शोचनीय थी। उसने मुकद्दमो पटवारियों और स्थानीय अधिकारीयों को स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दी कि अगर उन लोगों ने अपने उत्तरदायित्वों का पालन ठीक से नहीं किया तो उन्हें नौकरी से अलग कर दिया जायेगा। अनेक विद्रोही जमीदारों को मौत के घाट उतार दिया गया तथा उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। फरीद के इन कठोर कार्यों का वांछित परिणाम निकला। सर्वत्र शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित हो गई। जागीरदार के रूप में फरीद का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य था, किसानों के हितों की रक्षा करना। जमीन की नाप करवाकर उपज के अनुसार लगान की राशि तय की गई। किसानों को पट्टा देने एवं उनसे कबूलियत लिखवाने की व्यवस्था की गई। लगान निश्चित समय पर (वर्ष में दो बार) लेने का प्रबन्ध किया गया। राजस्व पदाधिकारीयों, सैनिकों एवं जमीदारों को स्पष्ट आदेश दिये गये कि वे किसानों को परेशान नहीं करें। फलतः किसान कृषि की ओर अधिक ध्यान देने लगे, जिससे आर्थिक व्यवस्था में वांछित सुधार

हुआ। सैन्य व्यवस्था में भी परिर्वतन किये गये। सेना में समान रूप से हिन्दू एवं मुसलमानों को स्थान दिये गये। सैनिकों को नकद वेतन देने एवं घोड़ों को दागने की व्यवस्था की गयी। उसने प्रशासन के सभी विभागों पर अपनी पकड़ बनाए रखीं। उसनें प्रशासन के सभी विभागों की_निरीक्षण स्वयं करता था। निश्चित समय पर पदाधिकारियों का स्थानान्तरण की भी व्यवस्था की गई। इन प्रशासनिक सुधारों द्वारा फरीद ने आगामी शासन–व्यवस्था की नीवं डाली।

2.3.2 शेरखां के सैनिक अभियान

शेरखां के बढ़तें प्रभाव से नोहानी सरदारों का ईर्ष्यालू होना स्वाभाविक था। वे शेरखां के दुश्मन बन गये। जलाल खां भी शेरखां पर अंकुश रखना चाहता था। परन्तु शेरखां की शक्ति और प्रभाव के कारण वह विवश था। इसलिए, नोहानी सरदारों ने बंगाल के सुल्तान नुसरत शाह से सहायता मांगी। उत्तरी बिहार पर उस समय नुसरत शाह का अधिकार था। अतः वह दक्षिण बिहार पर अधिकार करने के लिए लालयित हो उठा। इधर शेरखां ने उत्तरी बिहार के गर्वनर मखदूम आलम– जो नुसरत शाह का सम्बन्धी था , को अपने पक्ष में मिला लिया। नुसरत शाह ने एक सेना दक्षिणी बिहार पर अधिकार करने को भेजी जिसे शेरखां ने पराजित कर दिया। क्रुद्ध होकर नुसरत शाह ने मखदमू आलम पर आक्रमणं कर युद्ध में मार डाला और दक्षिणी बिहार की तरफ बढ़ा ,परन्तु 1529 ई0 में उसकी सेना शेरखां द्वारा बुरी तरह पराजित हुई। इस विजय के पश्चात शेरखां की शक्ति और अधिक बढ़ गई। उसके पास पर्याप्त धन भी हो गया। नोहानी सरदारों ने एक बार पुनः शेरखां का प्रभाव समाप्त करने की कोशिश की एवं उन्होंने शेरखां की हत्या का प्रयास किया। नुसरतशाह को बुलवाया गया। इस बार भी शेरखां ने बंगाली सेना को पराजित कर दिया। शेरखां ही अब दक्षिण बिहार का वास्तविक शासक बन गया। उसने अब **हज़रत ए–आला** की उपाधि धारण कर ली।

बिहार के शासक बनने के पश्चात शेरखां अपना प्रभाव बढ़ाने में लग गया। 1530 ई0 में उसने चुनार के किले पर अधिकार कर लिया। यहां से उसे अपार धन भी हाथ लगा। उसने चुनार के भूतपूर्व गर्वनर ताज खां की विधवा लाड मलिका से विवाह भी कर लिया। इससे इसकी शक्ति एवं प्रतिष्ठा में और अधिक वृद्धि हुई। 1530 ई0 तक शेरखां पूर्णतः अफगानों की सत्ता स्थापित करने को तैयार हो चुका था। अब शेरखां ही अफगानों को वास्तविक नेता बन चुका था। बाबर की मृत्यु और हुमायूँ के राज्यारोहण ने शेरखां को अपने सपनों को साकार करने का मौका प्रदान किया।

2.3.3 शेरखां और हुमायूँ

बिहार में अपनी शक्ति स्थापित कर शेरखां के नए मुगल बादशाह हुमायूँ से संघर्ष करने का निश्चय किया। जब तक बाबर जीवित रहा, शेरखां ने उससे कभी खुला संघर्ष करने का प्रयास नहीं किया। दौराहा के युद्ध तक भी शेरखां मुगलों को भ्रम में फंसाए रखकर अपनी स्थिति मजबूत करता रहा आरम्भ में उसने हुमायूँ को भी भुलावे में रखा। वस्तुतः वह उचित मौके की तलाश में था। आरम्भ से ही उसने हुमायूँ के प्रति उपेक्षापूर्ण रवैया अपनाया था। हुमायूँ इस अफगान खतरे को समझता था। इसलिये उसने भी शेरखां पर अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया।

1532 ई0 के दौराहा विजय के बाद हुमायूँ ने हिन्दू बेग के नेतृत्व में एक सेना चुनार का दुर्ग अधिकृत करने को भेजा। यह दुर्ग शेरखां को लाड मलिका से प्राप्त हुआ था। मुगल सेना ने लगभग चार महिनों तक दुर्ग का घेरा डाले रखा। शेरखां ने आत्मसमर्पण नही किया बल्कि हिन्दू बेग की सहायता से वह हुमायूँ से समझौता करने का प्रयास करता रहा। उसने मुगलों के प्रति अपनी वफादारी की दुहाई दी और हुमायूँ को यह प्रस्ताव भेजा कि अगर उसे दुर्ग रखने की इजाफत दी जाए तो वह अपने पुत्र कुतुब खां के अधिन अफगान सेना की एक टुकड़ी को आगरा में बादशाह की सेवा में देगा। गुजरात के शासक बहादुर शाह द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण किए जाने सूचना प्राप्त कर हुमायूँ वापस लौटनें की जल्दी में

था। अतः उसने शेरखां की ही शर्तो पर चुनार उसके पास रहने दिया। हुमायूँ के विरूद्ध शेर खां की यह पहली विजय थी।

1533 से 1537 ई0 के मध्य शेरखां ने बंगाल के शासक को अनेक बार पराजित किया। सबसे निर्णाय लड़ाई 1534 ई0 में सुरज गढ़ा में हुई। यह युद्ध शेरखां के जीवन में निर्णायक युद्ध था। इसके पश्चात उसने तेलियागढी एवं गौड़ में भी बंगाल के सुलतान ग्यासुद्दिन महमूद को पाजित किया। हुमायूँ से बंगाल के शासक ने सहायता की याचना की। शेरखां ने गुजरात के शासक बहादुर शाह से गुप्त सम्बन्ध बनाए रखा कुतुब खां भी शेरशाह के निर्देश पर आगरा छोड़कर भाग चुका था। इस घटनाओं से हुमायूँ क्रुद्ध हो उठा और शेरखां के प्रभाव एवं शक्ति को समाप्त करने का निश्चय किया।

1537 में हुमायूँ के आगमन की खबर सुनकर शेरखां ने बड़ी चुतराई से अपना खजाना और परिवार चुनार से हटाकर रोहतासगढ के दुर्ग में सुरक्षित कर लिया बाद में उसने धोखे से 1578 ई0 में इस पर अधिकार भी स्थापित कर लिया। इधर हुमायूँ ने चुनाव का दुर्ग घेर लिया और यह घेरा करीब छः माह तक बना रहा। इस अवधि में शेरखां ने हुमायूँ को बातों में उलझा कर अपनी स्थिति सुदृढ़ करता रहा। 1538 ई0 में रूमीखां के सहयोग से चुनार का दुर्ग पर अधिकार कर लिया परन्तु इस विजय से उसे बहुत अधिक लाभ नहीं मिला। इस विजय के बाद वह यह नहीं समझ पा रहा था कि पहले वह शेरखां की शक्ति को समाप्त करे अथवा बंगाल के सुलतान की सहायता करे। हुमायूँ की इस निष्क्रियता का लाभ उठाकर शेरखां ने मुंगेर और गौड़ (बंगाल) के बीच का प्रदेश जीत लिया। शेरखां द्वारा हुमायूँ के संधि प्रस्ताव का पालन नहीं करने पर हुमायूँ ने बंगाल विजय की योजना बनाई। उसने 1538 में गौड़ पर अधिकार कर उसका नाम जन्नताबाद रखा।

2.3.3.1 चौसा का युद्ध

जिस समय हुमायूँ बंगाल में रूका हुआ था, उसी समय शेरखां ने मौके का लाभ उठाकर उसकी वापसी के मार्ग को काट दिया। इतना ही नहीं, हुमायूँ को बंगाल में निष्क्रिय देखकर शेरशाह ने तिरहुत, बनारस, जौनपुर और कन्नौज पर भी अधिकार कर लिया। वस्तुतः तेलियागढ़ी से कन्नौज तक का सारा क्षेत्र अब शेरखां के अधिन आ गया। इससे जहां शेरखां का उत्साह बढ़ा, वही हुमायूँ के लिए अनेक समस्याएं खड़ी हो गई। उसे बंगाल से वापस लौटना एवं दिल्ली अथवा आगरा से सैनिक सहायता प्राप्त करना कठिन हो गया। आगरा में हुमायूँ के लिए परिस्थितियां चिंताजनक थी, गौड़ में कुछ सैनिकों को जहांगीर कुली बेग के नियंत्रण में छोड़कर वह बंगाल से वापस लौटा।

शेरखां, हुमायूँ के लौटने का इंतजार ही कर रहा था। चौसा के निकट दोनों की सेनाओं का सामना हुआ। दोनों सेनाएं कुछ दिनों तक निष्क्रिय पड़ी रहीं, और दोनों पक्ष संधिवार्ता में संलग्न रहें । शेरखां वस्तुतः उचित अवसर की तलाश में था। बरसात प्रारम्भ होते ही जून 1539 में शेरखां ने मुगल शिविर पर आक्रमण किया। हुमायूँ की पराजय हुई। वह किसी तरह जान बचाकर भाग खड़ा हुआ। हुमायूँ की पराजय शेरखां के लिये वरदान बन गई। उसने पहली बार खुले संघर्ष में मुगल बादशाह को परास्त किया था, इससे उसकी शक्ति एवं प्रतिष्ठा में वृद्धी हुई। इस विजय के पश्चात शेरखां ने **'शेरशाह'** की उपाधि धारणा की। इस प्रकार शेरशाह अब बंगाल और बिहार का स्वतंत्र शासक बन गया।

2.3.3.2 कन्नौज का युद्ध

चौसा की विजय के पश्चात शेरशाह हुमायूँ से अंतिम संघर्ष के लिए तैयार हुआ। बंगाल और बिहार की व्यवस्था कर वह कन्नौज की ओर बढ़ा। उधर हुमायूँ ने भी जल्दबाजी में एक सेना तैयार कर शेरशांह के मुकाबले के लिए आगरा से चल चड़ा दोनों सेनाओं का मुठभेड़ कन्नौज के बिलग्राम नामक स्थान पर मईः 1540 को हुआ। हुमायूँ युद्ध में पराजित होकर आगरा पहुंचा। शेरशाह ने उसका पीछा जारी रखा। अफगानों के आगमन की खबर पाकर हुमायूँ आगरा से लाहौर चला गया। शेरशाह ने दिल्ली–आगरा पर अधिकार कर लिया तथा हुमायूँ का पीछा करता हुआ पंजाब तक पहुंचा। हुमायूँ ने भारत में शरण लेने की

कोशिश की, परन्तु निराश होकर ईरान चला गया। इधर 10 जून,1540 को आगरा में शेरशाह का पुनः राज्यभिषेक हुआ। शेरशाह के नेतृत्व में इस प्रकार द्वितीय अफगान राज्य की स्थापना हुई।

2.4 शेरशाह का प्रशासन

भारतीय इतिहास में शेरशाह सिर्फ एक महान विजेता एवं कुशल सेनानायक के रूप में ही विख्यात नहीं बल्कि उसकी गणना एक सक्षम प्रशासक के रूप में भी की जाती है। उसने न सिर्फ एक राज्य की स्थापना की, बल्कि एक सशक्त प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा इसे स्थायित्व प्रदान करने का भी प्रयास किया। शेरशाह का प्रशासनिक व्यवस्था ने अकबर के सामने एक आदर्श उपस्थित किया। अकबर ने शेरशाह द्वारा निर्देशित मार्ग को ही संशोधनों एवं परिवर्तनों के साथ अपनाया। लम्बे समय की अराजक अवस्था को समाप्त कर राज्य में शांति व्यवस्था स्थापित करने का श्रेय शेरशाह को दिया जा सकता है। तत्कालिन और आधुनिक विद्वानों ने शेरशाह की प्रशासनिक प्रतिभा की भूरी–भूरी प्रशंसा की है। इतिहासकार कानूनगो ने उसे सभी अफगान शासकों में महानतम् प्रशासकिय और सैनिक प्रतिभा का व्यक्ति माना है। उसने पांच वर्षो की अल्प अवधि में ही आर्श्चयजनक प्रशासकीय प्रतिभा का परिचय दिया। इसलिए, कीन महोदय (keene) ने तो यहां तक लिखा ''किसी भी सरकार ने, यहां तक कि अंग्रेजों ने भी इतनी अधिक बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं दिया जितना कि इस पठान ने''।

शेरशाह के समूचे प्रशासन को सुविधानुसार तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। – **केन्द्रीय संगठन, प्रान्तीय व्यवस्था, एवं स्थानीय शासन।** इनके अतिरिक्त उसने सैनिक व्यवस्था एवं मुद्रा–सम्बन्धी भी व्यवस्था की।

2.5 केन्द्रीय संगठन

अफगान राज्य की शक्ति का केन्द्र स्वयं सुलतान था वह राजधानी आगरा से प्रशासन की पूरी निगरानी करता था। राज्य की पूरी शक्ति उसी के हाथों में केन्द्रित थी। सुलतान की सहायता के लिए विभिन्न पदाधिकारी नियुक्त किये गये एवं प्रशासनिक विभागों की स्थापना की गई। वह कार्यपालिका, न्यायापालिका एवं सैनिक मामलों का प्रधान था। राज्य की सभी नियुक्तियां स्वंय शेरशाह द्वारा ही होती थी। समस्त कर्मचारी अपने कार्यों के लिए शेरशाह के प्रति उत्तरदायित्व थे। शेरशाह की शक्ति पर किसी भी प्रकार का अंकुश अथवा नियंत्रण नहीं था। निरंकुश और असीमित शक्ति का मालिक होते हुए भी शेरशाह ने एक स्वेच्छाधारी शासक की तरह शासन नहीं किया ,बल्कि उसने एक उदार तानाशाह (Benevolent despot) के सामन अपनी शक्ति का उपयोग जनता की भलाई के लिए किया।

2.5.1 प्रशासकीय विभाग (central administration)

तुर्की प्रशासनिक व्यवस्था के विपरित शेरशाह ने वजीर का पद नहीं रखा। इसका कारण था कि वह अफागानों की इस प्रवृत्ति से अच्छी तरह परिचित था कि वे किसी को भी अपने से श्रेष्ठ नहीं मानतें थे। इसलिए, शेरशाह ने सारी शक्ति को भी अपने ही हाथों में केन्द्रित रखी और प्रशासन की समुचित व्यवस्था के लिए विभिन्न प्रशासकीय विभाग बनाए। इन विभागों के प्रधानों की हैसियत मंत्री के समान थी। उनकी नियुक्त शेरशाह स्वयं करता था। सभी विभागों के प्रधानों की स्थिति एक समान थी। सभी शेरशाह के प्रत्यक्ष नियंत्रण में कार्य करते थे। शेरशाह के समय में प्रमुख प्रशासकिय निम्नलिखित विभाग थे।

दीवान–ए–वजारत :– राजकीय आय–व्यय की देखभाल करने वाला तथा इस विभाग का प्रमुख वजीर होता था।

दीवान–ए–आरिज :– यह सैन्य सम्बन्धी मामले, सेना की नियुक्ति उनके वेतन, रसद इत्यादि की जिम्मेदारी थी। इसके प्रमुख को आरिज–ए–ममालिक की उपाधी दी गई थी।

दीवान–ए–रसालत :– इस विभाग के तुलना विदेश विभाग से की जाती है। वैदेशिक नीति से सम्बन्ध मामलों की देखभाल इसी विभाग के जिम्मे थी।

दीवान–ए–इन्शा :– इस विभाग के जिम्मे राजकीय घोषणाओं को तैयार करवाने उन्हें प्रसारित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। वस्तुतः, यह विभाग सरकारी अभिलेखागार
के रूप में कार्य करता था।

दीवान–ए–काजा –इस विभाग का प्रधान मुख्य काज़ी (न्यायधीश) होता था। मुख्य न्यायधीश की हैसियत से वह समुचित न्याय की व्यवस्था करता था।

दीवान–ए–वरीद – इस विभाग के जिम्मे गुप्तचर व्यवस्था का देखा–भाल सौंप गया था इस विभाग का प्रधान वरीद–ए–मुमालिक कहलाता था।

इन महत्वपूर्ण विभागों के अतिरिक्त केन्द्रीय प्रशासन से सम्बन्ध अन्य किसी प्रमुख पदाधिकारी का उल्लेख नही मिलता है, परन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता की सिर्फ इन्हीं व्यक्तियों के बलबुते पर केन्द्रिय प्रशासन नहीं चलता होगा। निश्चित ही कुछ अन्य प्रशासनिक पदाधिकारी रहें होंगें। शेरशाह किसी सुदृढ़ केन्द्रीय प्रशासन की व्यवस्था नहीं कर सका, बल्कि उसने सलतनतकाल से चली आ रही केन्द्रिय प्रशासनिक व्यवस्था को ही आवश्यक संशोधनों एवं परिवर्तनों के साथ बनाए। रखा। सारी शक्तियां अपने हाथ में केन्द्रित रखने के कारण शेरशाह को स्वयं ही सभी विभागों के कार्यो की देखभाल स्वयं करता था। अब्बास खां शेरवानी के अनुसार ''शेरशाह प्रशासन से सम्बद्ध सभी विभागों की देखभाल स्वयं करता था। उसने प्रत्येक कार्य के लिए दिन–रात को विभिन्न कार्यों के सम्पादन के अनेक भागों में बांट रखा था, और कार्यों में कभी ढिलाई नहीं करता था''।

2.5.2 प्रान्तीय व्यवस्था–(provincial set-up)

शेरशाह को प्रान्तीय शासन–व्यवस्था के सम्बन्ध में स्पष्ट और विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने इस सम्बन्ध में अलग–अलग मत व्यक्त किया है। डा0 कालीचरण कानूनगो का मत है कि शेरशाह प्रान्तीय शासन व्यवस्था रखना ही नहीं चाहता था। वह केन्द्र और परगना के बीच सरकार के अतिरिक्त के मत के विपरित डा0 पी शरण की मान्यता है कि शेरखां का राज्य विभिन्न प्रान्तों में विभक्त था। इन प्रान्तों का शासन सैनिक पदाधिकारी प्रातपति के रूप में करते थे तथा सरकार वस्तुतः प्रान्तीय इकाई ही थी। डॉ0 आर्शीवादीलाल श्रीवास्तव का विचार है कि शेरशाह एवं उसके उत्तराधिकारी इस्लामशाह के समय में सम्पूर्ण अफगान राज्य 'प्रान्त' अथवा 'सूबों' में नही बल्कि इक्ता (IQTA) में विभक्त था। इनकी स्थिति बहुत कुछ तुर्की काल के आरम्भ में स्थापित इक्ताओं के ही समान थी। इस पर सैनिक अधिकारी शासन करते थे। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रान्तीय शासन व्यवस्था के क्षेत्र में पूरे अफगान राज्य में एकरूपता नही पाई जाती है। विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार अलग –अलग व्यवस्था स्थापित की गई परन्तु सभी जगह सुल्तान द्वारा कड़ा नियंत्रण बनाए रखा गया। सुल्तान सांय शासन –व्यवस्थामें गहरी रूचि रखता था इसे व्यवस्थित रखने के लिए अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की / प्रान्तीय अधिकारी विभिन्न नामों से जाने जात थे, जैसे– आकिम, जमीन एवं फौजदार इत्यादि। सभी प्रांतीय अधिकारियों की स्थिति भी एक समान नही थी परन्तु सभी पर सुल्तान का कड़ा नियंत्रण था।

2.5.3 स्थानीय शासन (local administration)

प्रान्तीय शासन की अपेक्षा शेरशाह ने स्थानीय प्रशासन पर अधिक ध्यान दिया। स्थानीय प्रशासन में अधिक एकरूपता एवं संगठनात्मक व्यवस्था देखी जा सकती है परन्तु ऐसा प्रतीय होता है कि इस क्षेत्र में भी शेरशाह कोई आमूल परिवर्तन नही कर सके। सल्तनतकालीन प्रशासकीय इकाइयों एवं पदाधिकारियों के नामों से परिवर्तन कर उन्हें ही बनाए रखा गया। शेरशाह के समय में प्रान्त क्रमशः सरकार, परगना एवं ग्राम में विभक्त थे। इस प्रशासनिक इकाइयों का शासन प्रबन्ध विभिन्न पदाधिकारियों के जिम्मे सौंपा गया था।

2.5.3.1 सरकार

प्रान्त या सूबे अनेक सरकारों (जनपदों) में विभक्त किए गये थे। एक अनुमान के अनुसार शेरशाह के साम्राज्य में 47 सरकार थे। सरकार का प्रशासन से प्रमुख अधिकारी – शिकदार–ए– शिकदारान एवं मुसिक–ए–मुंसिफान के जिम्मे था। वे अपने अधनिस्थ के कार्यों का निरीक्षण करते थे तथा सरकार के भीतर शान्ति व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करता था। शिकदार–ए–शिकदारान जहां समस्त प्रशासनिक मामलों का देखभाल करता था वही मुसिफ–ए–मुसिफान सरकार में प्रमुख न्यायाधीश की भूमिका निभाता था। वह परगने के अमीरों के कार्यो एवं उत्तर दायित्वों का निरीक्षण करता था। दो अधिकारीयों के बीच कार्यो एवं उत्तरदायित्व का विभाजन कर शेरशाह ने दोनों पदाधिकारीयों को एक–दूसरे के कार्यो पर नियंत्रण रखने का मौका प्रदान किया।

2.5.3.2 परगना

सरकार से छोटी प्रशासनिक इकाई परगना संख्या सरकार की तरह निश्चित नहीं थी। परगनों के प्रशासन के लिए अनेक पदाधिकारी नियुक्त किए जाते थे। ये पदाधिकारी थे शिकदार, फोतेदार, कारकुन एवं अमीन। परगना का सर्वोच्च पदाधिकारी शिकदार होता था। वह शिकदार–ए–शिकरदान के अधीन काम करता था। उसका मुख्य कार्य परगना में शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखना था। परगनें में शिकदार के ही समान महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली पदाधिकारी अमीन अथवा मुंसिफ था। वह परगने की समस्त भू–व्यवस्था का नियंत्रण था। इस हैसियत से वह लगान वसूली एवं लगान सम्बन्धी मुकदमें की देखभाल करता था। फोतदार का पद कोषाध्यक्ष के समान था परगने की समस्त आमदनी उसके पास जमा की जाती थी। वह समस्त आय–व्यय का लेखा–जोखा भी रखता था। इन पदाधिकारीयों के अतिरिक्त प्रत्येक परगने में एक फारसी एवं हिन्दी कारकुन (क्लर्क) होते थे। ये लगान एंव भू–व्यवस्था तथा आय–व्यय से सम्बन्ध सभी दस्तावेज तैयार करते एवं उन्हें अपने पास रखतें थे।

2.5.3.3 ग्राम्य व्यवस्था

प्रशासनिक सुविधा के लिए सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई ग्राम्य को बनाया गया था। एक परगना में अनेक गांव होते थे। ग्राम–प्रशासन का प्रधान मुखिया होता था वह सरकारी पदाधिकारी नहीं होता था परन्तु उसे स्थानीय प्रशासन की जिम्मेदारी सौपी गयी थी। मुखिया अन्य स्थानीय पदाधिकारीयों, **पटवारी, मुकद्दम**, एवं **चौकीदार,** की सहायता से अपने–अपने गांव में शान्ति की स्थापना करता, व लगान वसूल करवाता, अपराधों की रोक–थाम करवाता एवं अपराधियों को दंडित करता था। इसके अतिरिक्त स्थानीय स्तर पर शिक्षा, स्वस्थ्य एवं सफाई की व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी स्थानीय अधिकारीयों पर था। शेरशाह ने इन स्थानीय अधिकारीयों के पद को कानूनी दर्जा प्रदान की तथा उनके विशेषाधिकारों की सुरक्षा की, परन्तु इसके साथ–साथ उन पर महत्वपूर्ण जिम्मेदारी भी डाल दी। शेरशाह की यह व्यवस्था अत्यन्त कारगर सिद्ध हुई और गांवों से अपराध मिल गया।

2.6 राजस्व–व्यवस्था एवं आर्थिक सुधार

शेरशाह ने राज्य की आर्थिक व्यवस्था को भी सुदृढ़ करने का प्रयास किया। वह इस बात को अच्छी तरह समझता था कि एक सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के अभाव मे कोई राज्यस्थायी एवं शक्शिाली नहीं हो सकता। इसलिए, उसने भूमि एवं राजस्व व्यवस्था मुद्रा एवं वाणिज्य–व्यापार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये।

2.6.1 भूमि एवं राजस्व–व्यवस्था

शेरशाह का राज्यकाल भू–राजस्व व्यवस्था और किसानों की स्थिति में सुधार के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। राज्य की आमदनी निश्चित करने एवं किसानों की दशा में सुधार लाने के लिए अनेक उपाय किये गये। राज्य की आमदनी का मुख्य स्रोत लगान ही था परन्तु इसके अतिरिक्त लवारिस

सम्पत्ति व्यापारिक कर, टकसाल, नमक, चुंगी, जजिया, खुम्स से भी राज्य की आमदनी होती थी। राज्य को व्यापार–वाणिज्य, उपहार नजरानों एवं युद्ध में लुटी गई सम्पत्ति से भी आमदनी होती थी शेरशाह ने भू–राजस्व व्यवस्था एवं कृषि में सुधार के लिए अनेक उपाय किए। उसने भू–राजस्व व्यवस्था को लागू करते समय यह ध्यान में रखा कि प्रस्तावित व्यवस्था से न तो राज्य को ही हानी हो और न किसानों को अनावश्यक शोषण हो, शेरशाह का उद्देश्य ऐसी व्यवस्था को लागू करना था जिससे राज्य और किसान दोनों ही लाभाविन्त हो सके।

लगान की राशि निश्चित करने के उद्देश्य से शेरशाह ने राज्य के समस्त भूमि की माप कार्यवाई। सभी कृषि योग्य भूमि को उपज के आधार पर क्रमशः उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणी में विभक्त किया गया। तीनों प्रकार की जमीनों में प्रतिबीघा उपज के आधार पर उस भूमि की औसत पैदवार निश्चित की गई। उपज का–तिहाई भाग (1/3) लगान निश्चित किया गया। दरों की एक नई प्रणाली **'राय'** निकाली गई। जिसके अनुसार अलग–अलग किस्मों पर राज्य के भाग की दर अलग–अलग तय की गई। विभिन्न क्षेत्रों के बाजार भाव के अनुसार दर कीमत तय की गई। इस प्रकार, शेरशाह के अनुसार बीघेवार, जिन्सवार भूमि कर निश्चित की। किसानों को नकद अथवा जिन्स के रूप में लगान देने की छुट थी। लगान वर्ष में दोबार ली जाती थी। किसानों को लगान के अतिरिक्त, जरीबाना (भूमि की नाम के लिए) और महासिलाना (लगान कर्मचारीयों के वेतन के रूप में) भी देना पड़ता था। इसकी दर 2/ ½ से 5 प्रतिशत तक तय की गई थी।

शेरशाह के समय में लगान निश्चित करने के तीन प्रमुख प्रणाली थी – गल्लाबक्शी (बटाई) नश्क, मुकतई या कनकूत तथा नकद, जब्ती अथवा जमाई। गल्लाबक्शी अथवा बटाई तीन प्रकार की थी– खेत–बटाई, लंक–बटाई एवं रास–बटाई। खेत बटाई व्यवस्था के अधीन और सरकार में हो जाता था। लंक–बटाई मे अनाज को डंठलों से अलग किए बिना ही बांट लिया जाता था। रास–बटाई में अनाज को भूमि से अलग कर तब विभाजन किया जाता था। नश्क, मुकतई, अथवा कनकूत–व्यवस्था के अन्तर्गत खेत में खड़ी फसल को ही देखकर उपज का अनुमान लगा लिया जाता था तथा उसी के आधार पर लगान की राशि तय की जाती थी। राज्य एवं किसान के लिए सबसे सुविधाजनक व्यवस्था नगदी, जमाई अथवा जब्ती थी। इस व्यवस्था के अनुसार किसान और सरकार के बीच तीन वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए प्रतिबधं प्रतिवर्ष की दर से लगान की राशि निश्चित कर दी जाती थी।

शेरशाह ने भू–लगान अथवा राजस्व कर्मचारीयों को स्पष्ट आदेश दिया था कि लगान निर्धारित करते समय तो उदारता दिखाएं, परन्तु उसकी वसूली कठोरता पूर्वक करें। सैनिकों को भी आदेश दिये गये कि मार्ग में पड़ने वाले फसलों को नुकसान न पहुंचाए। प्रत्येक किसान को राज्य की ओर से पट्टा दिया जाता था, जिसमें निर्धारित लगान का ब्योरा रहता था। किसानों से इसकी काबूलियत भी लिखवाई जाती थी। राजस्व अधिकारीयों पर कड़ा नियंत्रण रखा जाता था जिससे कि वह किसानों को परेशान नहीं करें। इन्हीं उद्देश्यों से अमिलों की बदली की नियमित व्यवस्था की गई। प्रत्येक गांव का पटवारी जमीन से सम्बन्ध दस्तावेजों को अपने पास रखता था। परगना की समस्त भूमिका विवरण कानूनगो के पास सुरक्षित रहता था।

2.6.2 मुद्रा–व्यवस्था में सुधार

राज्य की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के उद्‌देश्य से शेरशाह प्रचलित मुद्रा– प्रणाली में भी आवश्यक परिवर्तन किए। शेरशाह के राज्यारोहण के समय मुद्रा – प्रणाली में एकरूपता नही थी इसलिए सुल्तान बनते ही उसने प्राचीन सिक्कों का प्रचलन बन्द करवा दिया और विभिन्न धातुओं के निश्चित अनुपात के नए सिक्के ढलवाए। उसने शुद्ध चांदी के रूपये और तांबे के दाम ढलवाए। चांदी का दाम 180 ग्रेन का होता था इसमें शुद्ध चांदी की मात्रा 175 ग्रेन रखी गई। 167 ग्राम सोने की अशर्फी भी निकाली गई। इसके अतिरिक्त चांदी और तांबे के सिक्कों के मूल्य के आधे, चौथाई, आठवें और सातहवे भाग के छोटै सिक्के भी चलवाए गये । इन सिक्को को सरकारी टकसाल में ढलवाए गये थे। सिक्को पर बादशाह का

नाम और जिस टकसाल में उन्हें ढाला गया था उस स्थान का नाम अरबी भाषा में खुदवाया गया। शेरशाह के मुद्रा–सम्बंधी सुधारों की प्रशंसा करते हुए एडवर्ड टॉमस ने मत व्यक्त किया है,"शेरशाह के राज्काल मे भारतीय मुद्रा इतिहास में एक प्रमुख स्थान केवल टकसालों के किए गए सुधारों द्वारा ही प्राप्त नही किया, बल्कि पूर्वकालीन राजाओ की मुद्रा–व्यवस्था के उत्तरोत्तर ह्रास को रोककर उन सुधारों में से बहुतों को जारी करते हुए प्राप्त किया जिन्हें आनेवाले मुगल शासकों ने अपना बताया।"

2.6.3 व्यापार को प्रोत्साहन

शेरशाह ने व्यापार –वाणिज्य की प्रगति के लिए भी अनेक कदम उठाए। आवागमन के साधनों में सुधार एवं सरायों की स्थापना से व्यापारियों को अनेक सहूलियतें हुई। फलतः व्यापार का विकास भी हुआ। शेरशाह ने व्यापार पर लगाई जाने वाली अनेक चुंगियों को बन्द करवा दिया। अब व्यापारियों को सिर्फ दो स्थानों पर चुंगी देनी पड़ती थी। राज्य की सीमा में प्रवेश करते समय और बाजार में सामान बेचते समय। इससे व्यापारियों को अधिक लाभ हुआ। मापतौल के लिए मानक बटवारों का उपयोग करने को कहा गया। सामान में मिलावट करने वालों और जाली बटखरों के उपयोग करने वाले व्यापारियों के लिए कठोर द्ण्ड की व्यवस्था की गई। वस्तुतः शेरशाह ने जहां व्यापारियों को अनेक सुविधाएं प्रदान की , वहीं उसने व्यापारियों से उपभोक्ताओं की सुरक्षा की भी व्यवस्था की।

2.7 इस्लाम शाह (1445–53)

शेरशाह के आक्समिक मृत्यु के पश्चात अफगान सरदारों ने इस्लाम शाह को सिहांसन पर बैठाया। इस्लाम शाह का मूल नाम जलाल खां था और वह शेरशाह खां का दूसरा बेटा था। इस्लाम शाह को बचपन से उचित शिक्षा–दीक्षा प्रदान की गई थी। शेरशाह के शासनकाल में उसे अपनी सैनिक तथा प्रशासनिक गुणों को दिखाने का अवसर भी प्राप्त हुआ। शेरशाह की ओर से उससे 1531 ई0 में हुमायूँ के विरूद्ध चुनार के दुर्ग की रक्षा, 1537 ई0 में गौड़ के घेरे में तथा चौसा और कन्नौज के युद्धों में अपनी सैनिक योग्यता का उचित परिचय दिया था। शेरशाह के साम्राज्य विस्तार के कार्यों में भी उसने सक्रिय सहयोग दिया था। अनुमानतः इसका इस्लाम शाह ने अपने पिता के द्वारा की जाने वाली साम्राज्य की व्यवस्था और सुधार योजनाओं में भी सहयोग दिया होगा। इस प्रकार 1543 में अपने राज्याभिषेक के पूर्व ही इस्लाम शाह को सैन्य संचालन एवं प्रशासन सम्बन्धी प्रशिक्षण प्राप्त हो गया था।

इस्लामशाह अपने पिता के ही समान वीर सेनानायक से भिन्न था। शासक बनते ही उसने प्रतिशोध वंश कलिंजर के राजा कीरत सिंह और उससे साथ युद्वबंदी बनाए गए। अन्य लोगों की हत्या करवा दी। इसके पश्चात वह राजधानी आगरा पहुंचा। राजधानी पहुंचकर उसने सेना में पुरस्कार और नगद वेतन बांटे। अपनी निजी सेना के सैनिकों को उसने तरक्की दी जिससे पहले के अनेक साधारण सैनिक और अफसर अमीर वर्ग नाराज हो गया और इस वर्ग ने अनेक विद्रोह को प्रोत्साहन दिया। फलतः इस्लामशाह का अधिकांश समय और उसकी शक्ति इन विद्रोहों के दमन में लगी।

2.7.1 इस्लामशाह और आदिल खा

सुलतान बनने के बावजूद इस्लामशाह को सबसे अधिक खतरा अपने बड़े भाई आदिल खां से था। इस्लामशाह से असंतुष्ट कुछ अमीर भी आदिल खां को राज्य पर अधिकार करने के लिए उकसा रहें थे। अतः इस्लामशाह ने सबसे पहले आदिल खां से ही निबटने की योजना बनाई उसने आदिल शाह को एक धूर्तापूर्ण पत्र लिखते हुए आगरा आने का नियंत्रण दिया एवं उसकी सुरक्षा का वापस दिया आदिल जब आगरा पहुंचा।

तब इस्लाम शाह ने उसकी हत्या का षडयंत्र रचा। आदिल खां भागकर बयाना चला गया। इस्लाम ने उसे बयाना की गर्वनरी दे दी, जिसे उसने स्वीकार कर लिया, परन्तु आदिल खां की गतिविधियों पर अंकुश रखने के लिए खवास खां एवं ईसा खां नियाजी को भी बयाना में नियुक्त किया गया। इस्लामशाह

इतने पर भी संतुष्ट नहीं हुआ। उसने पुनः आदिल खां की हत्या करने करने का षडयंत्र रचा जिसे खवास खां ने विफल कर दिया। इस घटना के बाद अपने समर्थन अमीरों की सहायता से आदिल खां ने विद्रोह कर दिया परन्तु वह पराजित हुआ । बयाना से भागकर वह पन्ना चला गया जहां बुरी परिस्थितियों में उसकी मौत हो गई। आदिल खां के प्रमुख सहयोगी अमीर, खवांस खां एवं ईसा खां मेनात एवं वहां से कुमायूँ के राजा की शरण में चले गये।

2.7.2 अन्य अमीरों का दमन

आदिल खां से निजात पाने के पश्चात इस्लामशाह ने अन्य विद्रोही अमीरों के दमन का निश्चय किया। जिन अमीरों से उसे खतरा की आकांशा थी उन्हें उसने अपने रास्तें से हटा दिया। जलाल खां जलवानी और उसके भाई खुदादाद खां पर विद्रोहियों का साथ देने का आरोप लगाकर उनकी हत्या करवा दी गई। इसी प्रकार कुतुब खां ब्रहाजीत खां गौड़, जलाल खां नियाजी और आदिल खां के पुत्र महमूद खां को गिरफतार कर ग्वालियर के किले में बन्द करवा दिया गया। बाद में इन्हें विष देकर मार डाला गया। इस्लामशाह के इन कार्यों से अफगान अमीरों के दिलों में भय व्याप्त हो गया। जो सरदार इस्लामशाह के क्रोध से बच गये उन लोगों ने अपनी सुरक्षा के लिए विद्रोही का सहारा लिया।

2.7.3 नियाजी विद्रोही

अफगान सरदारों के विद्रोही में प्रमुख था नियाजी विद्रोही। नियाजी अफगान सुलमान के कृत्यों से अत्यन्त ही क्षुबध थे। इन लोगों ने सुलतान के अत्याचारों का सामने करने का निश्चय किया। विद्रोह का नेतृत्व हैबत खां नियाजी ने किया। वह पंजाब का गर्वनर था। उसने भाई सईद खां, जो आगरा से भागकर लाहौर पहुंचा था। एवं अन्य अमीरों की सहायता से विद्रोह कर दिया। वह पंजाब का स्वतंत्र शासक बन बैठा। खुतब एवं सिक्कों पर उसका नाम खुदवाया गया। वह दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए भी निकल पढ़ा। इस्लामशाह स्वयं विद्रोहियों को कुचलने के लिए आगे बढ़ा। अम्बाला के निकट दोनों सेवाओं की मुठभेड़ हुई। सुजात खां की सहायता से सुलतान ने विद्रोहियों पर विजय पाई।
हैबत खां नियाजी भागकर गक्खरों की शरण में पहुंचा। सुलतान की सेना ने गक्खा प्रदेश में भी विद्रोहियों का पीछा किया। हैबत खां वहां से भागकर कश्मीर पहुंचा और वही इसकी मृत्यु हो गई। इस्लामशाह ने गक्खा प्रदेश की सुरक्षा की व्यवस्था की, मानकोट का सुदृढ़ दुर्ग बनवाया और हुमायूँ के वापस आने की संभावना को कम कर दिया।

2.7.4 सुजात खां का विद्रोह

हैबत खां के दमन के पश्चात सुलतान ने सुजात खां की तरफ अपना ध्यान दिया सुजात खां मलवा का गर्वनर था। उसने नियाजी विद्रोह के समय सुलतान के प्रति स्वामी भक्ति प्रकट की थी परन्तु इस्लामशाह के शंकालु प्रवृत्ति से वह उसकी तरफ से पूर्णत्या संतुष्ट नहीं था एवं अपनी सुरक्षा के प्रयासों में लगा हुआ था। निजामियों के अम्बाला में पराजय के बाद जब वह आगरा पहुंचा तब उसकी हत्या का प्रयास किया गया। इसमे बादशाह का हाथ होने की आशंका कर वह सुलतान की अनुमति लिए बिना ही मालवा लौट गया। इस पर क्रुद्ध होकर इस्लामशाह ने मालवा पर आक्रमण कर दिया। सुजात खां सुलतान का मुकाबला किए बिना ही भाग खड़ा हुआ। बाद में उसने सुलतान की अधीनता पुनः स्वीकार कर ली। अतः मालवा का प्रान्त उसे फिर से सौंप दी गई।

2.7.5 खवास खां की हत्या

खवास खां, शेरशाह के समय का एक प्रमुख सरदार था। उसने आदिल खां का साथ दिया था। आदिल खां के पराजय के पश्चात उसने कुमाऊँ के राजा के यहां शरण ली थी।

इस्लाम खां ने खवास खां को उसकी सुरक्षा का आश्वासन देकर आगरा बुलवाया। मार्ग में ही संभल के नजदीक, वहां के गर्वनर ताज खां काराानी द्वारा उसकी हत्या करवा दी गई। इस प्रकार क्रूरतापूर्वक इस्लामशाह ने अपने सभी प्रतिद्वंदियों एवं विरोधी सरदारों पर विजय पाई, परन्तु विद्रोह की भावना को सदैव के लिए समाप्त नहीं किया जा सका। खुले विद्रोह में असफल होकर सुलतान के विरोधियों ने उसकी हत्या का भी प्रयास किया, परन्तु भाग्यवंश उसकी हत्या की सभी प्रयास विफल रहें।

2.6 इस्लाम शाह के सैनिक अभियान

इस्लाम शाह में सैनिक प्रतिभा भी थी। सुलतान बनने के पूर्व ही वह अनेक सैनिक अभियानों में भाग ले चुका था। इस्लाम शाह के समक्ष सबसे बड़ी समस्या मुगलों के सम्भावित आक्रमण का खतरा था। हुमायूँ पुनः अपनी शक्ति संचित कर भारत पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था, परन्तु इस्लाम शाह के भय से वह भारत की सीमा पार करने का साहस नहीं जुटा पाया। 1553 ई0 में हुमायूँ सिन्ध की तरफ बढ़ा। वह कश्मीर के शासक की सहायता से भारत पर आक्रमण करना चाहता था। इस्लाम शाह उस समय बीमार था, परन्तु हुमायूँ की गतिविधियों की सूचना पाकर वह अपनी सेवा के साथ पंजाब की ओर बढ़ा। हुमायूँ इस्लाम शाह के आगमन की सूचना पाते ही अपनी भारत विजय की योजना त्याग कर काबुल लौट गया। इस्लाम शाह नें भारत पर मुगल आक्रमण की संभावना को विफल कर दिया। इस्लाम शाह नें कश्मीर के शासक मिर्जा हैदर को भी अपना मित्र बना लिया। उसने पूर्वी बंगाल पर अधिकार कर सूर साम्राज्य की सीमा का विस्तार किया।

2.7 प्रशासनिक व्यवस्था

इस्लाम शाह एक कुशल शासन प्रबन्धक भी था, परन्तु राज्य और सुलतान के अधिकारों के प्रति उसकी अवधारणां शेरशाह से भिन्न थी। वह सुल्तान के हाथों में सारी शक्ति को केन्द्रित करना चाहता था। वह सुलतान के हाथों में सारी शक्ति को केन्द्रित करना चाहता था। वह सुलतान के पद को सारी शक्तियों का केन्द्र एवं सबसे अधिक प्रतिष्ठित मानता था। वह सभी अफगान सरदारों को अपना अधीनस्थ एवं अनुसार समझता था, इसलिये , सुलतान बनते ही उसनें अफगान सरदारों की स्वतंत्र प्रव्रत्ति पर निरंकुश नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। उनके प्रभाव को कम कर दिया गया एवं उनके अनेक अधिकारों और सुविधाओं को वापस ले लिया गया। उदाहरण स्वरूप, अफगान अमीर हाथी नहीं रख सकते थे , उनके पास नर्तकी नहीं रह सकती थी तथा लाल रंग के खेमों व्यवहार अमीर नहीं कर सकते थे।

2.10 सूरी सैनिक प्रशासन

शेरशाह ने द्वितीय अफगान साम्राज्य के निर्माण एवं इसकी सुरक्षा के लिए सैन्य संगठन पर विशेष ध्यान दिया उसने एक स्थाई एवं विशाल सेना का संगठन किया। उसको सेना प्रधानतः निम्नलिखित चार भागों में विभक्त भी।

2.10.1 घुड़सवार

इस भाग से सैनिक की संख्या अब्बास खां के अनुसार डेढ़ लाख थी। वह शेरशाह की सेना का सर्वशक्तिशाली विभाग थे। इसमें शेरशाह ने अधिकांश अफगानों की बहाली की थी।

2.10.2 पैदल सेना

ये प्रायः पायक के नाम से पुकारे जाते थे इस वर्ग के सैनिकों का महत्व अधिक नहीं था, किन्तु इनमें आधे तीरंदाज एवं बन्दूकची होते थे। मल्लयुद्ध एवं तलवार बाजी में भी इन्हें निपुणता रहती थी और वे सुलतान के अंग रक्षक, दुर्गरक्षक आदि भी बहाल किये जाते थे। 3– हस्थि सेनाः अब्बार खॉ के अनुसार शेरशाह की सेना के इस विभाग में हाथियों की संख्या लगभग पचास हजार थी।

अब्बास खां के अनुसार शेरशाह की सेना के इस विभाग में हाथियों की संख्या लगभग पचास हजार थी।

2.10.3 बन्दूकची अथवा तोपची सेना

घुड़सवार सेना के बाद यह शेरशाह की सेना का सबसे महत्वपूर्ण वर्ग था ,बन्दूकूचियों की संख्या लगभग चालिस हजार बताई जाती है। सेना का प्रधान सम्राट ही था, किन्तु सुविधा के लिए वह सेनापति की नियुक्ति किया करता था। सेना के सर्वोच्च सैनिक, प्रान्तीय शासकों, जागीरदारों एवं में अनेक महत्वपूर्ण सुधार लाए। इनमें से उल्लेखनीय है

2.10.4 स्थाई सेना की व्यवस्था

शेरशाह ने एक_शक्तिशाली स्थायी केन्द्रीय सेना की व्यवस्था की पहले सुलतान को सेना प्रान्तीय शासकों एवं जागीरदारों के द्वारा मौका पड़ने पर भेज दी जाती थी। यह ठिक है कि सेना का वेतन एवं खर्चे शाही खजाने से ही दिये जाते थे, किन्तु ये सैनिक सुलतान के प्रति वफादार न होकर गर्वनरों अथवा जागीरदारों को ही अपना स्वामी मानतें थे, और इन्ही के आदेश पर चलतें थे। ऐसी सामन्ती सेना पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता था।

अतः शेरशाह ने एक स्थायी केन्द्रीय सेना का संगठन किया जो सुलतान के आदेश पर साम्राज्य की सुरक्षा के लिए सदैव तैयार रहती थी।

2.10.5 सैनिकों को राज्य द्वारा वेतन देने की व्यवस्था

शेरशाह के पूर्व सेना सामन्ती व्यवस्था पर संगठित थी। सैनिकों को वेतन आदि देने के लिए जागीरें दी जाती थी, और प्रान्तीय शासक एवं जागीरदार इन्हीं जागीरों की आय से सैनिकों के वेतन का भुगतान करते थे। शेरशाह को यह सामन्तवादी व्यवस्था अच्छी नहीं लगी, क्योंकि सरदारों से मांगी जाने वाली सेना अदक्ष एवं अविश्वसनीय होती थी। अतः उसके राज्य की ओर से वेतन भोगी सेना का निर्माण किया। सैनिकों के वेतन का आंशिक भाग जागीरदारों के अंशदान तथा आंशिक रूप से शाही खजाने से नकद दिया जाता था।

2.10.6 व्यक्तिगत दिलचस्पी

शेरशाह सैनिक की बहानी, तरक्की एवं उनके वेतन के भुगतान में व्यक्तिगत दिलचस्ती लेता था। लेखकों के अनुसार वह नये सैनिकों की भरती खुद ही करता था, किन्तु इस विचार को पूर्ण रूप से नहीं मान लिया जा सकता है। इतना व्यापक कार्य एक व्यक्ति के द्वारा सम्भव नहीं हो सकता था, फिर भी इस बात की गुजांइश है कि वह स्थायी केन्द्रीय सैनिकों की बहाली स्वयं करता है। इस उददेश्य से उसनें बख्शी–ए–लशकर की नियुक्ति शुरू की जो उसे सहायता देता था। सैनिकों की बहाली एवं पदोन्नति उनके व्यक्तिगत गुणों पर की जाती थी, सिफारिश पर नहीं। सेना में अफगानों की संख्या सर्वाधिक थी, किन्तु अन्य जातियों के लोग यथा हिन्दू भी इसमें शामिल थे।

2.10.7 दाग एवं हुलिया की प्रथा

शेरशाह नें घोड़े के दागने की अलाउद्दीन की प्रथा को पुनः जारी किया। सरकारी घोड़ों पर दाग लगाने का उददेश्य यह था कि सैनिक अच्छे नस्ल के सरकारी घोड़े को बेच न सके अथवा उनको बदल न सके। इसके अतिरिक्त अलाउद्दीन की तरह उसने प्रत्येक सैनिक की हुलिया रजिस्टर में लिखवाया था

2.10.8 कठोर अनुशासन

शेरशाह इस तथ्य को भली–भांती जानता था। कि शक्तिशाली सेना के लिए कठोर अनुशासन अनिर्वाय था अतः उनके वेतन, पदोन्नती अथवा अन्य बातों से उदारता बरत कर भी उसने अनुशासन के मामले में कठोर दण्ड दिया।

2.11 सारांश

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में शेरशाह एक प्रतिभावान शासक के रूप में याद किया जाता है। एक वीर विजेता और योद्धा के रूप में शेरशाह की प्रशंसा तत्कालीन एवं आधुनिक इतिहासकारों ने की है। अफगानों की दुर्बल स्थिति को देखते हुए उसने अपने सीमित साधनों के बल पर ही उन्हें संगठित करने का प्रयास किया। अपनी अदम्य विरता और कूटनीतिज्ञता के बल पर वह शीघ्र ही मुगल बादशाह हुमायूँ को हिन्दुस्तान से बाहर छोड़कर स्वयं ही भारत का मालिक बन बैठा। पांच वर्षो की अवधि में ही उसने एक विशाल सामाज्य की स्थापना कर ली। उसने सिर्फ साम्राज्य की स्थापाना नहीं की बल्कि एक कुशल और सुदृढ़ प्रशासन द्वारा इसे स्थायित्व भी प्रदान किया। उसने राज्य की समृद्धी के लिए भू–राजस्व व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार किए व्यापार–वाणिज्य को प्रोत्साहीत दिया एवं मुद्रा–प्रणाली को व्यवस्थित किया। इन्हीं कार्यों की वजह से एक इतिहासकार ने तो उसे 'मुसलमान शासकों में सर्वश्रेष्ठ' माना है। अनेक इतिहासकार उसे' अकबर का मार्गदर्शक' भी मानते है।

इस प्रकार शेरशाह ने तत्कालीन सैन्य व्यवस्था के अनेक दोषों को सफलतापूर्वक दूर किया। इस क्षेत्र में उसने अलाउद्दीन का अनुसारण किया था। किन्तु, सेना की बहाली में धर्म एवं जाति–पाति के भेद–भाव को दूर कर उसने वास्तविक अर्थ में एक राष्ट्रीय सेना का निर्माण किया था और यहां वह अलाद्दीन खिलजी से बहुत आगे था, सूर सेना की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि इसमें मुख्यतः अफगानों को, और एक विशेष जाति को ही स्थान दिया गया। फलतः शेरशाह के पश्चात सेना की स्वामिभावि सुलतानों प्रति न होकर अपने अफगान सरदारों के प्रति हो गई। इसनें अनेक विद्रोही को जन्म दिया। एवं अन्तः साम्राज्य के पतन के कारण बनी। इनत तमाम खामियों के बावजूद सूर सेना संगठित एवं सुदृढ़ थी। शेरशाह के पश्चात सुलतान के अक्षमता के कारण सेना में थोड़ी शिथिलता अवश्य आई।

इस्लाम शाह नें प्रशासन के क्षेत्र में भी कुछ सुधार किये। प्रशासन से संबद्ध अनेक कानून बनवाये गये, और उनका कड़ाई से पालन करने का आदेश दिया गया। प्रति शुक्रवार को सम्राज्य के प्रत्येक जिले में दरबार लगवाया जाता था। जहाँ इस्लाम शाह की आज्ञाएं पढ़ कर सुनाई जाती थी। उसने सैन्य व्यवस्था में भी परिवर्तन किए। उसने सेना का संगठन श्रेणीबद्ध बना दिया। मुगलों की मनसबदारी व्यवस्था का आधार आगे यही व्यवस्था बनी। उसने शेरशाह के ही समान अनेक सराय का भी निर्माण करवाया। तारिख –ए–पाऊदी का लेखक अब्दुललाह एवं इतिहासकार बदायूँनी इस्लामशाह की योग्यता की प्रशंसा करता है। इस्लामशाह में अनेक गुण थे। वह सैनिक एवं प्रशासनिक प्रतिभा का धनी व्यक्ति था बल्कि इसका विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण भी किया। उसने हुमायूँ को भारत लौटने का अवसर नहीं दिया। इस्लामशाह में अनेक गुणों के साथ–साथ कुछ अवगुण भी थें वह ईष्यालु, दंभी, एवं शंकाल–प्रवृति का व्यक्ति था। अनेक इतिहासकारो ने उसकी तुलना इब्राहिम लोदी से की है।

इस्लामशाह की नीतियां अन्नतः सूर साम्राज्य के पतन एवं मुगलों की पुर्नस्थापना के लिए उत्तदायी सिद्ध हुई।

2.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

- शेरशाह जीवन एवं संघर्षो के बारे में उल्लेख कीजिये।
- शेरशाह एवं हुमायूँ के मध्य सत्ता संघर्षों का वर्णन कीजिये।
- शेरशाह के प्रशासनिक व्यवस्था की चर्चा कीजिये।

- शेरशाह का राजस्व प्रशासन एवं आर्थिक सुधार की समीक्षा करें।
- इस्लाम शाह का एक शासक के रूप में मूल्यांकन कीजिये।
- सूर शासन के पतन के प्रमुख कारणों का विश्लेषण कीजिये।
- सूर शासन के सैनिक प्रशासन पर एक नोट लिखिये।
- शेरशाह का द्वितीय अफगान साम्राज्य के संस्थापक के रूप में मूल्यांकन करें।
-

2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

ए0बी0 पाण्डे	–	मध्यकालीन भारत का इतिहास
हरिश्चन्द्र वर्मा	–	मध्यकालीन भारत – खण्ड–2
ए0एल0 श्रीवास्तव	–	मध्यकालीन भारत – (1000–1707)
बी0बी0 सिन्हा	–	मध्यकालीन भारत
जे0एस0 मेहता	–	मध्यकालीन भारत का वृहत, इतिहास–खण्ड–2
एल0पी0 शर्मा	–	मध्यकालीन भारत
कामेश्वर, प्रसाद	–	भारत का इतिहास (1526–1557)

ब्लॉक एक

इकाई तीनः मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तारःअकबर एवं जहाँगीर

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिए अकबर का प्रारम्भिक विजय

3.4 विद्रोही अमीरों एवं बागियों का दमन

3.5 अकबर की साम्राज्यवादी नीति

3.6 अकबर का राजपूताना क्षेत्रों की विजय

3.6:1 मेड़ता विजय

3.6:2 गोंडवाना विजय

3.6:3 चित्तौड़ की घेराबन्दी और विजय

3.6:4 रणथम्भौर विजय

3.6:5 अन्य राजपूताना क्षेत्रों का समर्पण

3.7 अकबर का उत्तर भारत का विजय

3.7:1 गुजरात विजय

3.7:2 बिहार एवं बंगाल की विजय

3.7:3 कश्मीर की विजय

3.7:4 सिन्ध की विजय

3.7:5 उड़ीसा का विजय

3.7:6 बलुचिस्तान की विजय

3.8 अकबर की उत्तर पश्चिमी नीति

3.9 अकबर की दक्कन विजय

3.10 अकबर की धार्मिक नीति

3.11 अकबर की प्रशासनिक नीति

3.12 जहाँगीर का परिचय

3.13 जहाँगीर की राजपूत नीति

3.14 मेवाड़ के साथ सम्बन्ध

3.15 जहाँगीर की दक्कन नीति

3.16 कांगड़ा की नीति

3.17 कन्धार की पराजय

3.18 जहाँगीर की धार्मिक नीति

3.19 सारांश

3.20 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.21 सन्दर्भित ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

सम्राट अकबर वास्तव में भारत मुगल साम्राज्य के वास्तविक संस्थापक था। उसने न सिर्फ एक विशाल मुगल साम्राज्य की स्थापना की बल्कि उसको स्थायित्व एवं सुदृढ़ता भी प्रदान की। उसने अपने पराक्रम और अदम साहस के बल पर अनेक क्षेत्रीय शासकों को पराजित कर एक विशाल एवं सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना की। अकबर और उसका उत्तराधिकार जहाँगीर ने राजपूतों के साथ मित्रता एवं वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर मुगल राज्य की जड़ को और मजबूत बना दिया। जिन राज्यों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार करने से इंकार कर दिया उनके विरूद्ध सैन्य अभियान भी किए गये। विशाल सैनिक शक्ति एवं कुशल कूटनीति के आधार पर लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत मुगलों के अधीन आ गया था। अकबर एवं जहाँगीर ने धार्मिक उदारता का परिचय देते हुए यहां के मूल निवासियों का सहयोग एवं समर्थन प्राप्त किया जो साम्राज्य को दृढ़ता प्रदान करने में मील का पत्थर साबित हुआ।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि–

- अकबर ने किन–किन राज्यों के विरूद्ध सैनिक अभियान किये।
- अकबर ने किस प्रकार राजपूतों का समर्थन प्राप्त किया।
- अकबर ने मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए कौन सी नीति आपनाई।
- जहाँगीर ने अपने पिता से प्राप्त विशाल मुगल साम्राज्य को किस प्रकार बरकरार रखा।
- जहाँगीर के धार्मिक एवं राजपूत नीति ने किस प्रकार मुगल साम्राज्य को संगठित एवं सुदृढ़ बनाया।

3.3 मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिए अकबर का आरम्भिक विजय

सिंहासन पर बैठने के समय अकबर राज्यविहीन राजा था। दिल्ली के सिंहासन तक पहुँचने के लिए उसे निरन्तर संघर्ष करना पड़ा था। पानीपत की दूसरी लड़ाई में विजय प्राप्त करने के बाद ही दिल्ली और आगरा उसके नियंत्रण में आ सके थे। मई 1557 में मानकोट में सिकन्दर सूर द्वारा आत्मसमर्पण किए जाने के बाद ही पंजाब अकबर के प्रभाव में आ गया था। 1558–59 में ग्वालियर पर विजय पाई गयी और उसे मुगल साम्राज्य में शामिल किया गया।

मुहम्मद आदिलशाह को पराजित किया गया और इस प्रकार 1559–60 में जौनपुर को अफगानी विद्रोहियों के चुंगल से मुक्त कराया गया। अकबर ने अब्दुल्ला खान उजबेग की कमान में एक नई सेना भेजी जिसने मालवा को उसके शासक बाज बहादुर से पुनः छीन लिया बाज बहादुर ने भागकर मेवाड़ के राजा उदय सिंह के दरबार में शरण ली। अकबर ने अब्दुल्ला खान को मालवा का सूबेदार नियुक्त कर दिया और उसका मुख्यालय माण्डु में रखा गया।

3.4 विद्रोही अमीरों और बागियों का दमन

अकबर एक जन्मजात योद्धा और महान नेता था। उसके भीतर साम्राज्यवाद की गहरी प्रवृतियां थी। तथापि सैनिक कारनामों की नियमित जीवनवृति अपनाने अथवा सम्राज्यवादी नीति की कल्पना करने से पूर्व उसे अपने विद्रोही अमीरों और सगे सम्बन्धियों से निपटना पड़ा था क्योंकि इन लोगों ने 1560 के दशक में उसकी सत्ता के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया था। पूर्वी भारत में अफगान विद्रोहियों के विरूद्ध खान जमान उजबेग के नेतृत्व में मुगल सेना भेजी गई और उसने इस पर विजय पायी तथा लूट की सामग्री प्राप्त की परन्तु उसने इसे अकबर को नहीं दिया। जब अकबर ने स्वयं जौनपुर के लिए कूच किया तब उसने सारी लूट की दौलत अकबर को लौटा दी। और अकबर ने उसे माफ कर दिया।

अब्दुल्लाह खान उजबेग को अकबर ने मालवा का सूबेदार नियुक्त किया था। मालवा प्रान्त अपनी उर्वरता सम्पदा और प्राकृतिक सनसाधनों से सम्पन्न होने के कारण षड़यंत्रकारियों और विद्रोहियों की जन्म स्थली बना हुआ था। कुछ ही वर्षों के भीतर अब्दुलाह खान ने अथाह सम्पत्ति संचित कर ली सेनाओं के आकार में वृद्धि कर ली। बाज बहादुर के शासन के समय के राजद्रोही अफगानी व्यक्तियों के साथ मेल मिलाप बढ़ा लिया और फिर विद्रोह का डंका बजा दिया। इस आशय की सूचना पाकर अकबर ने व्यक्तिगत रूप से मालवा के लिए कूच किया। पहली जुलाई 1564 को घमासान वर्षा के वाजजूद वह आगरा से रवाना हुआ और अब्दुल्लाह पर अचानक हमले का नेतृत्व किया। अब्दुल्लाह को पराजय का मुँह देखना पड़ा। अकबर ने कारा बहादुर खान को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया। मालवा के विद्रोही सूबेदार अब्दुल्लाह खान उज़बेग ने गुजरात में शरण ली थी। वही से वह छिपता–छिपता जौनपुर चला गया जहां जौनपुर के सुबेदार खान जमान ने उसे संरक्षण प्रदान किया। उन्होंने अकबर के प्रति एक षड़यन्त्रकारी योजना बनायी। अनेक असंतुष्ट उज़बेग तथा अफगान अमीरों के साथ मिलकर उन्होंने 1565 में अकबर के विरूद्ध आम बगावत कर दी। विद्रोहियों का घोषित उद्देश्य अकबर का तख्ता पलटकर सिंहासन पर उसके स्थान पर मिर्ज़ा कामरान के पुत्र अबुल काज़िम को स्थापित करना था। सम्भल के प्रभावशाली मिर्जा भी इस मामले में विद्रोहियों के साथ हो गए। उनके विरूद्ध भेजी गई एक शाही सेना खदेड़ दी गयी। तब अकबर ने उनके विरूद्ध स्वयं मोर्चा संभाला। अकबर के लिए ऐसे दो मोर्चों पर जो कि एक दूसरे से अत्यधिक दूरी पर थे अपने दो शत्रुओं के साथ लड़ना कठिन था। उसने अपने भरोसे के अधिकारियों को यह आदेश दिया था कि वे उज़बेग विद्रोहियों के युद्ध के मैदान में उतरे बिना ही उन सतही तौर पर दबाव बनाए रखे और उनकी गतिविधियों पर निगाह रखे। स्वयं उसने आगरा और दिल्ली से नई सैनिक टुकडियां लेकर गुप्त रूप से पंजाब के लिए कूच किया।

अकबर के आगमन की सूचना मिलने पर मिर्जा मुहम्मद हाकिम हक्का–बक्का रह गया, उसने बहुत जल्दी लाहौर की घेराबन्दी हटा ली और खैबर की तरफ भाग खड़ा हुआ। शाही सेना ने सिन्धु नदी तक उसका पीछा किया। इससे पूर्व कि उज़बेगों को अकबर के पंजाब के लिए कूच करने का पता चले और वे मिर्जा मुहम्मद हाकिम के नाम से खुतवा पढ़े, अकबर के मार्ग में पड़ने वाली निदियों में जबरदस्त बाढ़ आ गई, गंगा घाटी में सेना की आवाजाही पर रोक लग गई। परन्तु अकबर हाथ पर हाथ रखकर बैठने वाला नहीं था। उसने इलाहाबाद के निकट मेकुवाल में स्थित उज़बेगों के शिविर पर अचानक हमला बोल दिया और उनके सैनिकों के बीच आतंक फैला दिया। खान जमान युद्ध में मारा गया जबकि उसके अनेक साथियों को बन्दी बना लिया गया और उन्हें कठोर दण्ड दिया गया। अबुल कासिम को भी मृत्यु दण्ड दे दिया गया। इस तरह विद्रोह को भी अकबर ने कुचल दिया।

3.5 अकबर की साम्राज्यवादी नीति

एक प्रभुसत्ता सम्पन्न शासक के रूप में शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लेने के बाद अकबर की पहली प्रेरणा यह थी कि वह अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार करे और भारत के पड़ोसी शासकों

पर आधिपत्य जमा ले। विजय मार्ग पर चलने के लिए ही नहीं अपितु एक स्वतंत्र शासक के रूप में अपने खुद के अस्तित्व के खातिर भी उसके लिए युद्ध तत्परता पहली आवश्यकता थी। तत्काल निकटस्थ सरदारों पर उसकी प्रारम्भिक विजय तथा राजद्रोही अमीरों एवं सम्बन्धियों के विद्रोहों को सफलतापूर्वक कुचल देने से अकबर के भीतर सम्राज्यवादी भावनाएं जागृत करने के लिए अपेक्षित मात्रा में विश्वास उत्पन्न हो गया था। मुगल शासन व्यवस्था के अधीन समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में एक सर्वशक्ति सम्पन्न सामुदायिक अथवा केन्द्रिय सरकार स्थापित करने के उद्देश्य से अकबर ने एक महत्वाकांक्षी योजना का विकास किया। देश का राजनीतिक एकीकरण तथा समूचे देश के भीतर सरकार की स्थापना उसके जीवन के लक्ष्य बन गए। उसकी सैनिक कार्यवाहियों का युग जिसकी शुरूआत 1560 में मालवा पर आक्रमण के साथ हुई और जिसका अंत 1601 में असीरगढ़ विजय के साथ हुआ भारत के सैनिक इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है। देश के राजनीतिक, एकीकरण तथा देशवासियों की राष्ट्रीय अखण्डता, जातिवाद अथवा धार्मिक तत्वों के लिए कोई भी स्थान नहीं था। बल्कि वे पूर्णतः उसकी राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित थी। अकबर की महत्वपूर्ण विजय यात्राओं, जिनके फलस्वरूप धीरे–धीरे उसके साम्राज्य का विस्तार हुआ था। का अध्ययन निम्नशीर्षों के अधीन किया जा सकता है।

3.6 अकबर का राजपुताना क्षेत्रों की विजय

अकबर आध्यात्मिक मनोवृति का व्यक्ति था। जनवरी 1962 में वह ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के दरगाह के दर्शन करने के लिए अजमेर गया। उसका रास्ता अम्बर (आज का जयपुर) के राजपूती राज्य से होकर गुजरता था। अम्बर के शासक राजा बिहारी मल कछवाहा ने अपनी स्थिति की सुरक्षा हेतु सांगनेर में अकबर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और स्वेच्छा से युवा शासक के साथ अपनी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। अकबर ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तथा उसके अजमेर से वापसी के समय अम्बर में विवाह सम्पन्न हुआ जिसमें अकबर के सभी संगी साथियों का बारात के रूप में स्वागत किया गया तथा खूब आवभगत की गई। अकबर अपने राजपूत सम्बन्धियों के अत्यन्त शालीन निष्ठापूर्ण तथा राजसी व्यवहार से अत्यधिक प्रभावित हुआ।

जब अकबर ने राजपूतों की तरफ से मित्रता का हाथ बढ़ाया उस समय वह सत्ता का स्वामी था। उन्हें अपने अधीन लाने के लिए उसने स्नेह और दण्ड नीति अपनाई अर्थात उसके एक हाथ में फूल और दूसरे हाथ में तलवार होती थी। उनमें से कुछ को जिन्होंने स्वेच्छा से अकबर के समक्ष समर्पण कर दिया था, शाही तंत्र का अंग बना लिया गया जबकि उनमें से अधिकांश अकबर से चौकन्ने रहते थे और अकबर ने उन्हें युद्ध क्षेत्र में शक्ति की परीक्षा करने और अपने निष्कर्ष स्वयं निकालने के बाद अवसर प्रदान किए।

3.6:1 मेड़ता विजय

अपने अजमेर प्रवास के दौरान अकबर ने अपने स्थानीय मुगल कमांडरों को मेड़ता के किले पर चढ़ाई करने के आदेश दिए थे। उस समय मेड़ता के किले पर जोधपुर के राव मालदेव के एक जागीरदार जयमल राठौर का कब्जा था। जयमल ने अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में मेड़ता की रक्षा के लिए बहुत बहादुरी से युद्ध किया। इस युद्ध में दोनों पक्षों के लोग बड़ी संख्या में हताहत हुए किन्तु अन्ततः मार्च 1562 में मुगलों ने मेड़ता पर विजय प्राप्त कर ली।

3.6:2 गोंडवाना विजय

1564 में अकबर ने गोंडवाना के हिन्दू राज्य पर जो कि आधुनिक मध्य प्रदेश का उत्तरी भाग था और जिसकी राजधानी चौरागढ़ थी अकारण हमले के आदेश दिए। उन दिनों इस राज्य को गढ़कटंगा तथा कटंगा दोनों मुख्यालयों का ऐतिहासिक महत्व था। उन दिनों इस राज्य पर महोवा की चन्देल

राजकुमारी रानी दुर्गावती का शासन था जो अपने पुत्र वीर नारायण के लिए शासन की बागडोर थामे हुई थी। आक्रमणकारी मुगल सेना में आसफ खान की कमान में 50000 पैदल घुड़सवार फौज थी। जबकि रानी की कमान में 20000 सैनिक तथा 1000 युद्ध में लड़ने वाले हाथी शामिल थे। रानी दुर्गावती ने हमलावरों को आगे बढ़ने से रोका और जब तक वह बुरी तरह से घायल तथा अक्षम नहीं हो गई तब तक दो दिनों तक बहादुरी से लड़ती रही। अपने सम्मान के रक्षा करने के लिए उसने स्वयं को छुरा घोप कर मार डाला।

3.6:3 चित्तौड़ की घेराबन्दी और विजय

गोंडवाना की विजय को मेवाड़ मारवाड तथा रणथम्भौर के दुर्जेय राजपूत शासकों द्वारा रोका नही जा सका। स्वभावतः इससे अकबर की उनके विरूद्ध आक्रामण युद्ध छेड़ने की योजना को बल मिल गया। सितम्बर 1567 में उसने अपनी सैनिक कार्यवाहियों में सबसे प्रसिद्ध और दुखद रूप से रोचक कार्यवाही मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ की घेरावबन्दी और विजय का संकल्प किया। मेवाड़ विजय के लिए अकबर ने बहुत व्यापक तैयारियां की थी। विशिष्ट अफगान सेनापतियों के दल से युक्त विशाल आक्रमणकारियों से सुसज्जित सेना की कमान अकबर ने स्वयं संभाली थी। अकबर की सेना 20 अक्टूबर 1567 को चित्तौड़ के बाह्य परिसर तक पहुंच गई थी। राजपूत सामन्तों की स्थिति की गंभीरता का एहसास था उन्होंने एक अकेले किले की खातिर अपने शासक उदय सिंह के प्राणों को खतरे में डालना उचित नहीं समझा क्योंकि उन्हें यह आशंका थी कि मुगलों के साथ उनका युद्ध लम्बे समय तक चलेगा। अतः उन्होंने राजा और परिवार तथा खजाने के साथ ही उसकी सर्वश्रेष्ठ सेना को अरावली पवर्तमाला के दुर्भेध जंगलों में सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया था। लगभग पांच माह तक चले इस युद्ध में अन्ततः राजपूतों की हार हुई और चित्तौड़ पर भी मुगलों का अधिकार हो गया।

3.6:4 रणथम्भौर विजय

विजय से प्रात्साहित होकर अकबर ने अप्रैल 1568 में राजपूतों के दूसरे दुर्दमनीयगढ़ रणथम्भौर पर आक्रमण करने के आदेश दिए। रणथम्भौर का शासक मेवाड़ के एक जागीरदार सुर्जनराय हाड़ा के हाथों में था। चित्तौड़ में प्राप्त अपने अनुभव के आधार पर मुगल सैनिकों ने फुर्त्ती के साथ किले की घेरावन्दी कर ली तथा अधिक मारधाड़ के बिना ही एक सबात का निर्माण कर लिया। घमासान युद्ध के 6 सप्ताह के भीतर सुर्जन राय ने शान्ति संधि की पेशकश की जिसे बड़ी उदार शर्तों पर मंजूर कर लिया गया।

3.6:5 राजपूताना क्षेत्रों का समर्पण

चित्तौड़ और रणथम्भौर के एक के बाद एक और बहुत जल्दी–जल्दी पतन के कारण उत्तरी भारत के सभी हिन्दू शासकों के ह्रदयों में आतंक बैठ गया था। विजयी मुगल सेनाओं का मनोबल ऊँचा बनाए रखने के उद्‌देश्य से अकबर ने बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक कालिंजर किले पर आक्रमण के आदेश दे दिए मजनू खान के नेतृत्व में मुगल सेना ने अगस्त 1569 में कालिंजर की घेराबन्दी कर दी। हल्के प्रतिरोध के बाद रामचन्द्र ने समर्पण कर दिया तथा उसे इलाहाबाद में एक जागीर दे दी गई। नवम्बर 1570 में दो राजपूत शासकों ने अम्बर के राजा भगवन दास के माध्यम से नागौर में अकबर का अधिपत्य स्वीकार कर लिया ये दो राजपूत शासक थे जोधपुर के मालदेव के पुत्र राजा चन्द्रसेन तथा बीकानेर के कल्याण मल। दिसम्बर 1570 में जैसलमेर के रावल हर राय ने भी मुगल शंहशाह की दासता स्वीकार कर ली और उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। इस प्रकार 1570 के अन्त तक मेवाड़ और इसके अधीनस्थ राज्य डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा प्रतापगढ़ को छोड़कर सारा राजपुताना मुगल राज्यक्षेत्र का अंग बन गया।

3.7 उत्तर भारत की विजय

अकबर ने उत्तर भारत विजय के अन्तर्गत निम्न क्षेत्रों पर अपना विजय परचम लहराया।

3.7:1 गुजरात विजय

गुजरात पर विजय की कल्पना अकबर ने राजस्थान में पैर जमाने के बहुत पहले ही की थी। वर्ष 1537 में बहादुर शाह की मृत्यु के समय से ही गुजरात आंतरिक विद्रोहों और सत्ता के लिए प्रतिद्वन्द्वि दावेदारों के बीच संघर्षों से ग्रसित था। वर्ष 1572 में गुजरात में कोई जमी हुई सरकार नहीं थी। इसका शासक मुजफ्फर शाह तृतीय अयोग्य और अलोकप्रिय था और करीब 6 सोमती अमीर उसकी सत्ता की अवज्ञा कर रहे थे। दिसम्बर 1572 में सनील के युद्ध में अकबर ने अपने विद्रोहियों को पराजित कर बडौदा चंपानेर व सूरत पर कब्जा कर लिया। गुजरात में नागरिक प्रशासन के सभी इंतजाम करने के बाद अकबर मार्च 1573 में सीकरी वापस लौट आया जहां उसकी विजय का उत्सव मनाया गया। इसी समय आगरा के पास सीकरी शहर की स्थापना हुई जहां शेख सलीम चिश्ती का घर भी था और जिसके कारण अकबर का इस स्थान से दिली लगाव भी था।

3.7:2 बिहार एवं बंगाल की विजय

बिहार एवं बंगाल शेरशाह के अधीन सूर साम्राज्य के गढ़ थे। उसकी मृत्यु के पश्चात् बिहार के अफगान सूबेदार सुलेमान कर्रानी ने स्वतंत्र राज्य की घोषणा कर दी उसने बंगाल एवं उड़ीसा को भी जीत लिया, टांडा में अपनी राजधानी बनाई थी। 1568 में उसे अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर किया गया। 1572 में उसकी मृत्यु के बाद उसका बड़ा पुत्र गद्दी पर बैठा जिसका नाम बयाजिद था। परन्तु सुलेमान द्वितीय के पुत्र दाऊद को सिंहासन पर बैठाया। अकबर को जब इस बात का का पता लगा तो उसने मुनीम खॉ को दाऊद को दंडित करने और बिहार को जीतने का फरमान जारी किया। मुनीम खॉ द्वारा बल प्रदर्शन के आधार पर दाऊद को संधि के लिए राजी कर लिया, पर शीघ्र ही उसने इसका विरोध कर दिया अतः अकबर ने स्वयं ही शाही फौज की कमान संभाली एवं अगस्त 1574 में पटना में दाऊद को पराजित किया। दाऊद की मृत्यु के साथ ही बंगाल की क्षेत्रीय स्वाधीनता समाप्त हो गयी।

3.7:3 कश्मीर की विजय

अकबर दीर्घ काल से कश्मीर घाटी को अपने नियंत्रण में लेने का स्वप्न संजोए हुए था। मुगल प्रभुत्ता को स्वीकार करने के लिए कहे जाने पर कश्मीर सुल्तान युसुफ खान ने 1581 ई. में अपने एक पुत्र के जरिए कूटनीतिक जबाव भेजा। लेकिन किसी कारण वश इस पर बात नहीं बन पायी। अकबर ने अपनी सेना को आदेश दिया कि हिमपात के दौरान और जब दुश्मन असावधान हो उन्हें पाकली मार्ग जहाँ हिमपात कम होता है से जाना चाहिए। विवश युसुफ खान ने इन शर्तों पर मुगल जनरलों से शांति संधि की, अब वह अकबर के नाम से सिक्के जारी करेगा और खुतबा पढ़ेगा और शाही अधिकारियों को कश्मीरी टकसाल, केसर की खेती, शाल निर्माण एवं घाटी में शिकार के विनियमन का प्रभार सौंपा जायेगा। वह और उसके सबसे बड़े पुत्र याकूब शहंशाह को व्यक्तिगत रूप से श्रंद्धाजलि अर्पित करने के लिए मुगल दूत के साथ गए। किन्तु अकबर ने कश्मीर घाटी को अपने साम्राज्य में मिला लेने का निश्चय कर लिया। अतः उसने कठोर मुद्रा अपना ली और युसुफ खान को हिरासत में ले लिया। याकूब को पकड़कर उसके पिता के साथ कैदी के रूप में बिहार भेज दिया गया।

3.7:4 सिंध की विजय

भाखर के द्वीप किले सहित ऊपरी सिंध को अकबर ने 1574 में ही जीत लिया था। सन् 1590 में उसने नवजवान दिलेर अब्दुल रहीम खान–ए–खाना को इस हिदायत के साथ मुल्तान का सूबेदार

नियुक्त किया कि वह सिंधु नदी के मुहाने तक सिंध की विजय पूर्ण करें। इस प्रयोजन से उसे सौ हाथियों और तोपखाने की एक श्रृंखला समीत एक शक्तिशाली शाही फौज जिसमें अनेक सैनिक अधिकारी थे दी गई। थट्टा के तुर्कमान सरदार मिर्ज़ा जानी बेग की शाही फौज ने थट्टा के किले में घेर लिया जबकि शाही फौज की एक टुकड़ी ने सहवान पर आक्रमण कर दिया। जानी बेग ने दो माह तक कड़ा मुकाबला किया किन्तु उसे बार–बार पराजय का मुंह देखना पड़ा और आत्म समर्पण करना पड़ा। अन्त में इसे भी मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

3.7:5 उड़ीसा का विलय

राजा मान सिंह काबुल से दरबार में वापिस बुला लिया गया और 1586 ई0 मे बिहार और बंगाल का शासन प्रबन्ध उसे सौप दिया गया। शहंशाह ने उसे उड़ीसा, जो उन दिनों लोहानी जाति के एक अफगान परिवार के नियंत्रण में था को जीतकर बंगाल की खाड़ी के किनारे–किनारे साम्राज्य की पूर्वी सीमाओं का विस्तार करने की सलाह दी। सन 1590 में मानसिंह ने उड़ीसा पर आक्रमण कर दिया और इसके शासक निसार खान को आत्म समर्पण करने के लिए विवश कर दिया। निसार ने नजराने के तौर पर समुद्र किनारे प्रसिद्ध हिन्दू जगन्नाथ मंदिर समेत पुरी के क्षेत्र समर्पित कर दिए। इन्हें खालसा में शामिल कर लिया गया। सन् 1592 में निसार खान ने शत्रुतापूर्ण रवैये का संकेत दिया जिसके कारण मानसिंह ने दूसरी बार चढ़ाई कर दी। विद्रोही पराजित हुआ तथा उड़ीसा को मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया गया।

3.7:6 बलुचिस्तान की विजय

मार्च 1586 में ही करीब आधे दर्जन बलुची सरदारों को शाही दरबार में उपस्थित होने और अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार कर लिया गया था। उत्तर–पश्चिम में मुगल साम्राज्य के विस्तार को प्रोत्साहन देने के लिए अकबर ने उन दिनों अफगानों द्वारा शासित बलुचिस्तान को जीतने हेतु मीर मासूम को तैनात किया। उसने उनके गढ़ सीबी जो क्वेटा के उत्तर–पूर्व में स्थित था, पर आक्रमण किया तथा कड़े युद्ध में उन्हें पराजित किया। साथ ही उसने राष्ट्रीय राजनीति की मुख्य धारा में शामिल होने पर शाही संरक्षण से होने वाले लाभों को महसूस कराने के लिए उन पर कूटनीतिक दबाव भी डाला। उसके प्रयास सफल हुए और इसके फलस्वरूप मकरान जो क्षेत्र कन्धार की सीमाओं तक समुंद्र के किनारे–किनारे था समेत पूरा बलुचिस्तान मुगल साम्राज्य का अंग बन गया।

3.8 अकबर का उत्तर–पश्चिमी नीति

मुगल साम्राज्य की वृद्धि और विस्तार के कारण अकबर धीरे–धीरे इसकी प्राकृतिक सीमाओं के प्रति सजग हो गया जिनकी विदेशी आक्रमणों अथवा घूसपैठों से रक्षा की जा सके। जहां हिमालय दीवार की तरह खड़ा था और उत्तर का एक संतरी थी वहीं उत्तर–पश्चिम में इसकी सुलेमान पर्वतमालाएं न केवल काफी नीची थी अपितु उनमें अनेक दर्रे थे जो भारतीय उपमहाद्वीप और मध्य एशियाई देशों के बीच सम्पर्क बनाए हुए थे। इसके अतिरिक्त खैरक, कुर्रम, टोची, गोमल एवं बोलन के विशाल दर्रे आर्यो और सिकन्दर से लेकर भारत में मुगल शासन के संस्थापक बाबर समेत तुर्को और मंगोलों तक सभी विदेशी आप्रवासियों और आक्रमणकारियों के लिए भारत का प्रवेश द्वार के लिए काम करते थे। उत्तरी भारत के कुछ सफल तुर्की शासक भी इस स्थिति के प्रति सजग थे और इल्तुतमिश, बलबन व अलाउद्दीन खिलजी को मंगोल खतरे से उत्तर–पश्चिम सीमा की रक्षा के लिए विशेष उपाय करने पड़े थे।

किन्तु मुगलों के साथ ऐसा नहीं था कि उनके समय में अफगानिस्तान भारतीय साम्राज्य जिसकी अंतराष्ट्रीय सीमाएं हिन्द कोह तक धकेल दी गई थी का ही एक अंग था। अकबर मध्यकाल का

पहला भारतीय सम्राट था जिसने उनकी उपद्रवी आदतों पर अंकुश लगाने एवं उनके पहाड़ी निवासों को शाही नियन्त्रण में लाने का गंभीर प्रयास किया। इस समस्या ने उसका ध्यान 1585 ई0 में खींचा जब मिर्जा मुहम्मद हकिम की मृत्यु होने पर अकबर ने काबुल को एक नियंत्रित स्त्रोत के रूप में अपने साम्राज्य में मिला लिया। उसने प्रारूपी भारतीय सूबों अथवा प्रांतो के पैटर्न पर काबुल में नागरिक शासन और प्रशासन की संस्थाऐं स्थापित की। इसके अतिरिक्त लगभग उसी समय एक नया खतरा काबुल से बहुत आगे मुगल साम्राज्य की वास्तविक अंतर्राष्ट्रीय उत्तर–पश्चिमि सीमाओं पर पैदा हुआ। यह खतरा पार (तुरान) में अबदुल्लाह खान के नेतृत्व में उजबेगों जो मुगलों के पारंपरिक दुश्मन थे, के अभ्युदय के रूप में था। सन् 1584 ई0 में अबदुल्लाह खान ने बदख्शान से उसके मुगल सरदार सुलेमान मिजी को भगाकर उस पर कब्जा कर लिया सुलेमान मिजी अपने परिवार सहित भागकर अफगानिस्तान चला गया और मिर्जा मुहम्मद हाकिम के पास शरण ली। सुलेमान मिर्जा का नवजवान पौत्र शाहरूख, जो जनवरी 1585 ई0 में फतेहपुर सीकरी पहुंच गया था और एक मनसबदार बन गया था, ने अकबर को अबदुल्लाह खान और काबुल के उसके सर्मथकों से मुगल साम्राज्य को होने वाले वास्तविक खतरे की सूचना दी। काफी सोच–विचार के बाद अकबर ने एक वृहत और दीर्घ कालीन उत्तर–पश्चिमी सीमा नीति बनाई। इस नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अकबर ने साम्राज्य के नागरिक शासन का प्रभार फतेहपुर सीकरी में अपने विश्वस्त और अनुभवी मंत्रियों को सौंप दिया और स्वयं मार्च 1585 में शाही दरबार के साथ दिल्ली प्रस्थान किया। उसने जुलाई 1585 में लाहौर के लिए प्रस्थान किया और वहीं से उत्तर–पश्चिमी सीमा की ओर धीरे–धीरे शिकार का आनन्द लेते हुए चला। राजा मानसिंह शाही दल के आगे–आगे शाही फौज लेकर काबुल की ओर बढ़े और जुलाई–अगस्त 1585 में अफगानिस्तान को अपने प्रभावी नियंत्रण में ले लिया।

इसी बीच 1591 में अबदुलारहीम खान–ए–खाना ने सिंध को जीत लिया था और 1595 तक फारस और कन्धार के सीमांतो तक बलुचिस्तान को मुगल सेनाओं ने रौंद दिया। पूर्व में कन्धार हुमायूँ के राज्य का एक भाग था। इस बात का लाभ उठाते हुए कि फारसी दरबार के फारसी सूबेदार मुजफ्फर हुसैन मिर्जा के बीच तनावपूर्ण सम्बन्ध है, अकबर ने अपने गुप्तचरों के जरिए मिर्जा से सम्पर्क साधा और उसे अपने पक्ष में कर लिया इसके परिणामस्वरूप मुजफ्फर खान ने अपने फारसी स्वामियों को दगा देकर कन्धार का प्रभार मुगल अधिकारी शाहबेग को सौंप दिया। मुजफ्फर खान अपने परिवार सहित भारत चला आया।

अकबर के उत्तर–पश्चिमी अभियान के प्रारम्भ होने के समय तक तूरान के शासक अबदुल्लाह खान उजबेग का बदख्शान पर दृढ़ नियंत्रण हो चुका था। अतः अकबर ने उसे चुनौती देने का कोई प्रयार नहीं किया फिर भी वह उजबेग सरदार को अफगानिस्तान में घुसपैठ न करने की चेतावनी देने को बैचेन था। अतः अकबर ने अपने सैनिक जनरलों को उत्तर–पश्चिम में विशेषकर हिन्द कोट, (हिन्दकुश) के साथ सटे हुए अफगानिस्तान की अंतराष्ट्रीय सीमाओं को मजबूत और सुरक्षित करने का आदेश दिया। विशाल सेना में सुसज्जित सैनिक चौकियों की स्थापना और अंर्तराष्ट्रीय सीमाओं पर मुगल सैनिकों की तेज गतिविधियों के कारण अबदुल्लाह खान समझ गया कि अकबर हर स्थिति के लिए तैयार है। वस्तुतः सुदृढ़ उत्तर–पश्चिमी अभियान की अकबर द्वारा की गई पहल के कारण ही तूरान के साथ शांति स्थापित हो सकी। सन 1595 ई0 में कन्धार पर मुगलों द्वारा स्थापित नियंत्रण से अबदुल्लाह खान उजबेग बेहद भयभीत हो गया और उसने मुगल क्षेत्रों पर हमला करने के सारे विचार त्याग दिये। अकबर की महज एशियाई नीति के फलस्वरूप उसका दिमाग खराब नहीं हुआ, बल्कि इसने उसे अधिकाधिक विनम्र सौम्य और अपने राज्य पर मजबूत पकड़ बनाए रखने एवं हाल में विजित क्षेत्रों में पूर्ण शांति और व्यवस्था कायम करने की उसकी चाहत में गंभीर बना दिया।

3.9 अकबर की दक्कन विजय

अकबर की साम्राज्यवादी नीति का मुख्य सार मुगल राजघराने के अधिराजत्व के अधीन भारत का राजनीतिक एकीकरण था। सन 1591 ई0 तक सिंध के सम्मिलन के बाद वह उत्तर का र्निविवाद

स्वामी बन गया एवं उत्तर–पश्चिमी अभियान की उसकी उल्लेखनीय सफलता ने उसकी ख्याति और प्रतिष्ठा में चार चांद लगा दिए। सिंध में अपनी विजय के तुरन्त बाद अकबर ने अगस्त 1591 में लाहौर से चार कूटनीतिक मिशन दक्कन के चार प्रमुख क्षेत्रीय राज्यों, खानदेश अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा के लिए रवाना किए। खानदेश के सुल्तान राजा अलीखान जिसका राज्य मुगल साम्राज्य के ठीक दक्षिण में ताप्ती घाटी में था ने दिल्ली का अधिराजत्व स्वीकार कर लिया। सन 1593 ई0 के अंत में अकबर ने अहमदनगर को पराभूत करने के उद्देश्य से दो मुगल सेनाऐं रवाना की एक का नेतृत्व अब्दुल रहीम खाने–खाना कर रहा था और दूसरे का शहजादा मुराद था। शहजादा मुराद और खाने–खाना ने क्रमशः गुजरात और मालवा से अपनी–अपनी सेना लेकर प्रस्थान किया। वे अहमदनगर से करीब चालीस कोस दूर चंद में एक–दूसरे से मिल गए। नवम्बर 1595 में मुगल सेनाऐं आक्रमणकारी मिजाज में अहमदनगर के समीप पहुंच गई। मियां मंजू उनके रंग–ढंग से भयभीत हो गया और अहमदनगर किले को चांद बीबी के हाथों सौंपकर भाग गया। चांद बीबी ने 3 महीने से भी अधिक समय तक मुगल सेना का सामना किया लेकिन अंत में हार गयी और इस पर मुगलों का अधिकार हो गया।

इसके बाद अकबर ने बारी–बारी से खानदेश 1599 ई0 मे असीरगढ़ को 1601 ई0 में जीत लिए और उसकी दक्कन नीति सफल हुई। अकबर का सफल सैनिक जीवन जिसकी व्यावहारिक रूप से गुजरात में 1560 में मालवा के विरूद्ध सेना भेजने के साथ हुई थी असीरगढ़ की विजय के साथ समाप्त हो गया। अपने महान पितामह की भांति वह भी जन्मजात सैनिक और लोकनायक था और चार दशकों से भी अधिक समय तक पूरे जोश में तलवार थामें रहा और अपने सुनियोजित और निडरता से किए सैनिक अभियानों में लगभग हमेशा ही सफल रहा। उसका विशाल साम्राज्य 15 प्रांतो अथवा सूबों में विभक्त था जिनमें से अधिकांश का नाम उनके मुख्यालयों के नाम पर रखा गया था। पूरब से पश्चिम तक उत्तर के बारह सूबे बंगाल, बिहार, इलाहाबाद, अवध, आगरा, दिल्ली, लाहौर, मुलतान काबुल, अजमेर, मालवा और अहमदाबाद, दक्कन में मुगल क्षेत्र को तीन प्रांतों खानदेश, बरार व अहमदनगर में विभाजित किया गया था, उन तीनों का एक ही सूबेदार था। उड़ीसा बंगाल का एक सरकार जिला था जबकि उसी तरह कश्मीर व कंधार काबुल सूबा के सरकार माने जाते थे। बलुचिस्तान व सिंध मुलतान सूबे में शामिल थे।

3.10 अकबर की धार्मिक नीति

विभिन्न समुदायों के देश मध्यकालीन भारत में उसके लोगों के धार्मिक विश्वासों आचरणों में काफी भिन्नता थी। इस्लाम धर्म यहां दृढ़ता से जमा हुआ था और अल्पसंख्यक होने के बावजूद मुसलमानों की भारतीय सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था में प्रभावशाली स्थिति थी। अकबर मध्यकालीन भारत का पहला शासक था जिसने धार्मिक सहिष्णुता की नीति को धर्मनिरपेक्षता के शिखर तक पहुंचाया। उसकी राज्य नीति केवल भावनाओं एवं समान्योक्ति पर आधारित नहीं थी। देश की सामाजिक–राजनीतिक दशा ऐसी थी कि अकबर ने धार्मिक विषयों में स्वतंत्र विचार रखना उचित समझा। उसकी भारतीय प्रजा में गैर–मुस्लिम बहुसंख्यक थे। उनका विश्वास और सक्रिय समर्थन जीते बगैर अकबर भारत में मुगल शासन को स्थापित और सुदृढ़ करने की उम्मीद नहीं कर सकता था। भारत मे इस्लाम जिसे यहां के अधिकांश लोगों ने अपनाने से अस्वीकार कर दिया था के आगमन के समय ही धर्म ने भारतीय समाज मे विभाजनकारी शक्ति की भूमिका अदा की थी। अकबर ने जटिल भारतीय सामाजिक–राजनैतिक व्यवस्था की अपकेंद्री प्रवृत्तियों को बखूबी समझा एवं धर्म को राजनीति से पृथक कर इन प्रवृत्तियों को खत्म करने का गंभीर प्रयास किया। इसके अतिरिक्त अकबर का खुद का कटु अनुभव था कि मात्र धार्मिक सादृश्य ही अपने अनुयायियों का प्रेम और प्रतिष्ठा पाने की गारंटी नहीं है। उसने अपने ही बेईमान और ईर्ष्यालु सगे–सम्बन्धियों के हाथों कष्ट भोगा था।

अकबर पूरी तरह अपने महत्वाकांक्षी और उप्रद्रवी मुस्लिम अमीरों जो प्रायः विद्रोह कर जाते थे और कभी–कभी तो उसकी जान लेने को उतारू हो जाते थे पर ही निर्भर कर सकता था। दूसरी ओर

अकबर की अत्यंत समर्पित बुद्धिमती और सुसंस्कृत हिन्दू पत्नियों ने उसका प्यार जीत लिया और उनके सम्बन्धियों ने राजगद्दी के प्रति निस्वार्थ सेवा अर्पित कर उसकी कृतज्ञता जीती।

धार्मिक नीति के क्षेत्र में अकबर ने एक नई दिशा में प्रगति की। उसकी महानता उसकी धार्मिक नीति पर ही आधारित है। अकबर से पूर्व सल्तनत कालीन शासकों द्वारा उदार धार्मिक नीति का प्रदर्शन नहीं किया गया। अफगान शासकों मे मात्र शेरशाह ने इस दिशा मे कुछ प्रयास किया किन्तु एक पूर्ण उदार धार्मिक नीति का प्रारम्भ अकबर के शासनकाल में ही संभव हुआ। अपनी इस नीति से उसने सभी धर्मों एवं संप्रदायों के एकता व समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। अकबर की धार्मिक नीति का निर्धारण विभिन्न तत्वों द्वारा हुआ है। धार्मिक उदारता अकबर को विरासत के रूप में मिली थी। अकबर के पिता हुमाँयू में भी उदारता एवं सहिष्णुता के गुण विद्यमान थे। अकबर के धार्मिक नीति को उदार बनाने में उसके शिक्षक एवं संरक्षकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। बायर्जाद, मुनीम खॉ, मीर अब्दुल लतीफ व मुल्ला पीर मुहम्मद जैसे उदार शिक्षकों का अकबर पर गहरा प्रभाव पड़ा। इनमें मीर अब्दुल लतीफ अत्यंत उदार थे जिनका अकबर पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। इन्हीं से अकबर ने सुलह–ए–कुल अर्थात सर्वत्रिक भाईचारा का ज्येष्ठ सिद्धांत सीखा। अकबर का संरक्षक बैरम खां भी अत्यंत उदार एवं सहिष्णु था जिसका प्रभाव अकबर के ऊपर पड़ा।

अकबर की धार्मिक नीति को भक्ति एवं सूफी संतो ने भी प्रभावित किया। वह सूफीवाद की चिश्तिया शाखा के अधिक निकट था। तथा शेख सलीम चिश्ती के प्रति उसमें अपार श्रद्धा थी। सूफी विद्वान शेख मुबारक तथा उसके पुत्र अबुल फजल एवं फैजी ने भी अकबर की उदार मनोवृत्ति के विकास में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। शेख मुबारक 1573 ई0 में गुजरात विजय के बाद अकबर के सम्पर्क में आया। इसके अतिरिक्त अकबर स्वयं उदार प्रवृत्ति का व्यक्ति था धर्म एवं जाति का भेदभाव किए बिना प्रजा के कल्याण को ही वह ईश्वर की सच्ची उपासना मानता था। इसी से प्रभावित होकर 1562 ई0 में युद्ध बंदियों को दास बनाने तथा बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार कराने पर प्रतिबंध लगा दिया। 1562 ई0 में अकबर ने अम्बर की राजपूत राजकुमारी हरकाबाई से विवाह किया। इसका राजनैतिक एवं धार्मिक परिणाम महत्वपूर्ण रहा। वह हिन्दु धर्म के सम्पर्क में आया तथा प्रवाहित होकर उन्हें अनेक सुविधाऐं प्रदान की। वह स्वयं मथुरा की यात्रा की तथा 1563 ई0 तीर्थयात्रा कर समाप्त कर दिया। 1563 ई0 मे ही पंजाब में गौ हत्या पर प्रतिबंध लगा दिया। बाद में राजपूतों से संघर्ष के दौरान इस कर को पुनः लगा दिया गया तथा अन्तिम रूप से 1579 ई0 में उसने इसे समाप्त कर दिया। अपनी धार्मिक नीति के परिणामस्वरूप अकबर ने अपने समय के भारतीयों को न केवल राजनीतिक बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक नेतृत्व प्रदान किया और मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ एवं विस्तृत किया।

3.11 अकबर की प्रशासनिक नीति

अकबर भारत में मुगल वंश तथा प्रशासन का वास्तविक संस्थापक था यह पद्धति प्रभुसत्ता सम्पन्न तथा इस्लामी राज्यतंत्र के उन परम्परागत मुस्लिम संकल्पना से मूलभूत रूप से भिन्न थी जिसके मुख्य प्रतिमान बगदाद के अब्बासिद खलीफाओं तथा मिस्र के खलिफाओं ने स्थापित किए थे। अकबर ने विरासत में एक इस्लामी राजतंत्र प्राप्त किया था जो अमीर–उल–मोमनिन के रूप में निरपेक्ष शासक के व्यक्तित्व के चारों ओर परिक्रमा लगाता था उसने राज्य की परम्परागत इस्लामी सिद्धांत की सभी आवश्यक विशेषताओं को सुरक्षित रखा। इसलिए अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों के बाद अकबर ने राज्य नीति के उपकरण के रूप में इस्लामी कानून की सर्वोच्चता को पुर्नगठित किया। तथा मुगल कुलीन वर्ग उल्मा से विश्वास का रक्षक एवं अनुयायियों का नेता के रूप में श्रद्धा प्राप्त की थी। अकबर ने साहस के साथ अपनी सभी जनता जिसमें संयोग से गैर–मुस्लिमों का बहुमत था, का निरपक्ष शासक होने के अपने दावे को दृढ़तापूर्वक रखा।

अकबर ने राज्य सिद्धांत अपनी अर्न्तवस्तु और कार्य क्षेत्र दोनों दृष्टियों से क्रांतिकारी थे और वे मुस्लिम के इस्लामी राज्य की संकल्पना के प्रतिकूल एवं धर्मनिरपेक्ष राज्य के पक्षधर थे। अकबर की हिन्दू जनता इस सिद्धांत के पक्ष में थी और मुस्लिम जनता में से अधिसंख्यक लोगों ने अनिच्छापूर्वक

ही इस सिद्धांत को स्वीकार किया था। ऐसे महान विचारों के लिए अपने ध्यान में रखते हुए अकबर ने मुगल शासन के समूचे प्रशासनिक संरचना में आमूलचूल परिवर्तन ला दिए। एक व्यवहार कुशल राजनीतिज्ञ तथा एक महान प्रशासक होने के नाते अकबर ने राजतंत्र के एक–एक पक्ष पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। अकबर सच्चे अर्थों में मुगल शासन तथा प्रशासन प्रणाली का संस्थापक था। इसने उसके जीवन काल में देश की धरती में बहुत गहरी जड़े जमा ली थी और उसके शाही उत्तराधिकारियों के शासनकाल के दौरान एक शताब्दी से भी अधिक समय तक इसी रूप में बना रहा और मुगल शासन के सुदृढ़िकरण एवं विस्तारीकरण में एक अहम भूमिका निभाता रहा।

3.12 जहाँगीर का परिचय

अकबर के दो पुत्र हसन और हुसैन बाल्यावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। उसका तीसरा बेटा सलीम जो नूरूद्दीन जहाँगीर के नाम से गद्दी पर बैठा था। जहाँगीर 30 अगस्त 1569 राजपूत शकी मरियम–उज–जमानी के गर्भ से से हुआ जो राजा बिहारीमल की पुत्री थी। अकबर ने अपने बच्चों के पालन पोषण में गहरी दिलचस्पी ली उसने राजकुमारों को सैन्य प्रशिक्षण और शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रसिद्ध शिक्षकों और सेना नायकों को नियुक्त किया। कुछ भी हो उसके श्रेष्ठ प्रयासों के बावजूद उसका कोई भी पुत्र उसकी तरह बहुमुखी प्रतिभा का व्यक्ति न बन सका। अकबर के सभी तीनों जीवित पुत्रों ने जवान होने पर उस युग की बुराइयों को ग्रहण कर लिया और शबाव एवं शराब के आदि हो गए। राजकुमार मुराद की मृत्यु के कारण मई 1599 में हुई जबकि दनियाल एक शारीरिक और मानसिक क्षति से अप्रैल 1604 में मर गय। युवराज सलीम भी लापरवाही से रहता था फिर भी वह अपने बेहतर शरीर के कारण अत्यधिक तनाव का सामना कर सका। बादशाह बनने के बाद जहाँगीर ने मुगल साम्राज्य के सुदृढ़िकरण तथा विस्तारीकरण के लिए जो प्रयास वह मुगल शासक अकबर के समान तो नहीं लेकिन फिर भी उसने इस परम्परा को अपनाते हुए मुगल साम्राज्य दृढ़ता और शक्ति प्रदान की।

3.13 जहाँगीर की राजपूत नीति

जहाँगीर ने अपने प्रभावशाली पिता की भाँति राजपूत नीति को ईमानदारी पूर्वक अपनाया। राजपूत राजकुमारी का पुत्र अपने धार्मिक दृष्टिकोण में अत्यंत उदार तथा खुले विचारों वाला व्यक्ति था उसने अपने पिता की राज्य नीतियों का तक्रसंगत निर्णय से पालन किया। यह कहना गलत नहीं होगा कि अकबर द्वारा परिश्रम से विकसित की गई मुगल नीति के मूल तत्वों ने जहाँगीर तथा शाहजहाँ के शासक काल के दौरान ही स्वादिष्ट फल प्रदान किए थे। गुरू अर्जुन देव के बारे में जहाँगीर अपने संस्मरणों में जो कठोर टिप्पणी की है उसमें धार्मिक असहिष्णुता की गंध आती है, वह टिप्पणी लगता है एक क्रोधी तानाशाह की अपवाद स्वरूप निकली भड़ास थी जिसका स्वयं का ही अस्तित्व अपने ही पुत्र के विद्रोह के कारण खतरे में पड़ गया था। जहाँगीर ने इसके बाद धार्मिक असहिष्णुता की भावना का प्रदर्शन फिर कभी नहीं किया। उसने अपनी प्रजा को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की तथा गैर–मुस्लिमों पर जजिया या सामाजिक–धार्मिक प्रतिबंध लगाने का बिल्कुल भी प्रयत्न नहीं किया। खुर्रम घटना पर राजा मान सिंह के साथ उसके सम्बंधों की विरक्ति से हिन्दुओं विशेषकर राजपूतों की ओर जहाँगीर की नीति या दृष्टिकोण में कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा।

अपने पिता की तरह जहाँगीर ने भी कई राजपूत राजकुमारियों से विवाह किया था और राजपूत शासक घरानों के साथ स्नेहपूर्ण संबंध बनाये रखे। जहाँगीर का उत्तराधिकारी राजकुमार खुर्रम का जन्म एक राजपूत राजकुमारी से हुआ था जो जोधपुर के राजा उदयसिंह की पुत्री थी। उसका राजदरबार में राजपूत दरबारियों तथा सैन्य प्रमुखों का शक्तिशाली गुट था। उसका राजदरबार विभिन्न समुदायों के विद्वानों कलाकारों तथा सैन्य प्रमुखों से पहले की भांति ही सुशोभित था और हिन्दुओं के लिए असैन्य तथा सैन्य सेवाओं के दरवाजे पूर्णतः खुले थे।

3.14 मेवाड़ के साथ सम्बन्ध

जहाँगीर के पदारोहण के समय मुगल साम्राज्य मेवाड़ के साथ युद्धग्रस्त था। यह भ्रम चारों तरफ फैला था कि स्वतंत्र मेवाड़ का अस्तित्व अंशतः स्वयं उसकी बेवकूफी के कारण ही था। क्योंकि अपने राजकीय जीवन में उसने उसको अधीन करने के अपने पिता के आदेश को मानने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार मेवाड़ की जीत जहाँगीर के लिए सम्मान का विषय बन गई। तदनुसार उसने पदारोहण के तुरंत बाद ही अपने दूसरे पुत्र राजकुमार परवेज के नियंत्रण में मेवाड़ की ओर एक सैनिक टुकड़ी भेजा। इस अभियान का मुख्य लक्ष्य राणा अमर सिंह था। देवार दर्रे पर राज सैनिकों तथा राणा के मध्य खूनी किन्तु अनिर्णायक युद्ध हुआ। मेवाड़ के राजपूतों के मध्य मतभेद उत्पन्न करने के उद्देश्य से मुगलों ने सागर को अपने आश्रित के रूप में चित्तौड़ नियुक्त किया यद्यपि लोगों ने अपने राणा के रूप में विश्वासघाती को स्वीकार नहीं किया और शीघ्र ही सागर को चित्तौड़ खाली करना पड़ा। 1608 से 1615 के बीच जहाँगीर ने मेवाड़ के विलय के लिए करीब चार सैनिक अभियानों को भेजा। 1608 में महाबत खान के नेतृत्व में, 1609 में अब्दुल्लाह खान के नेतृत्व में, 1611 में मिर्जा अजीज कोका तथा राजकुमार खुर्रम के नेतृत्व में 1613 में जहाँगीर ने खुद अपनी निगरानी में मेवाड़ के विरूद्ध अविराम सैन्य कार्यवाही का विचार बनाया। उसने अपना मुख्यालय अजमेर स्थानांतरित कर दिया और अपनी सम्पूर्ण सेनाओं को घरफूंक की नीति अपनाई उसने शहरो को विध्वंस कर दिया गांवों को मिट्टी में मिला दिया। राजपूतों द्वारा सुरक्षित तथा बाधित क्षेत्रों को अवरूद्ध कर दिया गया। इन क्षेत्रों में सभी प्रकार की बाह्य आपूर्तियों को बंद कर दिया गया यहां तक कि इन क्षेत्रों में आने जाने–वाले जलमार्गों को बंद कर उनकी दिशा को भी परिवर्तित कर दिया गया। मेवाड़ में अकाल तथा महामारी फैल जाने से स्थिति और अधिक खराब हो गई। परिणामतः मेवाड़ के लोगों की हिम्मत टूट गयी तथा अपनी बर्बादी से भयभीत हो गये। अतः 1615 में राणा ने अपने मामा शुभकरण को मुगलों के साथ सम्मानजनक शर्तों पर शांति समझौता करने हेतु भेजा। राजकुमार की सिफारिश पर सम्राट ने मेवाड़ के साथ अति उदार शर्तों पर शांति समझौता किया और मेवाड़ मुगल साम्राज्य कें अधीन आ गया।

3.15 मुगल साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण एवं विस्तारीकरण के लिए जहाँगीर की दक्कन नीति

अपने पिता की तरह जहाँगीर भी सम्पूर्ण दक्षिण भारत को जीतने के लिए समर्पित था ताकि देश में राजनीतिक एकता पूर्ण हो सके। इस प्रकार यह अकबर की नीति की निरन्तरता थी जिसमें दक्षिण के समस्त क्षेत्रीय राज्यों से आक्रामक युद्ध की कल्पना की गई थी। 1608 में जहाँगीर ने अब्दुल रहीमखान–ए–खाना के हारे हुए क्षेत्रों को अहमदनगर से पुनः प्राप्त करने की आज्ञा दी किन्तु मलिक अम्बर के शक्तिशाली प्रतिरोध के सामने वह कुछ भी करने में असफल रहा। 1610 में परवेज को दक्कन का सूबेदार नियुक्त कर अहमदनगर पर आक्रमण करने के लिए कहा गया, किन्तु उपलब्धि कुछ भी नहीं हुई। 1616 में अहमदनगर को रौंदने के लिए साम्राज्यवादियों द्वारा हर प्रकार की व्यवस्थाऐं की गई। राजकुमार खुर्रम ने राजनैतिक शक्ति से मलिक अम्बर के साथ समझौता स्थापित करने में अपनी विशिष्ट कूटनैतिक दक्षता का परिचय दिया। मुगलों की भयानक युद्ध की तैयारी तथा उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा को देखकर मलिक अंबर 1617 में शांति समझौता करने पर सहमत हो गया। समझौता बहुत ही उदार शर्तों पर हुआ तथा अहमदनगर को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

3.16 कांगड़ा की जीत 1620 ई0

1584 में अकबर ने कश्मीर घाटी पर विजय प्राप्त की थी। उत्तरी–पूर्वी पंजाब में कांगड़ा का दुर्ग अभेद माना जाता था। अकबर ने कांगड़ा दुर्ग पर अधिकार करने के लिए खाने जहाँ को नियुक्त किया किन्तु वह सफल नहीं हुआ। जहाँगीर ने कांगड़ा विजय का निश्चय किया। इस उद्देश्य से उसने 1615ई0 में लाहौर के सूबेदार मुर्तजा खां को कांगड़ा अभियान के लिए नियुक्त किया किन्तु उसे

सफलता नहीं मिली। तत्पश्चात् यह दायित्व 1618 में शाहजादा खुर्रम को सौंपा गया। खुर्रम ने कांगड़ा दुर्ग का घेरा डाला तथा दुर्ग में रसद पहुंचने के सभी मार्ग को अवरूद्ध कर दिया। 14 माह के घेराबंदी के बाद 16 नवम्बर 1620 ई0 को किले पर मुगलों का अधिकार हो गया।

3.17 कन्धार की पराजय 1622 ई0

साम्राज्यिक मुगलों और फारस के बीच काफी लंबे समय तक कंधार झगड़े का विषय रहा। अकबर ने अपनी कूटनीतिज्ञ दक्षता द्वारा 1595 में इसे फारसी नियंत्रण से प्राप्त किया था, हालांकि फारसियों ने इस पराजय से समझौता नहीं किया था। राजकुमार खुसरों के विद्रोह के समय फारस के शाह अब्बास ने कंधार पर आक्रमण किया किन्तु बलपूर्वक इन पर विजय पाने में असफल रहा तथा क्षमापूर्वक जहाँगीर की ओर समझौतावादी भाव अपनाया। मुगल सम्राट को प्रसन्न करने के उद्देश्य से 1607 से 1621 के बीच बहुमूल्य उपहारों के साथ उसने चार शिष्टमण्डल आगरा भेजे, तथापि जहाँगीर की अयोग्यता तथा राज्य के मामलों से विमुख होने का लाभ उठाकर 1622 में कंधार पर अचानक आक्रमण कर दिया और इसे अपने नियंत्रण में ले लिया। इस समय तक नूरजहां ने शाहजहाँ के विरूद्ध षडयंत्र रचना शुरू कर दिया था। उसने राजकुमार को कंधार अभियान पर नेतृत्व के लिए जहाँगीर से आज्ञा प्राप्त की किन्तु राजकुमार ने ऐसा करने से इंकार कर दिया और बदले में विद्रोह का झण्ड़ा उठा लिया। इससे फारसियों को अपने नये क्षेत्रों को एकीकृत करने में सफलता मिल गई तथा कंधार मुगल साम्राज्य के नियंत्रण से निकल गया।

3.18 जहाँगीर की धार्मिक नीति

धार्मिक नीति के क्षेत्र में जहाँगीर ने अपने पिता का ही अनुकरण किया तथा सुलह–ए–कुल की नीति को कार्यन्वित रखा। उसका पालन पोषण एक उदार वातावरण में हुआ था। वह ईश्वर में विश्वास करता था तथा अपने धर्म की मुख्य बातों का पालन करता था। हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाइ सभी धर्मों के मानने वालों को राज्य की ओर से सुविधाऐं प्राप्त थीं। जहाँगीर अपने पिता अकबर की भांति हिन्दु धर्म के प्रति सहिष्णुता की नीति को अपनाया। उसके समय में हिन्दू राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त हुए तथा उनके ऊपर कोई अतिरिक्त कर नहीं लगाया गया। वह हिन्दुओं के त्योहारों में खुद भाग लेता था। जहाँगीर ने 1612 ई0 में पहली बार रक्षा बन्धन का त्योहार मनाया तथा अपनी कलाई पर राखी बँधवायी। जैनियों के प्रति जहाँगीर ने कुछ कठोर कदम अवश्य उठाया किन्तु उन्हें जैन धर्म को मानने में कोई बांधा उत्पन्न नहीं की। गुजरात के जैनियों को दण्ड़ित करने के दो कारण बताए जाते हैं पहला कारण था कि श्वेताम्बर जैनियों के नेता मानसिंह ने खुसरो के विद्रोह के समय यह भविष्यवाणी की थी कि दो वर्ष के अंत तक साम्राज्य का अन्त हो जाएगा किन्तु कुछ समय बाद यह आदेश वापस ले लिया। दूसरा कारण नैमिकता का था। जैन भक्तों की बहु–बेटियां मंदिरों में रहने वाले जैन यात्रियों से मिलती थी। 1617 में जहाँगीर ने जैन मंदिरों को बन्द करने तथा जैन यात्रियों को साम्राज्य से बाहर निकालने का आदेश दिया किन्तु यह आदेश क्रियान्वित नहीं किया जा सका। इसी तरह की नीतियां उसने ईसाई, सिख व सूफी सम्प्रदायों के लिए अपनाई जो मुगलवंश के साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण तथा विस्तारिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

3.19 सारांश

निःसन्देह अकबर एवं जहाँगीर भारत में मुगल साम्राज्य का विस्तार के साथ–साथ इसे सुदृढ़ संगठित भी बनाया। इन शासकों ने जहां अपनी साम्रज्यवादी नीति का पालन करते हुए एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया वहीं इसको सुदृढ़ बनाने हेतु उदार धार्मिक नीति का भी पालन किया। राजपूतों के साथ मित्रता एवं वैवाहिक सम्बन्ध ने इसमें और दृढ़ता प्रदान कर दी। प्रशासन को सुदृढ़ बनाने हेतु अनेक उपाय किए गये स्थानीय लोगों का सहयोग लिया गया तथा व्यवसाय को चुस्त–दुरूस्त किया

गया। राजपूत नीति के माध्यम से शासक वर्ग का सहयोग भी प्राप्त हुआ। अकबर की विस्तारवादी नीति का उसके पुत्र जहाँगीर ने भी जारी रखा। उसने कांगड़ा, कंधार, अहमदनगर एवं मेवाड़ को अपने अधीन लाया। अकबर द्वारा स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था को और अधिक मजबूत बनाया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अकबर और जहाँगीर की उदार धार्मिक नीति एवं सहिष्णुता के भाव ने नव स्थापित मुगल साम्राज्य को भारत में अत्यधिक दृढ़ता प्रदान की। अब मुगलों को चुनौती देने वाले राजपूत स्वंय ही मुगल साम्राज्य के संरक्षक एवं कर्णधार बन चुके थे।

3.20 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अकबर का जीवन परिचय तथा उसकी धार्मिक नीति का वर्णन कीजिए ?
2. अकबर की सैन्य अभियान एवं विभिन्न विजयों का अवलोकन कीजिए ?
3. अकबर की साम्राज्यवादी नीति का मूल्यांकन कीजिए ?
4. अकबर की राजपूत नीति का वर्णन कीजिए तथा इसमें कितना सफल रहा इसका विश्लेषण कीजिए ?
5. जहाँगीर का जीवन परिचय देते हुए जहाँगीर की राजपूत नीति की व्याख्या कीजिए ?
6. जहाँगीर की दक्षिण नीति का वर्णन कीजिए ?

3.21 सन्दर्भ–ग्रंथ

1. हरीश चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड–2
2. जे. एल. मेहता, मध्यकालीन भारत का वृहत इतिहास खण्ड–2
3. बिपिन बिहारी सिन्हा, मध्यकालीन भारत
4. एल. पी. शर्मा, मध्यकालीन भारत
5. सतीश चंद्र, मध्यकालीन भारत
6. आर्शिवादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास

ब्लॉक दो

इकाई एक:मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार : शाहजहाँ एवं औरंगजेब

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देष्य

1.3 खुर्रम का उत्कर्ष

1.4 उत्तराधिकार का संघर्ष

1.5 राज्यारोहण

1.6 शाहजहाँ के शासन की प्रमुख घटनाएँ

1.6.1 जुझार सिंह का विद्रोह

1.6.2 खानजहाँ लोदी का विद्रोह

1.6.3 पुर्तगालियों का दमन

1.7 शाहजहाँ का सैनिक अभियान

1.8 शाहजहाँ की आरम्भिक सफलताएँ

1.9 शाहजहाँ की मध्य एषियाई नीति

1.9.1 कांधार का अभियान

1.9.2 शाहजहाँ का बल्ख अभियान

1.10 शाहजहाँ की दक्कन नीति

1.10.1 अहमदनगर पर आक्रमण

1.10.2 बीजापुर से संघर्ष

1.11 शाहजी द्वारा निजामषाही को पुनर्जीवित करने का प्रयास

1.12 बीजापुर पर आक्रमण

1.13 गोलकुंडा के साथ संधि

1.14 औरंगजेब के आरम्भिक सेना अभियान

1.14.1 उत्तर–पूर्वी तथा पूर्वी भारत

1.14.2 पुर्तगालियों का दमन

1.14.3 पलामू पर अधिकार

1.15 औरंगजेब की दक्षिण नीति

1.15.1 दक्षिण राज्यों से युद्ध के कारण

1.15.2 बीजापुर से संघर्ष

1.15.3 जयसिंह का अभियान

1.16 बीजापुर की आंतरिक राजनीति में मुगलों का हस्तक्षेप

1.17 बीजापुर का पतन

1.18 गोलकुंडा पर अधिकार

1.19 निष्कर्ष

1.20 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.21 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1: प्रस्तावना

शाहजहाँ और औरंगजेब मुगल वंश के दो महान शासक थे। जिनके शासनकाल में मुगल साम्राज्य का काफी विस्तार हुआ। उन्होंने साम्राज्य के विस्तार के साथ प्रशासन को भी सुदृढ़ किया। शाहजहाँ दक्षिण के राज्यों को अपने नियंत्रण में लाया तथा कंधार को पुनः ईरानियों से वापस लेने की कोशिश की एवं बल्ख पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। अन्य मुगल सम्राटों की भांति औरंगजेब भी एक साम्राज्यवादी शासक था। उत्तराधिकार के युद्ध से उत्पन्न अशांत राजनीतिक अव्यवस्था का लाभ उठाकर साम्राज्य के विभिन्न भागों में स्थानीय शासक स्वतंत्र होने का प्रयास कर रहे थे। इसलिए, सबसे पहले औरंगजेब ने उन स्थानों पर ही मुगल सत्ता पुनः सुदृढ़ करने का प्रयास किया। कालांतर में उसे राजपूतों, सिक्खों, मराठों एवं दक्षिण के राज्यों से लंबा संघर्ष करना पड़ा। अनेक समस्याओं के बावजूद औरंगजेब साम्राज्य को संगठित एवं सशक्त रखने में सफल रहा।

1.2: उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि

- शाहजहाँ का उत्कर्ष व उत्तराधिकार का संघर्ष।
- शाहजहाँ के शासन की प्रमुख विशेषताएँ।
- औरंगजेब का आरम्भिक सेना अभियान।
- औरंगजेब की दक्षिण नीति।
-

1.3: खुर्रम का उत्कर्ष

शाहजहाँ अथवा खुर्रम की महानता और सफलताओं का परिचय हमें जहाँगीर के शासनकाल में ही मिल जाता है। डॉ0 सक्सेना के शब्दों में, "जहाँगीर का शासनकाल मुख्यतः राजकुमार खुर्रम द्वारा प्राप्त ओजस्वी विजयों का इतिहास है'। उसका आकर्षक व्यवहार, आचरण के कठोर कर्तव्य–परायणता तथा दुरदयनीय साहस इन सब गुणों के कारण उसे जीवन में सफलता मिलना निश्चित था। उसे कभी अवसर की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। वह स्वयं उसके पास आ गया।" इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि डॉ0 सक्सेना के मत युक्तिसंगत है, क्योंकि खुर्रम ने अपने पिता के शासनकाल में मेवाड़, दक्षिण के क्षेत्र, कांगड़ा आदि के अभियानों में अपार सफलता हासिल की और उसने एक परिपक्व, कुशल तथा योग्य सेनानायक के रूप में अपना परिचय दिया। इन सफलताओं के बाद खुर्रम राजनीतिक क्षैतिज का एक उदीयमान नक्षत्र समझा जाने लगा।

जहाँगीर ने 1614 ई0 में मेवाड़ के राणा के विरूद्ध खुर्रम को मोर्चा लेने के लिए भेजा। मेवाड़ में इसके पूर्व अन्य अनुभवी सेनानायक विफल हो चुके थे। खुर्रम को मेवाड़ में असाधारण सफलता मिली और वहां राणा अमर सिंह ने आत्मसर्मपण कर दिये। मेवाड़–विजय ने खुर्रम की ख्याति में चार

चांद लगा दिया। यह खुर्रम के जीवन की पहली महान विजय थी। खुर्रम की योग्यता को देखकर 1616–17 ई0 में जहाँगीर ने शहजादे परवेज के स्थान पर दक्षिण में युद्ध–संचालन का भार उसे सौंपा। इसी समय उसे शाह की उपाधि भी प्रदान की गयी। खुर्रम ने अपनी योग्यता, चातुर्य तथा कूटनीति के बल पर मलिक अम्बर को बालाघाट लौटने तथा अहमदनगर एवं अन्य दुर्गों को मुगलों को समर्पित कर देने के लिए बाध्य कर दिया। इस पर जहाँगीर बहुत खुश हुआ और मुगल दरबार में खुर्रम की कूटनीति तथा चतुर राजनीति की धाक जम गयी। सम्राट ने खुर्रम के इन प्रषंसनीय सेवाओं के बदले में उसे उपहारों तथा उपाधियों के अतिरिक्त गुजरात की सूबेदारी भी 1616 ई0 में प्रदान कर दी। इसी वर्ष खुर्रम ने कांगड़ा के विरूद्ध ओजस्वी विजय प्राप्त की। दक्षिण में शान्ति–सुव्यवस्था स्थापित कर 1617 ई0 में खुर्रम दक्षिण को छोड़कर वापस चला आया था। किन्तु इसी बीच एक और मुगल अधिकारियों के भ्रष्टाचार तथा आपसी फूट और दूसरी ओर मलिक अम्बर का साहस, चतुराई और परिश्रम के कारण दक्षिण के ऊपर से मुगलों का नियंत्रण ढीला पड़ गया। अतः 1621 ई0 में खुर्रम को दूसरी बार दक्षिण जाना पड़ा। इस बार भी खुर्रम ने आत्मसाहस और परिश्रम के द्वारा इस क्षेत्र में पुनः मुगलों की शक्ति को स्थापित कर दिया। इस समय तक खुर्रम की शक्ति और प्रभाव साम्राज्य में बहुत अधिक बढ़ गये।

1.4: उत्तराधिकार का संघर्ष

जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् भी नूरजहाँ इस बात के लिए प्रयत्नशील रही कि शासन में उसका प्रभुत्व पूर्ववत् स्थापित रहे। उसने अपने दामाद शहरयार को भावी सम्राट बनाने के उद्देश्य से अधिकाधिक सैनिकों को इकट्ठा करने का और जल्द–से–जल्द लाहौर से उसके पास आ जाने का सलाह दिया। दूसरी ओर नूरजहाँ का भाई आसफ खाँ भी उतना ही अधिक सचेत था। उस समय उसका दामाद खुर्रम जिसे वह सम्राट बनाना चाहता था, दक्षिण में था। अतः उसने सोचा कि राजधानी में उपद्रवों को रोकने के लिए उपाय करना तथा दाराशिकोह, शाहशुजा और औरंगजेब को जो उस समय नूरजहाँ के महलों में हो, अधिकार में करना आवश्यक है। उसने संकल्प किया कि कुछ दिनों के लिए खुसरो के पुत्र दबारबख्श को सिंहासन पर बैठा दिया जाय। इसी समय नूरजहाँ ने आसफ खाँ को चालाकी से अपने पास बुलाकर उसे कैद करने का षड्यंत्र किया, किन्तु आसफ खाँ ने बहाने बनाये और वह उससे मिलने नहीं गया। उसने बनारसी नामक एक हरकारे को जहाँगीर की मृत्यु की सूचना शाहजहाँ के पास पहुंचाने के लिए भेजा। आसफ खाँ ने दवारबख्श को सम्राट घोषित किया और अमीरों के एक बड़े गुट को अपने पक्ष में कर लिया।

1.5 राज्यारोहण

इसी बीच शहरयार ने भी लाहौर में अपना राज्याभिषेक करवाया। लाहौर तथा वहां के राजकोष पर भी उसने अधिकार कर लिया। अमीरों एवं सैनिकों को अपने पक्ष में करने के उद्देश्य से उसने पानी की तरह पैसे बहाये। आसफ खाँ शहरयार को कुचलने के उद्देश्य से शक्तिशाली सेना के साथ लाहौर की ओर बढ़ा। लाहौर से लगभग छः मील की दूरी पर दोनों पक्षों की सेनाओं के बीच टक्कर हुई। शहरयार के सैनिक आसफ खाँ की सेना के सामने न टिक सके और तितर–बितर होकर भाग खड़े हुए। शहरयार ने भागकर जहाँगीर के रणवास में शरण ली, किन्तु उसे पकड़ लिया गया और एक कैदी के रूप में उसे दवारबख्श के समक्ष उपस्थित किया गया। उसे अन्धा बनाकर तहीमुरस तथा हुसंग के साथ कारावास में डाल दिया गया। जब इस विजय की सूचना खुर्रम को मिली तो उसने अपने श्वसुर को इन राजकुमारों को दवारबख्श सहित मौत के घाट उतार देने का आदेष दिया। आदेषानुसार, दवारबख्श सहित सभी राजकुमारों का वध कर दिया गया और आसफ खाँ की सर्वसम्मति से खुर्रम को लाहौर में सम्राट घोषित कर दिया गया और उसके नाम से खुतबा पढ़ा गया। 4 फरवरी, 1628 ई0 को खुर्रम ने आगरे में प्रवेष किया और शाहजहाँ के नाम से वह मुगल सिंहासन

पर आरूढ़ हुआ। इस अवसर पर उसने 'अबुल मुजफ्फर सिहाबुद्दीन मुहम्मद साहब फिरानेशानी' की उपाधि धारण की।

1.6 शाहजहाँ के शासन की प्रमुख घटनाएँ

आंतरिक विद्रोह

गद्दी पर बैठते ही शाहजहाँ को अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। इनमें प्रमुख थे। दक्षिण में खानजहाँ लोदी का विद्रोह (1629–31 ई0) और बुंदेलखंड का विद्रोह (1628–35 ई0)।

1.6.1: जुझार सिंह का विद्रोह

गद्दी पर बैठते ही शाहजहाँ को बुंदेला सरदार जुझार सिंह के विद्रोह का सामना करना पड़ा। वह वीर सिंह का पुत्र था जिस पर जहाँगीर की विशेष कृपा थी। 1627 ई0 में अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् जुझार सिंह ओरछा का राजा बना।अपने राज्य की जिम्मेदारी अपने पुत्र विक्रमादित्य को सौंपकर वह स्वयं आगरा दरबार में बादशाह के पास चला आया। ओरछा में विक्रमादित्य के व्यवहार से आम जनता और मुगल पदाधिकारी परेषान हो गए। अतः शाहजहाँ का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। अब्दुल हमीद लाहौरी की बादशाहनामा से ज्ञात होता है कि जब शाहजहाँ ने अधिकारियों को आदेष दिया कि वे वीर सिंह बुंदेला द्वारा अनुचित ढंग से एकत्र किए गए धन की जाँच करें तो जुझार सिंह ने अपने आपकों अपमानित महसूस किया। उसे भय भी हुआ। अतः, आगरा छोड़कर वह ओरछा चला गया और युद्ध की तैयारी करने लगा। महावत खाँ ने उसे परास्त कर दिया। उसने बादषाह से क्षमा माँग ली तथा हर्जाने के रूप में धन दिया। शाहजहाँ ने उसे दक्षिण के युद्ध में सहायता करने को भेज दिया। 1634 ई0 में जुझार सिंह ओरछा वापस लौटा और पुनः अपनी शक्ति बढ़ाकर उत्पात मचाने लगा। उसने मुगल अधिकृत राज्य गोंडवाना के दुर्ग चौरागढ़ पर आक्रमण कर वहाँ के राजा से इसे छीन लिया और राजा की हत्या करवा दी। मृत राजा के पुत्र के फरियाद करने पर शाहजहाँ ने उसे दुर्ग मुगलों को सौंप देने एवं 10 लाख रूपए, राजकोष में जमा करने का आदेष दिया। जुझाार सिंह ने इस आज्ञा की अवहेलना की। अतः, औरंगजेब को सेना के साथ भेजा गया। मुगल सेना द्वारा पीछा किए जाने पर मार–काट मचाता, दुर्गों को नष्ट करता हुआ वह दक्षिण की ओर भागा। मुगल सेना के सामने बुदेंल बिखर गए। स्वयं जुझार सिंह और उसका पुत्र विक्रमादित्य (विक्रमजीत) गोंडो के द्वारा मार डाले गए।

1.6.2: खानजहाँ लोदी का विद्रोह

शाहजहाँ के शासन काल में दूसरा महत्वपूर्ण विद्रोह खानजहाँ लोदी का हुआ। वह एक अफगान अमीर था। उसका पिता दौलत खाँ लोदी अकबर के अधीन एक पदाधिकारी था। खानजहाँ ने जहाँगीर की भी सेवा की थी। उसे 5000 का मनसब दिया गया था। बाद में वह गुजरात और दक्कन का सूबेदार भी बनाया गया। वह स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने का सवप्न देख रहा था। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने के पूर्व की विषम परिस्थितियों को देखते हुए उसने अपनी इच्छा पूरी करने का प्रयास किया। उसने 30,000 रूपयों में बालाघाट का मुगल इलाका अहमदनगर के निजामषाह को बेच दिया, एक सेना इकट्ठी की और मालवा पर चढ़ाई की योजना बनाई। इस समय तक शाहजहाँ सम्राट बन चुका था। अतः खानजहाँ ने सम्राट से माफी मांग लेने में ही अपनी भलाई समझी। शाहजहाँ ने उसकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उसे क्षमादान दिया। इतना ही नहीं, उसे पुनः दक्कन की सूबेदारी सौंपी गई, लेकिन उसे बालाघाट निजामशाह से वापस लेने को कहा गया। खानजहाँ ने इस कार्य में ढिलाई की, अतः शाहजहाँ ने उसे दरबार में बुलवा लिया और दक्कन की सूबेदारी महावत खाँ को सौंपी।

खानजहाँ कुछ दिनों तक आगरा में शांत और निष्क्रिय रहा परंतु अपने विद्रोही स्वभाव के वशीभूत होकर वह पुनः आगरा से भाग निकला। शाहजहाँ ने उसका पीछा करने के लिए सेना भेजी। बुंदेलखंड में पराजित होकर वह पुनः दक्षिण की ओर भागा। अहमदनगर के सुल्तान की सहायता एवं संरक्षता प्राप्त कर वह मुगलों से संघर्ष की तैयारी करने लगा। शाहजहाँ इस विद्रोह को दबाने के लिए 1629 ई0 में स्वयं दक्षिण की ओर बढ़ा। उसने मराठों को अपने पक्ष में मिला लिया। शाहजी भौंसले (षिवाजी के पिता) भी अहमदनगर की नौकरी छोड़कर शाहजहाँ के साथ मिल गए। खानजहाँ को तीन ओर से घेरकर उस पर आक्रमण किया गया और अनेक स्थानों पर उसे पराजित किया गया। अहमदनगर ने भी उसका साथ छोड़ दिया। खानजहाँ को बाध्य होकर उत्तर की ओर भागना पड़ा। पंजाब पहुँचकर वह अफगानी की सहायता से पुनः अपनी शक्ति संगठित करना चाहता था, परंतु उसकी इच्छा पूरी नहीं हो सकी। मुगल सेना ने उसके पुत्रों और संबंधियों को पकड़ लिया और उनकी हत्या कर दी। उत्तर प्रदेष के बाँदा जिला स्थित सिहोदा नामक स्थान पर खानजहाँ युद्ध करता हुआ। 1631 ई0 में मारा गया। इस प्रकार, अफगान एक बार पुनः मुगलों द्वारा निर्णायक रूप से पराजित कर दिए गए।

1.6.3ः पुर्तगालियों का दमन

शाहजहाँ को बुंदेलों और अफगान विद्रोह के अतिरिक्त पुर्तगालियों की ओर भी ध्यान देना पड़ा। पुर्तगाली पूर्वी बंगाल में भी बड़ी संख्या में बसे हुए थे। उन्हें नमक के व्यापार का एकाधिकार प्राप्त था जिसके बदले वे शाही राजकोष में प्रतिवर्ष 10,000 टंका देते थे। मुगल सामान्यतः उनके शांतिपूर्ण कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते थे। चटगाँव, हुगली इत्यादि में पुर्तगाली बस्तियाँ थीं। पुर्तगाली व्यापार के साथ कैथोलिक संप्रदाय का प्रचार भी करते थे। इस प्रक्रिया में वे बल का भी प्रयोग करते। ये स्थानीय निवासियों को पकड़कर ईसाई बनाते, उनके गाँवों पर आक्रमण कर उन्हें लूटते एवं लोगों को पकड़ कर बेच देते अथवा धनराशि लेकर ही मुक्त करते। चटगाँव के पुर्तगाली समुद्री डाका भी डालते थे। स्थानीय मुगल अधिकारियों ने इस तरफ ध्यान नहीं दिया था। शाहजहाँ को जब इन घटनाओं की सूचना मिली तो उसने उनके दमन का निष्चय किया।

शाहजहाँ पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसने धार्मिक भावनाओं के वशीभूत होकर पुर्तगालियों का दमन किया, परंतु पुर्तगालियों से सहायता माँगी थी जो उसे नहीं मिली। इसके अतिरिक्त शाहजहाँ के सम्राट बनने पर पुर्तगालियों ने उसे नजराना भी नहीं दिया था। इन कारणों से पुर्तगालियों से सम्राट व्यक्तिगत तौर पर भी नाराज था। इसी समय पुर्तगालियों ने मुमताज महल की दो बांदियों सहित उनकी नौकाओं का अपहरण कर लिया। बाध्य होकर शाहजहाँ ने पुर्तगालियों की धृष्टता के लिए उन्हें दंडित करने का निष्चय किया। बादषाह के आदेश पर बंगाल के गवर्नर कासिम खाँ ने जल और स्थल मार्गों से हुगली पर आक्रमण कर दिया। पुर्तगालियों ने युद्ध एवं शांति की नीति का सहारा लिया, परंतु वे निर्णायक रूप से 1632 ई0 में पराजित हुए। हुगली पर मुगलों का आधिपत्य स्थापित हो गया। पुर्तगाली शहर छोड़कर भागने लगे। हजारों पुर्तगाली मारे गए एवं हजारों स्त्री–पुरूषों को बंदी बना लिया गया। पुर्तगालियों की कैद से हजारों बंदियों को मुक्त करवाया गया। बंदी ईसाइयों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने को बाध्य किया गया। इनकार करने पर अनेकों की हत्या करवा दी गई। उनके गिरजाघर नष्ट कर दिए गए। शाहजहाँ द्वारा पुर्तगालियों का दमन राजनीतिक कारणों से उचित था, परंतु उनके विरूद्ध धार्मिक उन्माद का प्रदर्षन उचित नहीं था।

1.7ः शाहजहाँ का सैनिक अभियान

शाहजहाँ में अपूर्व सैनिक क्षमता थी। बादशाह बनने के पूर्व ही उसने इसका पर्याप्त परिचय दिया था। गद्दी पर बैठने के बाद आंतरिक कठिनाईयों पर विजय प्राप्त कर उसने साम्राज्य की ओर ध्यान दिया। उसकी सैनिक गतिविधियों का केंद्र मध्य एशिया और दक्कन था। उसने कांधार को पुनः वापस लेने

का प्रयास किया एवं अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुंडा पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। इन कार्यों में उसे उसके योग्य सरदार महावत खाँ और अपने तृतीय पुत्र औरंगजेब से पर्याप्त सहायता मिली, परंतु इन सैनिक अभियानों से शाहजहाँ को कोई विशेष लाभ नहीं हो सका। इन महत्वपूर्ण अभियानों के अतिरिक्त शाहजहाँ के समय में कुछ छोटे–मोटे अभियान भी हुए।

1.8: शाहजहाँ की आरंभिक सफलताएँ

शाहजहाँ ने उत्तर–पूर्वी भारत के अनेक छोटे राजाओं ओर जमींदारों को जो मुगल अधीनता को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, मुगलों की अधिसत्ता स्वीकार करने को बाध्य कर दिया। मालवा में भागीरथ भील और भरवी गोंड को क्रमषः 1632 और 1644 ई0 में मुगलसत्ता स्वीकार करने को बाध्य किया गया। 1642ई0 में पलामू के राजा प्रताप ने भी शाहजहाँ की अधीनता स्वीकार कर ली। इसी प्रकार, लघु तिब्बत और आसाम पर भी मुगल आधिपत्य स्थापित किया गया। जफर खाँ के अधीन 1637–1638 ई0 में लघु तिब्बत के विरूद्ध एक सैनिक अभियान चलाया गया। तिब्बती शासक अब्दल ने शाहजहाँ की अधीनता स्वीकार कर ली और युद्ध के हर्जाने के रूप में पर्याप्त धनराषि दी। शाहजहाँ ने आसाम पर भी अधिकार करने की योजना बनाई। आसाम के साथ अनेक वर्षों तक (1628–39 ई0) झड़पें होती रहीं। अंत में दोनों पक्षों में समझौता हो गया। आसाम के साथ व्यापारिक एवं कूटनीतिक संबंध स्थापित हुए।

1.9: शाहजहाँ की मध्य एशियाई नीति

बाबर के समय से ही मुगल बादशाहों की यह चेष्टा रही थी कि बल्ख और बदख्शाँ पर उनका अधिकार हो, क्योंकि यह उनकी मूल भूमि थी। इसी प्रकार, कांधार का सामरिक महत्व था। बाबर से जहाँगीर तक बल्ख पर अधिकार करने का सुअवसर प्राप्त नहीं कर सके थे। इधर 1622 ई0 में कांधार भी ईरानियों ने मुगलों से छीन लिया था। अतः काबुल की सुरक्षा के लिए बल्ख पर अधिकार करना एवं खोए हुए कांधार को प्राप्त करना ही शाहजहाँ की मध्य एशियाई नीति का मूल उद्देश्य था। इसमें सफलता प्राप्त कर वह अपने पूर्वजों की इच्छापूर्ति तथा अपनी साम्राज्यवादी महत्वकांक्षा को शांत करना चाहता था।

1.9.1: कांधार का अभियान

सबसे पहले शाहजहाँ ने कांधार को पुनः प्राप्त करने की योजना बनाई। इस समय तक ईरान के शाह अब्बास प्रथम (1587–1629 ई0) की मृत्यु हो चुकी थी। वहाँ अराजकता व्याप्त थी। शाहजहाँ ने इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए कूटनीतिक चाल चली। इस समय कांधार का प्रशासक अली मर्दान खाँ था। उसने अनाधिकृत रूप से काफी धन एकत्र कर रखा था और राजकीय धन का गबन किया था। नए शासक के गद्दी पर बैठते ही उसे भय हुआ कि उसे दंडित किया जाएगा। इसलिए उसने शाहजहाँ से संरक्षण की माँग की। शाहजहाँ ने उसे अपने संरक्षण में ले लिया। शाहजहाँ को प्रसन्न करने के लिए उसने कांधार का किला मुगलों को 1638 ई0 में सौंप दिया।

1.9.2: शाहजहाँ का बल्ख अभियान

मध्य एशियाई राजनीति में ईरान के सफावीद राजवंश के अतिरिक्त उजबेक भी प्रबल प्रतिद्वंदी थे। उजबेकों ने बल्ख और बदख्शाँ पर अधिकार कर लिया तथा समरकंद, जो मुगलों की पैतृक भूमि थी, उस पर अधिकार जमा लिया था। इतना ही नहीं, काबुल पर भी उनके आक्रमण के खतरे बने हुए थे। वे बलूची और अफगान कबीलों को भी मुगलों के विरूद्ध उकसाते रहते थे। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने के पूर्व ही उजबेकों ने काबुल पर आक्रमण किया था। इसलिए शाहजहाँ उजबेकों से क्रुद्ध था। वह अपने पूर्वजों की भूमि पर अधिकार करना चाहता था। इस समय बल्ख और बुखारा में इमाम कुली

का छोटा भाई नजर मुहम्मद शासन कर रहा था, परंतु वह जनता मे अलोकप्रिय था। इसलिए 1645 ई0 में नजर मुहम्मद के बेटे अब्दुल अजीज ने सत्ता हथिया ली। नजर मुहम्मद भागकर बल्ख चला गया। बुखारा अब्दुल अजीज के अधीन रहा। नजर मुहम्मद ने शाहजहाँ से सहायता माँगी। शाहजहाँ ने इन उजबेकों पर अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए सुनहरा मौका समझा। उसने राजकुमार मुराद के अधीन एक सेना नजर मुहम्मद की सहायता के लिए भेजी। उसे आदेश दिया गया कि वह नजर मुहम्मद को समरकंद पर अधिकार करने में मदद दे, लेकिन मुराद ने बल्ख पर अधिकार कर नगर को लूटा। उसने ऑक्सस नदी के किनारे स्थित तिर्मिज पर भी अधिकार कर लिया। नजर मुहम्मद फारस चला गया। मुराद की सफलता पर शाहजहाँ ने उसे बल्ख और बदख्शाँ का शासक नियुक्त करना चाहा, परंतु मुराद वापस भारत आ गया।

मुराद के स्थान पर शाहजहाँ ने औरंगजेब को इन प्रदेशों का प्रशासक नियुक्त किया। उसने टाँस–ऑक्सियाना में उजबेकों के विद्रोह को शांत किया। शाहजहाँ को इस बात की आशंका थी कि नजर मुहम्मद ईरान के शाह की सहायता लेकर पुनः बल्ख पर अधिकार न करे। इसलिए, उसने कूटनीति का प्रदर्शन करते हुए शाह अब्बास द्वितीय से मैत्रीपूर्ण संबंध कायम किए तथा नजर मुहम्मद को विश्वास दिलाया कि मुराद का कार्य अनुचित था। शाहजहाँ ने यह नीति इसलिए अपनाई, क्योकि वह समझता था कि बल्ख समय तक सेना के बल पर मुगल प्रभाव बनाए रखना कठिन है। उसने नजर मुहम्मद को सहायता एवं बल्ख वापस करने का आश्वासन दिया, परंतु यह शर्त रखी कि वह औरंगजेब से क्षमा माँगे। नजर मुहम्मद इसके लिए तैयार नहीं हुआ। इस बीच रसद की कमी और कड़ाके की ठंड के कारण मुगल सेना को वापस लौटने पर मजबूर होना पड़ा। मुगल सेना की वापसी अत्यंत ही कष्टदायक हुई। बल्ख से मुगलों को लौटने पर मजबूर होना पड़ा। उजबेकों के छापामार हमलों और मार्ग की कठिनाइयों से सेना का एक बड़ा भाग नष्ट हो गया। बल्ख से मुगल सेना की वापसी ठीक वैसी ही थी जैसी कि 1842 ई0 में काबुल से अंग्रेजी सेना की वापसी। "मध्य एशिया तक साम्राज्य–विस्तार करने तथा उत्तर–पश्चिम सीमा के बाहरी किनारे को सुरक्षित करने के प्रयत्न में मुगल सम्राट को सफलता न हुई। जो परिस्थिति अकबर ने स्थापित कर दी थी उसमें कोई उन्नति न हुई"। बल्ख अभियान से मुगल सेना की प्रतिष्ठा तो बढ़ी, परंतु इससे कोई विशेष राजनीतिक लाभ नहीं हुआ।

1.10: शाहजहाँ की दक्कन नीति

दक्षिण राज्यों पर मुगल प्रभुत्व स्थापित करने का पहला प्रयास अकबर ने किया था। जहाँगीर को भी दक्षिणी रियासतों से संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष में स्वयं शाहजहाँ ने प्रमुख भूमिका निभाई थी, परंतु मुगल अपना स्थायी प्रभाव बनाने में असफल रहे थे। मलिक अंबर ने मुगलों को नाकों चने चबवा दिए, परंतु उसकी मृत्यु के पश्चात् (1626 ई0) दक्षिणी रियासतों (अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा) की स्थिति कमजोर हो गई तथापि दक्षिणी रियासतों मुगलों के विरूद्ध सदैव षड्यंत्र में लगी रहती थी। इसलिए, शाहजहाँ ने इन राज्यों के विरूद्ध आक्रामक नीति अपनाई। उसका मुख्य उद्देश्य अहमदनगर राज्य को, जो मुगलविरोधी गतिविधियों का केंद्र था, नष्ट करना एवं बीजापुर और गोलकुंडा पर प्रभावशाली आधिपत्य स्थापित करना था।

1.10.1: अहमदनगर पर आक्रमण

गद्दी पर बैठने के बाद शाहजहाँ ने अहमदनगर राज्य द्वारा छीने गए मुगल इलाकों को वापस लेने का प्रयास किया। इसके लिए खान–ए–जहाँ लोदी को दक्कन का सूबेदार बनाया गया। लेकिन, उसने विद्रोह कर दिया और निजामशाह से मिल गया। उसके विद्रोह का दमन कर महावत खाँ को दक्षिणी सूबे का प्रशासन सौंपा गया। इसके साथ–साथ शाहजहाँ ने अहमदनगर के विरूद्ध बीजापुर राज्य को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयास किया। मराठों को भी अपनी ओर मिलाने का प्रयास शाहजहाँ ने

किया। बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह और महत्वपूर्ण मराठा सरदार लखजी जाधव के दामाद शाहजी भोंसले शाहजहाँ से मिल गए। शाहजी को पाँच हजार का मनसब और पूना की जागीर दी गई। शाहजी के साथ अन्य अनेक मराठा सरदार भी शाहजहाँ के पक्ष में चले आए। इस प्रकार अहमदनगर को राजनयिक और सैनिक दृष्टिकोण से अलग कर शाहजहाँ के पक्ष में चले आए। इस प्रकार अहमदनगर को राजनियक और सैनिक दृष्टिकोण से अलग कर शाहजहाँ ने अहमदनगर पर आक्रमण की तैयारी आरंभ कर दी।

इस समय अहमदनगर राज्य की बागडोर मलिक अंबर के पुत्र फतह खाँ के अधीन थी। वह मलिक अंबर जितना योग्य और स्वामीभक्त नहीं था बल्कि सदैव अपना उल्लू सीधा करने में लगा रहता था। 1629 ई0 में अहमदनगर पर आक्रमण किया। बुराहनपुर से शाहजहाँ स्वयं इस अभियान का नियंत्रण करता रहा। मुगल सेनापति आजम खाँ ने अहमदनगर रियासत के एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया एवं राज्य की बाहरी चौकी परेंडा का घेरा डाल दिया।

शाहजहाँ की विस्तारवादी नीति से भयभीत होकर अहमदनगर के सुलतान मुर्तजा द्वितीय ने बीजापुर के पास सहायता की प्रार्थना की। बीजापुर दरबार का शक्तिशाली दल मुगलों की कार्यवाहियों से आषंकित था। उन्हें अपने लिए भी खतरा महसूस हो रहा था। इसके अतिरिक्त मुगलों ने पूर्व संधि की शर्तों के अनुसार अहमदनगर राज्य में जीते हुए इलाकों में से बीजापुर को हिस्सा नहीं दिया था। अतः अहमदशाह ने निजामशाह का पक्ष लेने का निर्णय किया एवं मुगलों से संबंध तोड़ लिया। नई परिस्थितियों से बाध्य होकर मुगलों को परेंडा का घेरा उठा लेना पड़ा।

इस समय अहमदनगर राज्य में दरबारी दलबंदी चरम सीमा पर पहुँची हुई थी। फतह खाँ को सुल्तान ने अपना मंत्री नियुक्त किया था जिससे कि वह शाहजहाँ से संधि की वार्ता चला सके, परंतु इस विश्वासघाती ने निजामषाह की हत्या करवा दी और गद्दी पर उसके अल्पायु पुत्र को बिठाकर सारी शक्ति अपने हाथों में केंद्रित कर ली। उसने शाहजहाँ से समझौता भी कर लिया। उसने शाहजहाँ को बहुमूल्य भेंट दिए। अहमदनगर में शाहजहाँ के नाम का खुतबा पढ़ा गया और सिक्के जारी किए गए। इन कार्यों के पारितोषिक स्वरूप फतह खाँ को मुगल सेवा में ले लिया गया और पूना की जागीर शाहजी से छीनकर दे दी गई। इससे शाहजी ने भी मुगलों का साथ छोड़ दिया। अहमदनगर रियासत नष्टप्राय हो गया।

1.10.2: बीजापुर से संघर्ष

अगले कुछ वर्षों तक शाहजहाँ का ध्यान दक्षिण के दुर्भिक्ष और मुमताजमहल की मृत्यु (1631 ई0) तथा अन्य घटनाओं में उलझा रहा। इस बीच दक्षिण में पुनः असंतोष भड़क उठा। दक्कन के सूबेदार महावत खाँ को बीजापुर राज्य और अहमदनगर के सरदारों के एक गुट ने परेषान करना आरंभ किया । मुगलों और बीजापुर राज्य में अहमदनगर राज्य के विभाजन के लिए प्रतिद्वंद्विता आरंभ हो गई। बीजापुर ने परेंडा पर अधिकार कर लिया और दौलाताबाद का घेरा डालने के लिए भेजी गई। शाहजी भी उनकी सहायता कर रह था। शाहजी और बीजापुरी सेना ने फतह खाँ को (जो मुगलों की सेवा में था) प्रलोभन दिया। अतः उसने मुगलों का साथ छोड़कर शाहजी से संधि कर ली। क्रुद्ध होकर महावत खाँ ने दौलताबद का घेरा डाल दिया। फतह खाँ ने पुनः मुगलों से क्षमा माँगकर आत्मसर्मपण कर दिया एवं किला मुगलों को सौंप दिया। फतह खाँ को धन ओर नौकरी दी गई। निजामशाह को गिरफ्तार कर ग्वालियर भेज दिया गया। इस प्रकार, फतह खाँ के विष्वासघात के कारण अहमदनगर राज्य और निजामशाही वंष का अंत 1633 ई0 में हुआ।

1.11: शाहजी द्वारा निजामशाही को पुनर्जीवित करने का प्रयास

अहमदनगर के पतन के बाद भी मुगलों की समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। निजामशाही और आदिलशाही सैनिकों और सरदारों ने हिम्मत नहीं हारी। मुगलों से अपनी स्वतंत्रता की रक्षा का उन

लोगों ने जी तोड़ प्रयास किया। इनमें सबसे अधिक जागरूक एवं सक्रिय शाहजी भौंसले थे। मलिक अंबर के ही समान शाहजी ने निजामशाही वंश के एक राजकुमार को ढूँढकर उसे अहमदनगर का सुल्तान घोषित कर दिया एवं सभी सैनिकों एवं सरदारों को उसकी सहायता करने का आह्वान किया। बीजापुर के सुल्तान ने इस कार्य के लिए शाहजी को सैनिक सहायता भी दी। शाहजी ने अब मुगलों को परेशान करना आरंभ कियां उसने अहमदनगर के अनेकों भागों पर अधिकार कर लिया। इसलिए, शाहजहाँ को स्वयं 1635 ई0 में दक्कन जाना पड़ा। उसने शाहजी के अनेक सहायकों को भय अथवा धन का प्रलोभन दिखाकर अपने पक्ष में कर लिया और शाहजी द्वारा अधिकृत अनेक इलाकों को वापस ले लिया। अहमदनगर पर मुगल सत्ता पुनः स्थापित की गइ। शाहजी अपनी सुरक्षा के लिए इधर से उधर भागता रहा।

1.12: बीजापुर पर आक्रमण

शाहजहाँ के दिमाग में यह बात बैठ गई कि बीजापुर पर अधिकार किए बिना दक्षिण में पूर्ण शांति नहीं हो सकती। इसलिए, उसने एक ही साथ 'लालच और छड़ी' की नीति अपनाई। अहमदनगर पर नियंत्रण स्थापित करने के पश्चात् मुगल सेना को बीजापुर पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। साथ ही, एक दूत को बीजापुर के सुल्तान अहमदनगर रियासत का आपस में बँटवारा कर लें। बीजापुर का बीजापुर के सुल्तान अहमदनगर रियासत का आपस में बँटवारा कर लें। बीजापुर का सुल्तान इस के मुगल सेना द्वारा मचाए गए नरसंहार और बर्बादी से भयभीत हो उठा। मुगल–विरोधी सरदारों को अपदस्थ कर दिया गया और आदिलशाह ने शाहजहाँ से एक नई संधि कर ली। इसके अनुसार, बीजापुर ने मुगल अधिसत्ता स्वीकार कर ली तथा 20 लाख रूपए हर्जाने के रूप में देना स्वीकार किया। यह भी तय हुआ कि सुल्तान शाहजी के दमन में मुगलों की सहायता करेगा तथा अगर शाहजी बीजापुर की सेवा में रहेगा तो उसे मुगल सीमा से दूर दक्षिण में तैनात किया जाएगा। आदिलशाह ने गोलकुंडा में मामले में भी हस्तक्षेप नहीं करने का वचन दिया। इतना ही नहीं, सुल्तान इस बात के लिए भी तैयार हो गया कि भविष्य में बीजापुर और गोलकुंडा के बीच होनेवाले सभी विवादों का निबटारा शाहजहाँ की मध्यस्थता से होगा। बदले में शाहजहाँ ने बीजापुर को अहमदनगर रियासत का एक भाग, जिसकी वार्षिक आय 20 लाख हूण थी, दिया।

1.13: गोलकुंडा के साथ संधि

शाहजहाँ ने बीजापुर के साथ ही गोलकुंडा के सुल्तान कुत्बमुल्क के साथ भी एक संधि की। उसने शाही राजदूत का अपने दरबार में भव्य स्वागत किया तथा शाहजहाँ की संप्रभुता स्वीकार कर ली। उसने शाहजहाँ के नाम का खुतबा पढ़वाया और सिक्के जारी किए। उसने शाहजहाँ के प्रति वफादार रहने का आष्वासन दिया। गोलकुंडा को इन सबके बदले 4 लाख वार्षिक हूण के कर से, जो वह बीजापुर को देता था, मुक्त कर दिया गया। मुगला से सुरक्षा प्राप्त करने के एवज में गोलकुंडा के सुलतान ने 2 लाख वार्षिक हूण शाही राजकोष को देना स्वीकार किया। 1636 ई0 की इन दो संधियों के परिणामस्वरूप शाहजहाँ ने दक्षिण की रियासतों पर मुगल आधिपत्य को प्रभावशाली ढंग से स्थापित कर दिया।

1.14: औरंगजेब के आरंभिक सेना अभियान

उत्तराधिकार के युद्ध से उत्पन्न अशांत राजनीतिक शासक अव्यवस्था का लाभ उठाकर साम्राज्य के विभिन्न भागों में स्थानीय शासक स्वतंत्र होने का प्रयास कर रहे थे। इसलिए, सबसे पहले औरंगजेब ने उन स्थानों पर ही मुगल सत्ता पुनः सुदृढ़ करने का प्रयास किया। कालांतर में उसे राजपूतों, सिंखों, मराठों एवं दक्षिण के राज्यों से लंबा संघर्ष करना पड़ा। 1681 ई0 तक उसका सारा ध्यान उत्तरी भारत (उत्तर–पूर्वी, पूर्वी भारत तथा उत्तर–पष्चिम भारत) की ओर लगा रहा। इस बीच दक्षिण

की समस्या पर उसने ध्यान नहीं दिया, परंतु 1681 ई0 1707 ई0 तक औरंगजेब ने अपना सारा ध्यान दक्षिण भारत की समस्याओं पर दिया, उत्तरी भारत को बिल्कुल ही भूल बैठा। यहाँ तक कि परिवार, सेना, राजकोष और दरबार के साथ वह स्थायी रूप से दक्षिण भारत में ही रहने लगा। औरंगजेब की इस नीति का मुगल साम्राज्य पर घातक प्रभाव पड़ा।

1.14.1: उत्तर–पूर्वी तथा पूर्वी भारत

शासक बनने के तत्काल बाद औरंगजेब का ध्यान उत्तर–पूर्व एवं पूर्वी भारत की समस्याओं ने आकृष्ट किया। औरंगजेब के पूर्व मुगल साम्राज्य की सीमा पश्चिमी असम तक जा पहुँची थी। अहोमों और कूच बिहार के शासकों के आपसी संघर्ष का लाभ उठाकर मुगलों ने असम की घाटी में और कूच बिहार के शासकों पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था। 1638 ई0 में मुगलों और अहोमों के बीच हुई संधि के अनुसार, बार नदी दोनों राज्यों की सीमा निर्धारित की गई थी। गौहाटी मुगलों के प्रभाव में आ गया था। इस बीच बंगाल में शूजा की सूबेदारी के दौरान अव्यवस्था फैलने लगी जिसका लाभ उठाकर अहोमों ने अपनी शक्ति संगठित करनी आरंभ कर दी। कूच शासक भी अपनी स्वतंत्रता के लिए लालायित हो उठे। इसी बीच 1657 ई0 में कूच शासक प्रेम नारायण ने मुगल क्षेत्रों पर अधिकार करने का प्रयास किया। 1658 ई0 में अहोमों ने गौहाटी एवं उसके आस–पास के क्षेत्रों को लूट कर मुगलों की स्थिति दुर्बल बना दी।

1.14.2: पुर्तगालियों का दमन

औरंगजेब के शासन तक पुर्तगाली भारत में एक व्यापारिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। पश्चिम भारत के अतिरिक्त पूर्वी भारत में भी वे अपना प्रभाव बढ़ा रहे थे। पुर्तगाली (फिरंगी) आराकानी (माघ) समुद्री डाकुओं के साथ मिलकर बंगाल के तटवर्ती इलाकों में अषांति मचाए हुए थे। उनके अत्याचारों और लूटपाट से चटगाँव से ढाका तक का क्षेत्र असुरक्षित हो गया था। इसका सामान्य जीवन एवं आर्थिक प्रगति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा था। इसलिए, बंगाल के सूबेदार शाइस्ता खाँ ने इस तरफ अपना ध्यान दिया।

समुद्री डाकुओं की कार्यवाहियों को रोकने के लिए शायस्ता खाँ ने एक सुदृढ़ जल बेड़े का गठन किया। उसने बंगाल की खाड़ी में स्थित सोनद्वीप, जो समुद्री डाकुओं की गतिविधियों का केंद्र था, पर अधिकार कर लिया। इसके बाद चटगाँव पर आक्रमण कर 1666 ई0 में उसपर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार, पुर्तगालियों एवं मार्ग लुटेरों का आतंक एवं प्रभाव समाप्त कर दिया गया। इसके फलस्वरूप समुद्री तट एवं व्यापारिक मार्ग सुरक्षित हो गए एवं बंगाल के व्यापार में वृद्धि हुई।

1.14.3: पलामू पर अधिकार

औरंगजेब ने पलामू पर भी अधिकार किया। 1642 ई0 में शाहजहाँ ने इस पर अधिकार स्थापित किया था, परंतु अशांत राजनीतिक व्यवस्था का लाभ उठाकर यह पुनः स्वतंत्र हो गया था। इसलिए, 1661 ई0 में बिहार के सूबेदार दाउद खाँ ने पलामू के राजा को पराजित कर उसके राज्य को मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

1.15: औरंगजेब की दक्षिण नीति

औरंगजेब के शासन का उत्तरार्द्ध (1681–1707 ई0) दक्षिणी शक्तियों से युद्ध करने एवं दक्षिण में अपनी शक्ति सुदृढ़ करने में व्यतीत हुआ। दक्षिण की समस्याओं में वह इस बुरी तरह घिर गया कि उसे उत्तरी भारत की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला जिसके घातक परिणाम निकले।

1.15.1: दक्षिण राज्यों से युद्ध के कारण

दक्षिण में उस समय तीन शक्तियां बीजापुर, गोलकुंडा के शिया तथा मराठे। दो बार दक्षिण का सूबेदार रहने के कारण वह दक्षिण की राजनीति से वाकिफ था। इसी कारण वह उनकी शक्ति को मुगल सेना हेतु गंभीर चुनौती मानता था। वह शिया राज्यों को इस्लाम विरोधी मानता तथा मराठों में अधीन हिंदू पदपादषाही की स्थापना का भी विरोधी था। अतः शासक बनने के बाद उसने दक्षिण में विस्तारवादी नीति अपनाई। उसका उद्देष्य इन राज्यों पर अधिकार कर मुगल साम्राज्य सुदृढता, यूरोपीय व्यापारियों की राजनीतिक लालसा में कमी तथा धार्मिक एवं आर्थिक कारणों ने उसे विस्तारवादी नीति हेतु प्रेरित किया।

1.15.2: बीजापुर से संघर्ष

मुस्लिम राज्यों में दक्षिण भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली बीजापुर का आदिलशाही राजवंश था। दक्षिण के सूबेदार के रूप में औरंगजेब ने इस पर अधिकार करने का प्रयास किया था, परंतु शाहजहाँ के हस्तक्षेप तथा बीमारी के कारण वह ऐसा नहीं कर सका था। उत्तराधिकार के युद्ध में शामिल होने से पूर्व 1657 ई0 में वह कल्याणी तथा बीदर बीजापुर से ले चुका था। उत्तराधिकर के युद्ध से उत्पन्न परिस्थिति का लाभ उठाकर उसने मुगलों से मैत्री तोड़ ली थी। वह अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास कर रहा था। औरंगजेब को यह भय भी हुआ कि कहीं सुल्तान आदिलशाह मराठों के साथ मिलकर औरंगजेब को परेशान न करे। इसलिए, उसने बीजापुर पर आक्रमण करने की योजना बनाई।

1.15.3: जयसिंह का अभियान

1665 ई0 में जयसिंह ने बीजापुर आक्रमण किया। आक्रमण के पूर्व ही वह शिवाजी, गोलकुंडा के कुतुबशाही शासक एवं बीजापुर राज्य के प्रभावषाली सरदारों को अपने पक्ष में मिलाने में सफल हो चुका था। जयसिंह का बीजापुर अभियान सफल नहीं हो सका। सुल्तान आदिलशाह ने आक्रमण की सूचना मिलते ही अपनी सुरक्षा की पूरी व्यवस्था कर ली थी। दूसरी तरफ, जयसिंह की तैयारी पूरी नहीं थी। उसके पास बड़ी तोपें एवं शिवाजी को अपने पक्ष में मिलाया था परंतु युद्ध आरंभ होते ही दोनों ने मुगलों का साथ छोड़ दिया। दक्कन की सभी आरंभिक सफलताएँ हाथ लगीं, परंतु बीजापुर राज्य कुतबशाही सेना की सहायता और छापामार युद्धप्रणाली के आधार पर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने में सफल हुआ। जयसिंह को निराश होकर वापस लौटना पड़ा। वापसी में भी उन्हें बहुत अधिक परेषानी और हानि उठानी पड़ी। मुगलों को इस युद्ध से न तो एक ईंच जमीन ही मिली और न ही धन की प्राप्ति हुई।

क्रुद्ध होकर औरंगजेब ने जयसिंह को वापस लौटने का आदेष दिया। मार्ग में बुरहानपुर में 1667 ई0 में जयसिंह की मृत्यु हो गई। जयसिंह की जगह अब शहजादा मुअज्जम को दक्षिण अभियान का नेतृत्व सौंपा गया। 1668 ई0 में मुगलों ने रिश्वत देकर किसी प्रकार शोलापुर प्राप्त कर लिया।

1.16: बीजापुर की आंतरिक राजनीति में मुगलों का हस्तक्षेप

1672 ई0 में आदिलशाह की मृत्यु के पष्चात अल्पायु सिकंदरषाह नया सुलतान बना। उसके समय में दरबार की दलबंदी और गहरी हो गई। खबास खाँ के दल ने मराठों के विरूद्ध मुगलों की सहायता का वचन दिया था, परंतु 1676 ई0 में उसका दरबार में प्रभाव समाप्त हो गया। दरबार में मराठों और गोलकुंडा का प्रभाव बढ़ने लगा। इसलिए, मुगल सूबेदार बहादुर खाँ ने 1676 ई0 में बीजापुर पर आक्रमण कर दिया।

बहादुर खाँ के स्थान पर दिलेर खाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाया गया। उसका बीजापुर के अफगानों से अच्छा संबंध था। इस समय बीजापुर दरबार मे खबास खाँ की जगह बहलोल खाँ का प्रभाव था।

उसने मराठों तथा गोलकुंडा के विरूद्ध बीजापुर को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयास किया एवं आंशिक रूप से इसमें सफल भी रहा। बीजपुर को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयास किया एवं आंशिक रूप से इसमें सफल भी रहा। बीजापुर और मुगल सेना ने गोलकुंडा पर आक्रमण किया जो विफल हो गया। इस पराजय ने बीजापुर राज्य में बहलोल की स्थिति दुर्बल कर दी। गोलकुंडा के दबाव पर सीदी मसूद, जो दक्कनी गुट का नेता था, उसे बीजपुर का प्रशासक बनाया गया। इस प्रकार बीजापुर पर गोलकुडा का प्रभाव पहले से भी अधिक बढ़ गया। इस प्रभाव को कमजोर करने के लिए दिलेर खाँ ने सीदी मसूद को अपने पक्ष में मिलाकर उसके साथ एक संधि कर ली। इस संधि के अनुसार, सुल्तान आदिलशाह ने अपनी बहन का विवाह शाहजादा आजम के साथ करने को वचन दिया। बीजापुर ने औरंगजेब की अधीनता स्वीकार करने एवं मराठों को सहयोग नहीं देने का भी वचन दिया, लेकिन सीदी मसूद इस निर्णय पर कायम नहीं रह सका। उसने मराठों के साथ भी एक गुप्त समझौता कर लिया। इस पर क्रुद्ध होकर दिलेर खाँ ने 1679 ई0 में बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। बीजापुर के सुलतान ने मराठों और अन्य दक्षिणी रियासतों के सहयोग से दिलेर खाँ का आक्रमण भी विफल कर दिया। मुगलों को कोई सफलता नहीं मिल सकी, उल्टे दक्षिण की तीनों प्रमुख शक्तियां मुगलों के विरूद्ध संगठित हो गई।

1.17: बीजापुर का पतन

अप्रैल, 1685 में आजम के सेनापतित्व में मुगल सेना ने बीजापुर पर घेरा डाल दिया। आदिलशाह की सहायता के लिए मराठे एवं गोलकुंडा के सुल्तान ने भी सैनिक सहायता भेजी। बीजापुर पर लंबे समय तक घेराबंदी बनी रही। औरंगजेब को स्वयं बीजापुर जाना पड़ा। उसकी उपस्थिति से मुगल सेना में नवजीवन का संचार हुआ। दूसरी तरफ, बीजापुर के प्रतिरोध की शक्ति–समाप्त हो रही थी। अतः आदिलशाह ने 1686 ई0 में आत्मसर्मण कर दिया।

1.18: गोलकुंडा पर अधिकार

1656 ई0 में औरंगजेब ने गोलकुंडा के सुल्तान अब्दुला कुतुबशाह के साथ संधि की थी। कुतुबशाह ने मुगल अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस संधि के बावजूद गोलकुंडा बीजापुर और मराठा की सहायता किया करता था। 1672 ई0 में कुतुबशाह की मृत्यु के बाद अब्दुल हसन योग्य शसन न बन पाया। इस समय शासन की बागडोर मदन्ना और अखन्ना के हाथों में थी। अतः 1685 ई0 में गोलकुंडा पर आक्रमण हुआ। मुगल सेना ने हैदराबाद पर अधिकार कर सुल्तान को संधि करने पर विवष कर दिया। सुल्तान युद्ध का हर्जाना, वार्षिक कर, मालखेड़ और अन्य जीते हुए क्षेत्र औरंगजेब को देने को तैयार हुआ परंतु मंत्रियों को नही। इसी बीच एक षड़यंत्र रचकर दोनों मंत्रियों की हत्या कर दी गई। अतः औरंगजेब ने 1687 ई0 में गालेकुंडा पर घेरा डाला परंतु कड़ी सुरक्षा के कारण प्रवेश हेतु उसने दुर्गरक्षक को रिश्वत देकर फाटक खुलवा दिया तथा दुर्ग पर अधिकार में सफल हुआ। सुल्तान को पेंशन देकर दौलताबाद के दुर्ग में बंद कर दिया।

1.19: निष्कर्ष

शाहजहाँ और औरंगजेब के समय में मुगल सम्राज्य का अत्यधिक विस्तार एवं विकास हुआ। उत्तर भारत के अलावा दक्षिण भारत में भी मुगलों का नियंत्रण स्थापित हो गया था। अब तक काबुल–कान्धार से लेकर सुदूर दक्षिण तक मुगलों का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। मौर्य साम्राज्य के पतन के उपरान्त यह पहला अवसर था, जब भारत भौगोलिक, राजनीतिक एवं प्रषासनिक आधार पर एक सूत्र में बंध गया था। अब भारत एकीकृत राज्य के रूप में संगठित हो चुका था। मुगलों के साम्राज्य विस्तार की यह पराकाष्ठा थी। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् इतने विषाल मुगल सम्राज्य को संभालना कमजोर मुगल शासकों के लिए दुष्कर हो गया था। मुगल शासकों ने साम्राज्य विस्तार के

साथ–साथ प्रशासनिक ढांचे को भी मजबूत बनाया। जिसके परिणामस्वरूप मुगल साम्राज्य सुदृढ़ को सका। राजस्व, सैनिक एवं प्रषासनिक क्षेत्र में आवश्यक परिवर्तन किये गये, जिससे मुगल राज्य एक सशक्त साम्राज्य के रूप में उभरने में सफल हो सका।

1.20: अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शाहजहाँ के समय में उत्तराधिकार के युद्धों का वर्णन कीजिए।
2. शाहजहाँ के समय में मुगलों की दक्षिण नीति का वर्णन कीजिए।
3. शाहजहाँ की मध्य–एशियाई नीति का विवरण दीजिए।
4. औरंगजेब के आरम्भिक सैन्य अभियानों का उल्लेख कीजिए।
5. औरंगजेब की दक्षिण नीति की समीक्षा करे।
6. औरंगजेब के शासनकाल में होने वाले विद्रोहों पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
7.

1.21: सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बिपिन बिहारी सिन्हा– मध्यकालीन भारत
2. आर्शीवादीलाल श्रीवास्तव– भारत का इतिहास
3. एल0 पी0 शर्मा– मध्यकालीन भारत
4. इमत्याज अहमद– मध्यकालीन भारत

इकाई दोः मुगलों की धार्मिक नीति

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 विभिन्न मुगल शासकों की धार्मिक नीति

2.4 अकबर के धार्मिक उदारता के कारण

2.5 इबादतखाना की स्थापना

2.6 महजर की घोषणा

2.7 दीन–ए–इलाही

2.8 जहाँगीर एवं उसकी धार्मिक नीति

2.9 शाहजहाँ एवं उसकी धार्मिक नीति

2.10 औरंगजेब की धार्मिक नीति

2.11 इस्लाम विरोधी प्रथाओं का दमन

2.12 औरंगजेब के हिन्दू विरोधी कार्य

2.13 निष्कर्ष

2.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.16 निबंधात्मक प्रश्न

2.1: प्रस्तावना

मुगल शासनकाल मे ंएक नये और उदार धार्मिक दृष्टिकोण का विकास हुआ जिससे कि सम्राज्य की बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा को प्रशासन में सम्मानपूर्वक स्थान प्राप्त हो सका और धर्म के आाधार पर भेद–भाव का बहुत हद तक अंत हुआ। मुगल शासकों के व्यक्तिगत विचारों, युग की परिस्थितियों और राजनीतिक व्यवहारिकता के कारण बाबर से औरंगजेब तक महान बादशाहों ने

जिस धार्मिक नीति का पालन किया उससे भारत पर महत्वपूर्ण और दूरगामी प्रभाव पड़े। समाजिक एवं धार्मिक एकता लाने में अकबर एवं उसकी नीतियों ने प्रमुख भूमिका अदा की। अकबर ने धार्मिक आधार पर सारे भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया। सामाजिक एकता लाने एवं सामाजिक भेदभाव को दूर करने हेतु उसने सुलह–ए–कुल की नीति का अनुसरण किया। जहांगीर और शाहजहां ने भी अकबर की नीति को आगे बढ़ाया परन्तु अंतिम मुगल सम्राट औरंगजेब ने इस नीति का त्याग कर दिया। औरंगजेब की कठोर धार्मिक नीति के कारण मुगलों की लोकप्रियता घटने लगी और यह वंश पतन की ओर अग्रसर हो गया। निःसंदेह दिल्ली सुल्तानों की अपेक्षा मुगल अधिक धार्मिक रूप में सहिष्णु और उदार थे।

2.2: उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि

- विभिन्न मुगल सम्राटों की धार्मिक नीतियां कैसी थीं।
- अकबर की धार्मिक नीति और उसका महत्व।
- जहाँगीर और शाहजहाँ की धार्मिक नीतिया।
- औरंगजेब की धार्मिक नीति एवं उसके दुष्परिणाम।
- मुगलों की धार्मिक नीति और उसके परिणाम।
-

2.3: विभिन्न मुगल शासकों की धार्मिक नीतियां

मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर दिल्ली के सुल्तानों की भाँति असहिष्णु अथवा अनुदार नहीं था। यह सत्य है कि वह एक अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था, फिर भी वह अपेक्षाकृत उदार और सहिष्णु था। कट्टर सुन्नी होने पर भी उसने शियाओं के साथ मित्रता की। किन्तु हिन्दुओं के प्रति बाबर सहिष्णु नहीं था। राणा सांगा के विरूद्ध खानवा की लड़ाई में उसने जिहाद (धर्म युद्ध) का नारा दिया। अपने सैनिकों को उसने जोश दिलाया था कि वे जो युद्ध कर रहे हैं, वह काफिरों के विरूद्ध एक धर्म युद्ध है और काफिरों का विनाश करना प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य है। पुनः बाबर ने मुसलमानों को रसून कर से मुक्त कर दिया था, जबकि हिन्दुओं से वह पुरानी दरों पर ही यह कर वसूल किया। बाबर के शासन काल में हिन्दू मदिरों को ध्वंस करने तथा मूर्तियों को नष्ट–भ्रष्ट करने की परम्परा भी बनी रही। उसके हिन्दू बेग और शेख जैन नामक सेनापतियों ने सम्भल और चंदेरी के हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त किया। इसी प्रकार राम के जन्म स्थान पर अयोध्या में बने हुए मन्दिरों को तुड़वा कर उसके स्थान पर एक मस्जिद का निर्माण करवाया गया। बाबर ने स्वयं ग्वालियर के निकट उरवा में अनेक मूर्तियों को नष्ट किया था। इतना होने पर भी उसने हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य नहीं किया और न ही योजनाबद्ध रूप से उन पर अत्याचार किए जैसा कि इसके पूर्व के सुल्तान और बाद में औरंगजेब ने किया। किन्तु, उसके शासन काल में धार्मिक कठोरता, अनुदारता तथा असहिष्णुता की नीति कम मात्रा में ही सही, बनी रही। इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता है कि उसने तत्कालिक धार्मिक अनुदारता में कमी लाने के लिए कोई प्रयास किये।

हुमायूँ की धार्मिक नीति भी बाबर की नीति से भिन्न नहीं थी। यद्यपि परिस्थिति वष अथवा अपनी उदारता के चलते उसने शिया धर्मावलम्बियों के प्रति अपार सहिष्णुता प्रदर्शित की, किन्तु हिन्दुओं के प्रति उसके व्यवहार में परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। जिस समय गुजरात के शासक बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और चित्तौड़ की रानी कर्णावती ने राखी भेजकर उससे सहायता की याचना की , उस समय हुमायूँ ने बहादुरशाह पर (जो उसका प्रधान विरोधी

और दुष्मन था) आक्रमण करना इसलिए उचित नहीं समझा कि वह एक काफिर के विरूद्ध युद्ध कर रहा था। किन्तु ऐसा कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलता है कि जिसके आधार पर हुमायूँ पर धार्मिक असहिष्णुता का दोष और मढ़ा जाए।

2.4: अकबर की धार्मिक उदारता के कारण

अकबर की महानता का एक महत्वपूर्ण कारण उसके द्वारा अपनायी गयी एक उदार एवं लोकप्रिय धार्मिक नीति भी है। इस संदर्भ में अकबर ने भारतीय शासकों की परम्परा का निर्वाह किया। अकबर का दीन–ए–इलाही काफी हद तक अशोक के 'धम्म', कनिष्क की धार्मिक सहिष्णुता, समुद्रगुप्त का 'पुराण पकीती' तथा शिवाजी के 'हिन्दू पद–पद–शाही' से मिलता–जुलता है। अकबर की यह धार्मिक उदारता कुछ अंषों में उसे विरासत के रूप में मिली थी। कुछ अंशों में तत्कालीन परिस्थितियों का भी इसमें सहयोग था ओर कुछ अंश में उसका व्यक्तित्व भी इसका महत्वपूर्ण कारण था। अकबर का जन्म एवं पालन–पोशण अपेक्षाकृत अधिक उदारतापूर्ण वातावरण में हुआ था। उसके पिता सुन्नी तथा माता षिया थी। अकबर का जन्म राजपूत की छत्रछाया में हुआ था। अकबर का शिक्षक अब्दुल लतीफ अपनी धार्मिक उदारता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध था। उसने अकबर को शांति का पाठ पढ़ाया। जिस पर अकबर ने पूर्ण अमल किया। 16 वी0 शताब्दी छानबीन का युग था। यह युग कबीर, नानक, चैतन्य, चिश्ती आदि से भिन्न नहीं था, सिवाय इसके कि अकबर ने राजमुकुट पहना था। उसके व्यक्तित्व में भी कुछ ऐसी विषेशताएं थी, जिन्होंने उसकी धार्मिक उदारता की नीति को संवारा। धार्मिक कट्टरता एवं धर्मान्धता उसके स्वभाव में न थे। अपने प्रारंभिक जीवन से ही उसने विभिन्न विचारों, भिन्न–भिन्न विश्वासों एवं अनुष्ठानों को ग्रहण करना प्रारंभ कर दिया था। दूसरों शब्दों में, उसने आध्यात्मिक चेतना प्रारंभ कर दी। बैरम खां के संरक्षण से मुक्त होने के बाद अकबर ने साधु संतों तथा फकीरों से व्यक्तिगत सम्पर्क बढ़ाया। मध्य एशिया, फारस तथा भारत के लोगों के बीच यह आम बात थी।

अकबर की धार्मिक उदारता की प्रथम चिंगारी उस समय विकीर्ण हुई, तब उसकी अवस्था मात्र 20 वर्ष की थी। इस वर्श उसने **दास प्रथा** को समाप्त किया। 1563 ई0 में **तीर्थयात्रा कर** तथा 1564 ई0 में धार्मिक **जजिया कर** (गैर मुसलमानों से प्राप्त) की समाप्ति की। उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि अकबर दूसरे मुसलमान शासकों से भिन्न था चूंकि वह निःसंकोच सशक्त निर्णय लिया करता था। 1562 ई0 में **बैरम खां एवं हरम से मुक्ति** के पश्चात् वह पूर्ण रूप से निर्णय लेने में स्वतंत्र हो गया। उसने जीवन एवं मृत्यु जैसे गम्भीर विषयों पर चिन्तन करना आरम्भ किया।

2.5: इबादतखाना की स्थापना (1575 ई0)

अकबर एक निष्ठावान एवं उदार मुसलमान था। वह प्रार्थना, ध्यान, समाधि, नमाज आदि में आस्था रखता था। बदायूंनी के अनुसार, ""सम्राट कभी–कभी रात–रात भर 'याह' या 'हादी' का रट लगाया करता था। उसने प्रसिद्ध मुसलमान संतों ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, शेख सलीम चिश्ती तथा अब्दुलनबी के आशीर्वाद हेतु अनेक कष्ट उठाये। किन्तु वह कभी भी कट्टर सुन्नी नहीं था। बचपन से ही वह एक जिज्ञासु प्रवृत्ति का व्यक्ति था और उसने सदा सत्य को जानने की कोशिश की। इसी उद्देश्य से उसने 1575 ई0 में फतेहपुर सीकरी मे ंइबादतखाना (पूजा गृह) का निर्माण करवाया। यहां प्रत्येक बृहस्पतिवार की संध्या में धार्मिक विचार–विमर्ष हुआ करता था। प्रारंभ में इबादतखाना के इस सत्संग में सिर्फ मुसलमान शेख, पीर, उलेमा ही आमंत्रित किये जाते थे। किन्तु, उनके आपसी वार्तालाप (विचारों) से अकबर को विरक्ति होने लगती थी। 'सत्य'

की खोज की बात तो दूर रही वे अपना समय अधिकांशतः लड़ाई–झगड़े, एक–दूसरे के ऊपर आरोप–प्रत्यारोप में व्यतीत करने लगे। इनके ऐसे उत्तरदायित्व शून्य व्यवहार, धर्म को तात्विक, दृष्टि से विवेचना करने की असमर्थता एवं व्यक्तिगत स्वार्थों को देखकर अकबर ने अपनी दृष्टि फेरी और बारी–बारी से ईसाई, पारसी, बौद्ध, हिन्दू, जैन, शिया और सूफी आदि से संबंध स्थापित किये । इन धर्मों के विद्वान भी अब इबादतखाना के विचार–विमर्श में निमंत्रित किये जाने लगे। उन्हें निर्देशित किया गया कि वे नियमित रूप से धर्म की समस्याओं पर आपस में विचार–विमर्ष करें। वह स्वयं भी अनेक अवसरों पर इन बैठकों में शामिल रहता था। कुछ समय पश्चात् उसने अनुभव किया कि सभी धर्मों के आवश्यक तत्व एक से ही हैं चूंकि सभी में कुछ बुराइयां और कुछ अच्छाइयां हैं।

2.6: महजर की घोषणा (1579 ई0)

इबादतखाना से अकबर को असम्मान ही अधिक मिला। अकबर उलेमा वर्ग से प्रसन्न नहीं था। मुख्य सदर अब्दुलनबी ने भ्रष्टाचार और अनाचार से अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति में काफी वृद्धि कर ली थी। उसने हिन्दुओं और शियाओं पर अत्याचार भी किये थे। अकबर ने उसे पदमुक्त कर दिया। लगभग इसी समय 1579–80 ई0 में पूर्व में विद्रोह हुआ। काजियों ने अकबर को धर्म विरोधी कहते हुए अनेक फतवे दिये। अकबर ने विद्रोह को कुचल दिया और काजियों को कठोर सजाएं दीं। अन्य धर्मावलम्बियों की संगत से भी उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन हुए। अतः मुल्लाओं से निपटने के लिए अपनी स्थिति और मजबूत करने की इच्छा से उसने महजर की घोषणा करवायी। इसमें कहा गया कि यदि कुरान (मुजताहित) की व्याख्या से समर्थ विद्वानों में परस्पर मतभेद हो तो अकबर 'सर्वाधिक न्यायशील और विवेकी' होने के नाते और खुदा की नजरों में इसका दर्जा मुजताहिदों से ऊँचा होने के कारण उनमें से किसी भी व्याख्या को स्वीकार कर सकता है जो 'देश के लाभ और अधिकांष लोगों के हित' में हो। यह भी कहा गया है कि बादशाह यदि 'कुरान का अनुसरण करते हुए और देश के लाभ में' कोई नयी आज्ञा जारी करे तो उसे सभी को स्वीकार करना होगा। इस प्रकार बादशाह के कहने से अबुफजल एवं फैजी के पिता शेख मुबारक ने, जो स्वयं इस्लाम धर्म का एक प्रमुख विशेषज्ञ था, 1579 ई0 के जून माह में एक प्रपत्र (महजर) पेश किया। अकबर ने इस्लाम के मतभेदों से उत्पन्न होने वाली असुविधा को दूर करने के लिए इस 'महजर' को स्वीकार कर लिया। अब पूरे देश में इस्लाम संबंधी मतभेदों में अकबर को अंतिम निर्णय का अधिकार दिया गया । 'महजर' के द्वारा साम्राज्य में सुव्यवस्था एवं शांति कायम रखने एवं सर्वमान्य आदेश निकालने का अधिकार बादशाह को दिया गया। किन्तु, वह कुरान के विरूद्ध आदेश नहीं निकाल सकता था। अब वह भारत की मुसलमान जनता के लिए धार्मिक सत्ताधिपति भी बन गया। डॉ. स्मिथ के अनुसार, महजर के द्वारा अकबर को निमूर्लता का पद मिल गया, वह मनमाना आदेश निकाल सकता था। मैलिसन के अनुसार, अकबर को हिन्दुओं, जैनों, बौद्धों, ईसाईयों आदि के साथ समानता व्यवहार करने का अधिकार मिला परंतु, डॉ0 स्मिथ ने इस बात का खण्डन किया है। अतः भिन्न–भिन्न मतों से यह प्रतीत होता है कि महजर ने उलेमा को सम्राट के अधीन ला दिया, उन्हें सम्राट की नीति का समर्थक बनाया और अकबर की निरंकुषता में वृद्धि की।

महजर का तत्कालिक परिस्थितियों के विषेश महत्व था। अकबर ने उस युग में सहनशीलता की बात कही जहां देश के अनेक क्षेत्रों में शिया, सुन्नी तथा महावदियों के बीच रक्तरंजित संघर्श छिड़ा हुआ था। इस संदर्भ में प्रो0 सतीश चन्द्र ने स्पष्ट किया कि "इस बात में सन्देह नहीं है कि भारत में स्थिति को सामान्य बनाने में महजर का अपेक्षित प्रभाव था परंतु देश के विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के लोगों को एक स्थान पर बैठाने में असफलता मिली"।

2.7: दीन–ए–इलाही (1581 ई0)

अकबर महजर की घोषणा के बाद भी 'सत्य' की खोज मे तल्लीन रहा। अतः उसने 1584 ई0 में अपनी प्रजा के लिए आचारों की एक संहिता का संकलन करवाया। उसने अपने साम्राज्य में भिन्न–भिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों को धार्मिक स्वतंत्रता एवं सहिष्णुता प्रदान की। उसने सभी मतों का समन्वय करने का प्रयत्न किया और सभी का संकलन कर इसका नाम तौहीद–ए–इलाही (दीन इलाही) या दैवी एकेश्वरवाद रखा। 'दविस्ताने मजाहिबे' के रचियता मोहसिन फानी के मत में यह एक 'मजहब' था। डॉ0 स्मिथ ने भी इसे एक 'नूतन धर्म' माना है और इस प्रकार की चेष्टा के लिए अकबर को मूर्ख तक कहा है। अकबर का 'दीन–इलाही' वास्तव में कोई नया धर्म नहीं था। यह एक सामाजिक–धार्मिक भातृ सम्प्रदाय था। जिसका संगठन विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों एवं जातियों को एक–दूसरे के अधिक–से–अधिक निकट लाने के उद्देश्य से किया गया था। इसकी रचना 'सार्वजनिक सहिष्णुता' (सुलह कुल) के सिद्धान्त पर की गयी थी और स्वयं सम्राट ने सभी धर्मों में से श्रेष्ठ बातें संग्रहित करके इसमें रखी थी। इस सम्प्रदाय में ईश्वर की एकता पर विश्वास प्रकट किया था। इसके विषय में सामान्य रूप से यही कहा जा सकता है कि यह अत्यन्त सादा था, इसकी आचार संहिता भी साधारण थी तथा गंभीर दार्शनिक पक्षों की इसमें नितांत कमी थी। यह 'सार्वजनिक सहिष्णुता' एवं 'विश्व–बन्धुत्व' की भावना पर आधारित था। इसके अतिरिक्त यह अकबर की उन प्रतिक्रियाओं से भी प्रभावित था जो अन्य धर्मों के साथ संपर्क में आने से अकबर के मस्तिष्क में हुई।

सभी धर्मों में सत्य है, इस विश्वास को लेकर अपनी धार्मिक सहिष्णुता की नीति के व्यवहारिक प्रयोग के लिये अकबर ने महत्वपूर्ण कार्य करने प्रारम्भ कियें–:

1. मुसलमान, हिन्दू, पारसी, ईसाई, जैन आदि सभी धार्मिक सम्प्रदायों के व्यक्तियों को अपने पूजा–स्थलों (मस्जिद, मन्दिर, चर्च) को बनवाने, उनमें पूजा करने, अपने धर्म को स्वतंत्रतापूर्वक मानने एवं प्रचार करने तथा अपने धार्मिक उत्सवों, पर्वों आदि को मनाने की स्वतंत्रता प्रदान की।
2. बलात धर्म– परिवर्तन करके बने मुसलमानों को पुनः अपने धर्म को स्वीकार करने की आज्ञा दे दी गई।
3. राजकीय सेवा में धार्मिक भेद–भाव को समाप्त कर दिया गया और योग्यता को महत्व दिया गया।
4. हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों, (अर्थववेद, रामायण, महाभारत) आदि का फारसी में अनुवाद कराया गया।
5. झरोखा–दर्शन, तुला–दान जैसी परम्पराओं का प्रचलन, होली, दिवाली, बसन्त आदि हिन्दू पर्वों का दरबार में आयोजन, अकबर द्वारा मांस न खाने का निश्चय, गो–वध का निषेध, महल में अग्नि को सर्वदा प्रज्जवलित रखना, सूर्य की ओर अकबर द्वारा मुख करके बैठना, शिकार खेलने पर प्रतिबन्ध, पशु–पक्षियों के वध पर प्रतिबन्ध आदि ऐसे कार्य थे जो अकबर की उदार–प्रवृत्ति के प्रतीक स्वीकार किये जाते हैं।
6. राज्य की कर व्यवस्था सम्पूर्ण प्रजा के लिये एक–समान की गई।
7. धर्म के आधार पर व्यक्ति और व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं रखने की आज्ञा दी गई, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी वेश–भूषा, आचार–विचार और सामाजिक परम्परा को मानने की सुविधा थी।

इस प्रकार राज्य की ओर से धर्म के आधार पर प्रजा में कोई भेद–भाव नहीं किया गया और सभी धर्मों को समान सुविधायें प्रदान की गई।

2.8: जहाँगीर एवं उसकी धार्मिक नीति

अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगीर के शासनकाल में पुनः धार्मिक अनुदारता की नीति का प्रारम्भ होता है। जिसकी पराकाष्ठा औरंगजेब के शासन काल में जाकर होती है। यद्यपि जहाँगीर ने सामान्य तौर पर अकबर की धार्मिक नीति के मार्ग का ही अवलम्बन किया, किन्तु उसमें धर्म की कट्टरता स्वतः ही आती गई और उसने यदा–कदा गैर मुसलमानों को इस्लाम धर्म में परिवर्तित भी किया। उसने राजोरी के एक हिन्दू को स्थानीय मुस्लिम कन्या का धर्म परिवर्तन कर विवाह करने पर कठोर दण्ड दिया था। उसने उन मुसलमानों को दण्ड दिया जो हिन्दू धर्म में विष्वास रखते थे तथा हिन्दू सन्यासियों के साथ सम्पर्क स्थापित करते थे। जहांगीर ने अजमेर, कांगड़ा, मेंवाड़ आदि में अनेक हिन्दू मन्दिरों का विध्वंस भी किया।

सिक्खों के प्रति उसका व्यवहार अत्यन्त असहिष्णु था। उसने सिक्ख गुरू अर्जुन देव की हत्या करवा दी। सिक्खों के प्रति यह नीति धार्मिक कारणों से थी या राजनीतिक कारणों से, इस पर विद्वानों के बीच मतैक्य नहीं है। डॉ0 बेनी प्रसाद और वी0ए0 स्मिथ ने इसका राजनीतिक कारण माना है। किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है गुरू अर्जुन देव की हत्या के पीछे जहाँगीर के धार्मिक उद्देश्य भी शामिल थे। जहाँगीर ने शिया एवं जैन अनुयायियों पर भी अत्याचार किया। शिया लेखक काजी नुरूल्ला को प्राण दण्ड दिया। फिर भी उसने अपने पिता के समान हिन्दू और ईसाईयों को क्रमशः मन्दिर तथा चर्च–निमार्ण करने की स्वतंत्रता दी। वह समय–समय पर हिन्दू तथा ईसाई सन्तों का भाषण भी सुना करता था। एक सीमा तक उसने अकबर द्वारा प्रतिपादित धार्मिक नीति का अनुसरण किया और सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति करते समय उसने हिन्दू तथा मुसलमानों के बीच किसी भी प्रकार का भेद–भाव नहीं किया। वास्तव में जहाँगीर की नीति में विरोधाभास था। एक ओर तो उसमें धार्मिक कट्टरता थी तो दूसरी ओर उदारता। फिर भी उसके शासन काल में अकबर के उदार दृष्टिकोण का हल्का सा पतन हुआ।

2.9: शाहजहाँ एवं उसकी धार्मिक नीति

शाहजहाँ का शासनकाल यद्यपि स्वर्णयुग की संज्ञा से विभूषित किया जाता है, किन्तु धर्म की दृश्टि से यह अनुदारता और प्रतिक्रिया का काल था। शाहजहाँ एक कट्टर सुन्नी था। उसने असहिष्णुता पूर्ण नीति अपनाई जिससे साम्राज्य विनाश की ओर अग्रसर हुआ। उसने हिन्दुओं पर पुनः तीर्थ–यात्रा कर लगाया। नये मन्दिरों के निर्माण और पुराने मन्दिरों के जीर्णोद्धार की अनुमति नहीं दी। इतना ही नहीं, उसके शासन काल में मन्दिरों के विध्वंस की प्रक्रिया पुनः आरंभ हो गयी। उसने बनारस के समीप 72, गुजरात के तीन तथा इलाहाबाद, कश्मीर आदि स्थानों में अनेक मन्दिरों को ध्वस्त करवाया। मुसलमान शासकों की पुरानी नीति के अनुसार शाहजहाँ ने विद्रोही नीति सरदारों और शत्रुओं के मन्दिरों तथा तीर्थ–स्थानों को नष्ट करवाना शुरू किया। हिन्दू मन्दिरों के ध्वस्त कर उनके मलबों से अनेक मस्जिदें बनवायी गयीं। उसने 'सिजदा' तथा 'तुलादान' की हिन्दू प्रथा को मुगल दरबार में समाप्त कर दिया। रक्षाबन्धन, दशहरा, बसन्त आदि त्योहारों को दरबार में मनाया जाना बन्द करवा दिया। उसने धर्म परिवर्तित मुसलमानों को पुनः हिन्दू धर्म को अपनाने पर रोक लगा दी। दलपत नामक हिन्दू को केवल इस कारण प्राणदण्ड दिया गया कि उसने एक मुस्लिम कन्या को हिन्दू बनाकर उसके साथ विवाह कर लिया था। उसके शासन काल में युद्ध बन्दियों को पुनः मुसलमान बनाने का कार्य आरम्भ हो गया। जो युद्ध बन्दी मुसलमान बन जाता था उसे क्षमा कर दिया जाता था। इस्लाम और कुरान के विरूद्ध अपशब्द कहने वाले हिन्दुओं को मृत्यु दण्ड दिया जाता था। यद्यपि शाहजहाँ के

शासन काल के अन्तिम चरण में (सम्भवतः दारा शिकोह के प्रभाव के चलते) कुछ अंश में धार्मिक सहिष्णुता और उदारता की मात्रा में वृद्धि हुई।

2.10: औरंगजेब की धार्मिक नीति

औरंगजेब का चरित्र और उसके कार्य अनेक अर्थों में अकबर के चरित्र एवं कार्यों से भिन्न थे। अकबर ने अपनी दूरदर्शिता, लोकहित की भावना, राष्ट्र–प्रेम एवं धार्मिक उदारता के आधार पर महान की उपाधि पायी। सभी क्षेत्रों में उसे सफलता ही मिली। दूसरी ओर औरंगजेब अपनी अदूरदर्षिता एवं धार्मिक संकीर्णता के कारण असफल एवं अलोकप्रिय शासक के रूप में हमारे सामने आता है। वस्तुतः उसी के शासनकाल में मुगल साम्राज्य के पतन का हम प्रारंभ पाते हैं। औरंगजेब की धार्मिक नीति संकुचित थी। वह एक धर्मान्ध कट्टर सुन्नी शासक था। वह इस्लाम की राजत्व तथा राजसत्ता सम्बन्धी नीति का समर्थक था और उसके शासन का आधार कुरान था। अकबर तथा अपने अन्य पूर्वजों को, जिन्होंने इस्लाम को राज्य धर्म के पद से पदच्युत कर दिया था तथा इस्लाम की राजत्व संबंधी नीति को तिलांजलि दे दी थी, वह इस दृष्टिकोण से उन्हें दोषी मानता था। उनके द्वारा किये गये इस दोष को समाप्त करने के उद्देश्य से औरंगजेब ने पुनः इस्लाम को राजधर्म घोषित कर दिया। यह कहना उचित नहीं है कि वह भारत को काफिरों के देश (दर–उल–हर्व) से इस्लामी राज्य (दार–उल–इस्लाम) में परिणत कर देना चाहता था, फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि धर्म के संदर्भ में उसकी नीति अनुदार एवं गलत थी।

2.11: इस्लाम विरोधी प्रथाओं का दमन

गद्दी पर बैठने के बाद औरंगजेब ने सर्वप्रथम इस्लाम विरोधी उन सभी प्रथाओं को बंद करने का आदेश जारी किया, जिन्हें अकबर ने चलाया था और इस्लाम को भारतवर्ष एवं मुगल दरबार में उस स्थान पर स्थापित किया, जिस पर वह अकबर के पूर्व प्रतिष्ठित था। उसने सिक्कों पर कलमा खुदवाना बंद कर दिया, दरबार में नवरोज के पर्व तथा दशहरा, दीवाली एवं होली जैसे पर्वों को मनाने की प्रथा को समाप्त कर दिया, तुलादान, झरोखा दर्शन आदि को बन्द करवा दिया। उसने इस्लाम को पुनः राजधर्म घोषित कर दिया। उसने देश के गैर–मुसलमानों को राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारों से उस समय तक वंचित रखने की इच्छा व्यक्त की जब तक वे इस हीनता से तंग आकर इस्लाम को स्वीकार न कर लेते। हिन्दू प्रभावित प्रथाओं की समाप्ति कर दी, शराब एवं भांग जैसे मादक द्रव्यों का सेवन निषेध कर दिया, बड़े शहरों में मुहतसिबों (धर्म निरीक्षक) की नियुक्ति की जो मुसलमानों के बीच कुरान के कानूनों को लागू करते थे, हिन्दू विधि से नमस्कार की प्रथा, तिलक की प्रथा, पशु अथवा मुनष्यों की मूर्तियों को रखने की प्रथा आदि को समाप्त कर दिया, आगरा में जहांगीर के द्वारा स्थापित की गयी दो हाथियों की मूर्तियों को हटवा दिया, संगीत का पूर्ण बहिष्कार कर सब राजकीय संगीतज्ञों को निकाल–बाहर किया, राज्य के हिन्दू ज्योतिषियों को पदच्युत कर दिया, वेष्यावृत्ति को निषेध किया, कब्रों को छत से ढकने की मनाही कर दी तथा स्त्रियों को मजारों पर जाना बन्द कर दिया, पुराने मस्जिदों की मरम्मत और नये मस्जिदों का निर्माण करवाकर उनके लिए इमाम, मुअजिम आदि नियुक्त करवाये आदि। धर्म विरोधी एवं इस्लाम के निन्दकों को कठोर सजाएं दी जाती थी यथा अनेक सूफियों को उनकी उदारता के लिए दण्ड दिया गया। दारा के साथी सरमद को इस्लाम की निन्दा के लिए तथा उनके शिष्यों को इस्लाम के प्रथम तीन खलीफाओं को कुछ अपशब्द कहने पर प्राण दण्ड दे दिया गया। इस तरह से उसने इस्लाम को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न

किया । औरंगजेब ने भड़कीले पोशाकों को पहनना बंद करवा दिया। उसके काल में पजामों ओर दाढ़ी की लम्बाई निष्चित कर दी गयी। मुहर्रम के समय जुलूस निकाले पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसी तरह से सती–प्रथा पर भी उसने प्रतिबंध लगाये। उसके प्रयत्नों से साफ परिलक्षित होता है कि औरंगजेब ने इस्लाम के आदर्शों पर शासन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था, किन्तु सम्राट के ये प्रयत्न समान रूप से सफल नहीं हो पाये। 'संगीत को दफनाने' की औरंगजेब की कामना प्रायः असफल रही। इस पर प्रतिबंध के बावजूद सरदार और सामन्तों ने संगीतज्ञों को संरक्षण प्रदान किया। औरंगजेब का यह आदेश सिर्फ बड़े–बड़े नगरों को छोड़कर मृतप्राय ही था। शराब, भांग आदि मादक द्रव्यों के प्रतिबंध के आदेश का ठीक से पालन नहीं हुआ। मनूची लिखता है कि शराब एक ऐसा आम चलन था कि औरंगजेब ने एकबार चिड़चिड़ा कर कहा था कि आश्चर्य है कि इस विशाल साम्राज्य में केवल दो ही व्यक्ति शराब से परहेज करते हैं एक मैं ओर दूसरा प्रधान काजी। वेश्यावृत्ति पर प्रतिबंध लगाने के बावजूद भी देश में वेश्याओं एवं नर्तकियों की उपस्थिति का वर्णन किया है।

2.12: औरंगजेब के हिन्दू विरोधी कार्य

उसने कुछ ऐसे आदेश निकाले, जिनके चलते हिन्दुओं में काफी असंतोष फैला। प्रो. एस. आर. शर्मा. ने अपनी पुस्तक 'रिलिजियस पॉलीसी ऑफ दी ग्रेट मुगल एम्पर्स' में लिखा है, "औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दूओं पर अत्यधिक अत्याचार हुए। यद्यपि उसमें हिन्दू ओर मुसलमान दोनों का रक्त मिश्रण था, तथापि वह हिन्दुओं का बहुत बड़ा विरोधी था।" उसकी हिन्दू विरोधी नीति मुख्यतः उसके व्यक्तित्व से प्रभावित थी, किन्तु उसके राजनीतिक उद्देश्यों को भी इस सिलसिले में आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता है। उत्तराधिकार युद्ध में हिन्दुओं ने मुख्य रूप से दारा का साथ दिया था। औरंगजेब इस बात से पूर्ण परिचित था कि उसके गद्दी पर आने से हिन्दुओं को निराशा हुई। अतः वह उन्हें पूरी तरह से दबाकर रखना चाहता था, जिससे वे उसके शासन के विरूद्ध षड्यंत्र न कर सकें। यह भी उसकी हिन्दू विरोधी नीति का एक महत्वपूर्ण कारण रहा होगा।

औरंगजेब ने हिन्दुओं के त्योहारों पर आंशिक प्रतिबंध लगाये। उदाहरणस्वरूप उसने सड़कों पर होली खेलना तथा होली के लिए पैसा या लकड़ी वसूल करना बंद कर दिया। सती–प्रथा पर भी उसने निषेध लगाया। हिन्दू मेलों तथा धार्मिक उत्सवों पर भी प्रतिबंध लगाये गये। 1659 ई0 में एक फरमान के द्वारा उसने पुराने मंदिरों के जीर्णोद्धार पर प्रतिबंध लगा दिया। इसके दस वर्ष पश्चात् अपने प्रान्त के शासकों को काफिरों के मंदिरों तथा पाठशालाओं, धार्मिक तथा पवित्र स्थानों को तोड़–फोड़ डालने तथा उनके धार्मिक तथा विद्या के प्रचार को रोकने का कठोर आदेश दिया। मुहतसीब लोगों की अपनी सीमा के हर भाग में जाकर हिन्दू मंदिरों तथा पुण्य स्थानों को नष्ट–भ्रष्ट करना पड़ा। मंदिर तोड़ने के लिए नियुक्ति किये गये सरकारी अधिकारियों की संख्या इतनी थी कि उसके निरीक्षण के लिए अलग से एक दरोगा की बहाली की गयी। यह दुष्कर्म सम्पूर्ण देश मे किया गया और गुजरात, कश्मीर, जोधपुर, उदयपुर, जयपुर, मथुरा, बनारस, उड़ीसा, बंगाल, बीजापुर, गोलकुण्डा आदि क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर मंदिर ध्वस्त किये गये। संसार प्रसिद्ध बनारस के विश्वनाथ, मथुरा के केशवदेव तथा सोमनाथ जैसे पवित्र मंदिरों को धराशायी कर दिया गया। डॉ0 ए. वी. पाण्डे का मत है कि औरंगजेब ने सिर्फ नये मंदिरों को गिरवाने का आदेश दिया होगा, क्योंकि 1659 के फरमान में औरंगजेब ने इस विचार की उक्ति की थी कि हिन्दुओं के पुराने मंदिरों की रक्षा करना और उसके धार्मिक अधिकारों में हस्तक्षेप न करना राज्य का कर्तव्य है। सच्चाई जो भी हो एक बात तय है कि औरंगजेब के शासनकाल में यह पाप भारत के कोने–कोने में किया गया था और आज भारत में जो पुराने मंदिर मौजूद हैं, उनमें अधिकांश अठारहवीं सदी या उसके बाद के बने प्रतीत होते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि

औरंगजेब के शासनकाल में व्यापक ढंग से मंदिर ध्वस्त किये गये। मंदिरों के साथ–साथ मूर्तियों को भी बड़े पैमाने पर तोड़ा गया। डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव के शब्दों में, "देश के सभी प्रांतों से दिल्ली और आगरा में गाड़ियां भर–भरकर मूर्तियां लायी गयीं और उन्हे दिल्ली, आगरा तथा अन्य नगरों की जामा मस्जिदों की सीढ़ियों के नीचे भरवा दिया गया।" वे पुनः कहते हैं, "कभी–कभी तो मूर्तियों को तोड़ने के साथ–साथ अनियंत्रित भ्रष्टता का कार्य तक संपन्न हुआं जैसे देवालय में गायों का वध करना। मूर्तियों को जनता के पैरों द्वारा कुचला जाना।" औरंगजेब के इन दुश्कर्म से भारत की हिन्दू जनता अवश्य ही उसे घृणा करने लगी होगी, किन्तु समकालीन मुसलमानों के बीच इनक कार्यों के लिए वह 'जिन्दापीर' के रूप में लोकप्रिय हो गया।

हिन्दुओं को ओर अधिक नीचे दिखाने के उद्देश्य से औरंगजेब ने 12 अप्रैल, 1679 ई0 को अपनी एक आज्ञा के द्वारा पुनः 'जजिया कर' लगा दिया, जिसकी समाप्ति अकबर ने अपने शासनकाल में की थी। जजिया के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है, किन्तु सर यदुनाथ सरकार जैसे इतिहासकारों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यह सामान्यतः हर गैर मुस्लिम व्यक्तियों पर लगता था चाहे वह सरकारी नौकर हो या कास्तकार या व्यापारी। यहां तक ब्राह्मणों को भी इस कर में छूट नहीं थी। औरंगजेब जजिया की वसूली बड़ी कड़ाई से करता था। गैर–मुस्लिम जनता को तीन श्रेणियों में बांटा गया था। प्रथम श्रेणी के लोगों को जजिया कर के रूप में 48 दरहम, द्वितीय श्रेणी वालों को 24 दरहम तथा तृतीय श्रेणी के लोगों को 12 दरहम वार्षिक देना पड़ता था। स्त्री, बच्चे, भिखारी, गुलाम तथा कंगाल इस कर से मुक्त थे। हिन्दुओं ने सामूहिक रूप से इस कर के विरूद्ध प्रदर्षन भी किये, किन्तु उन्हे कुचल दिया गया। उसने मुसलमान व्यापारियों की सीमाशुल्क से मुक्त कर दिया, किन्तु हिन्दू व्यापरियों से 5 प्रतिशत की पुरानी चुंगी वसूल की जाती रही। हिन्दुओं के बगीचों की पैदावार पर 20 प्रतिशत कर तथा मुसलमानों पर केवल 6 प्रतिशत कर की लगाया जाता था। इसी तरह से पशुओं की बिक्री पर हिन्दुओं को 5 प्रतिशत कर देना पड़ता था जबकि मुसलमानों को केवल ढाई प्रतिशत कर देना था। औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दुओं को अन्य दूसरे ढंग से अपमान भी सहने पड़े, तथा उन्हें यह आदेष दिया गया कि वे मुसलमानों जैसे कपड़े न पहने। सन् 1695 ई0 में औरंगजेब ने राजपूतों को छोड़कर अन्य हिन्दुओं को हथियार लेकर, हाथी, अच्छे नस्ल के घोड़े या पालकी पर चढ़ने की मनाही कर दी। सन् 1671 ई में एक फरमान के द्वारा हिन्दुओं को पेशकारों, करोड़ियों तथा दीवानों के पद से हटाकर उनके स्थान पर मुसलमान अधिकारियों को रखा जाना अनिवार्य किया गया। बड़े पदों और मनसबों पर हिन्दुओं की संख्या पर मुसलमान अधिकारियों को रखा जाना अनिवार्य किया गया। बड़े पदों और मनसबों पर हिन्दुओं की संख्या दिन–प्रतिदिन कम होती चली गयी । हिन्दुओं पर जुल्म अभी ओर भी लदने बाकी थे। औरंगजेब को इन कार्यों से भी जब संतोष नहीं हुआ तो उसने बलपूर्वक तथ अन्य कूटनीतिक चालों से हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करना शुरू किया। मुसलमान बनने के लिए उन्हें अनेक प्रकार के प्रोत्साहन दिये गये, यथा अपराधियों को इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने पर छोड़ दिया जाता, ऐसे व्यक्तियों को इनाम दिया जाता आदि। पंजाब के कुछ परिवारों के पास ऐसे फरमान मौजूद हैं, जिनमे इस्लाम स्वीकार करने पर सरकारी नौकरी देने का उल्लेख मिलता है। न्याय शासन भी इस पक्षपात से सर्वथा मुक्त नहीं रहा। अगर सम्पत्ति को लेकर दो व्यक्तियों में झगड़े हो जाते और उसमें से कोई एक इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेता तो सम्पत्ति उसे दे दी जाती। उसने सिक्खों के गुरू तेग बहादुर, गुरू गोविंद सिंह के बेटों तथा अन्य प्रतिश्ठित व्यक्तियों को भी मुसलमान बनाने का प्रयत्न किया। शम्भुजी तथा कवि कलश को भी मुसलमान होने पर अभयदान देने का आश्वासन दिया गया। इस प्रकार औरंगजेब के राज्य काल में साम्राज्य इस्लाम के प्रचार की एक शक्तिषाली संस्था बन गयी। औरंगजेब की इन धर्मांध एवं धर्म असहिष्णुता की नीति का अधिकांश भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने कटु आलोचना की है। सर बूल्जे हेग ने औरंगजेब को धर्मांध संबोधित करते हुए लिखा है, "यंत्रण आर्थिक दबाव, रिश्वत, जबरदस्ती धर्म परिवर्तन, पूजा

प्रतिबंध आदि उसके साधन थे।" डॉ. स्मिथ के शब्दों में, "औरंगजेब उस राज्य का निर्माण करना चाहता था, जिसमें मुहम्मद और कुरान महान् समझे जाएं तथा वे लोगों के जीवन का पथ प्रदर्शन करें। इस भांति औरंगजेब का उद्देष्य हिन्दू धर्म का विनाश एवं मुस्लिम राज्य की स्थापना करना था।" औरंगजेब ने अकबर के यशों पर पानी फेर दिया था।

औरंगजेब की नीति मृत्यु के पश्चात् भी बनी रही। उसके प्रायः सभी उत्तराधिकारियों ने धार्मिक असहिष्णुता की नीति का ही अवलम्बन किया। किन्तु बाद में मुगल शासकों की कमजोरी तथा हिन्दुओं की शक्ति के पुर्नत्थान के कारण इस नीति का महत्व ही जाता रहा।

2.13: निष्कर्ष

मुगलों की धार्मिक नीति दिल्ली सल्तनत की अपेक्षा अधिक उदार एवं सहिष्णु थी। उनकी धार्मिक नीति कूटनीतिपूर्ण एवं राज्यहित में थी। इसी नीति के अनुसरण के कारण मुगल भारत में लम्बे समय तक राज्य करने एवं जनता का सहयोग प्राप्त करने में सफल हुए। यद्यपि बाबर और हुमाँयू का इस क्षेत्र में कोई बड़ा योगदान नहीं था परन्तु अकबर ने इसमें सराहनीय भूमिका अदा की। उसने सम्पूर्ण राज्य में धार्मिक एकता और सामाजिक समरसता लाने का यथोचित प्रयास किया। उसने धार्मिक एवं सामाजिक भेद–भाव के आधार पर लिए जाने वाले सभी कर समाप्त कर दिये। सभी के साथ समान व्यवहार किया गया और सभी को आगे बढ़ने के सु–अवसर प्रदान किया गया। सुलह–ए–कुल की नीति का अनुसरण तथा दीन–ए–इलाही एवं इबादत खाना की स्थापना इसी नीति का द्योतक है। अकबर के ठीक विपरीत औरंगजेब ने कठोर धार्मिक नीति अपनाई। उसने सारे गैर–इस्लामिक रीति–रिवाज एवं परिपाटी – झरोखा दर्षन एवं तुलादान इत्यादि को बन्द करवा दिया। सिक्के पर कलमा खुदवाना और नौरोज त्यौहार मनाने पर भी पाबंदी लगा दी। औरंगजेब के कठोर धार्मिक नीति के भयानक दुष्परिणाम हुए। उसने मुगल–साम्राज्य की एकता, अखण्डता, शक्ति और सम्पन्नता को नष्ट कर दिया। जहाँ अकबर की धार्मिक नीति ने मुगल साम्राज्य को शक्ति और स्थिरता दी वहीं औरंगजेब की धार्मिक कठोर नीति ने इस वंश को पतन की ओर अग्रसर कर दिया।

2.14: अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'दीन–ए–इलाही' के प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।
2. 'दीन–ए–इलाही' की असफलता एवं अलोकप्रियता के कारणों का वर्णन कीजिए।
3. शाहजहाँ की धार्मिक नीति की समीक्षा कीजिए।
4. औरंगजेब की धार्मिक नीति का वर्णन करते हुए उसके दुष्परिणामों का उल्लेख कीजिए।

2.15: सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विपिन बिहारी सिन्हा–मध्यकालीन भारत
2. मानिक लाल गुप्ता–मध्यकालीन भारत का इतिहास
3. एल0 पी0 षर्मा – मध्यकालीन भारतग अ
4. आषीर्वादीलाल श्रीवास्तव– भारत का इतिहास
5. इमत्याज अहमद–मध्यकालीन भारत

2.14: निबंधात्मक प्रश्न

1. बाबर तथा हुमायूँ की धार्मिक नीति का उल्लेख कीजिए।
2. अकबर की धार्मिक नीति के मुख्य प्रेरक तत्वों का विष्लेशण कीजिए।

ब्लॉक दो

इकाई तीनः मराठों का उदय : शिवाजी की उपलब्धियाँ

3.1 परिचय

3.2 उद्देश्य

3.3 17वीं शताब्दी के पश्चिमी भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

3.4 शिवाजी के पूर्ववर्तियों की बदलती किस्मत

3.5 शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन और उनके प्रेरणास्रोत

3.6 शिवाजी की उपलब्धियाँ

- 3.6.1 तहस–नहस भू–भागों का जीर्णोद्धार
- 3.6.2 किलों पर कब्जा और नियंत्रण
- 3.6.3 नागरिक प्रशासन (केन्द्रीय तथा प्रांतीय या सूबाई) में सुधार
- 3.6.4 राजस्व प्रबन्धन : कृषि और व्यापार को प्रोत्साहन
- 3.6.5 समर्थ सैन्य शक्ति का गठन
- 3.6.6 धार्मिक सहिष्णुता और उदार नीतियाँ

3.7 सारांश

3.8 प्रयुक्त शब्दों की परिभाषा

3.9 स्व–मूल्यांकन के प्रश्न और उत्तर

3.10 संदर्भ सूची

3.11 अनुशंसित साहित्य

3.12 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

3.1 परिचय

भारत के पश्चिमी क्षेत्र को, जहाँ आज मराठा और मराठी भाषी लोग रहते हैं, पूर्व आधुनिक काल में दक्कन (दक्षिण) कहा जाता था। इस क्षेत्र का अधिकांश भाग पथरीला है। यहाँ ऊँचे–ऊँचे पठार हैं और यह भू–भाग दुरूह है। यह भू–भाग लगभग 600 मील तक समुद्र के समानान्तर फैला हुआ है। इस क्षेत्र की भू–भागीय विशेषताओं ने इस क्षेत्र के मानव–इतिहास पर गहरा प्रभाव डाला है। इस क्षेत्र ने पिछली दो सहस्राब्दियों में अनेक राज्यों का उत्थान और पतन देखा है। इसके अलावा इस क्षेत्र ने उत्तर भारत में अवस्थित साम्राज्यों का सफलता पूर्वक प्रतिरोध किया, उनके आक्रमणों को झेला और सैन्य विजय भी हासिल की है। दक्कन की सैन्य विजयों की अनेक शताब्दियों का इतिहास खंगालें, तो हम पाते हैं कि मराठों ने सन् 1818 ई0 में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी से परास्त होने से पहले 17वीं शताब्दी में अपने शासन के द्वारा उत्तर भारत के साम्राज्य का मजबूती से मुकाबला ही नहीं किया, बल्कि इस क्षेत्र के प्रशासनिक और आर्थिक जीवन में भी सकारात्मक बदलाव किया।

3.2 उद्देश्य

इस यूनिट का उद्देश्य आपको मराठा साम्राज्य के उत्थान और शिवाजी की उपलब्धियों से परिचित कराना है। इस अध्ययन के दौरान आपको निम्नलिखित के बारे में जानकारी प्राप्त होगी –

1. 17वीं शताब्दी के पश्चिमी भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
2. शिवाजी के पूर्ववर्तियों की बदलती किस्मत
3. शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन और उनके प्रेरणा–स्रोत
4. शिवाजी की उपलब्धियाँ

3.3 17वीं शताब्दी के पश्चिमी भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

शिवाजी के जन्म और उनके सत्ता में आने से पहले दक्कन क्षेत्र के लिए शताब्दियों तक संघर्ष हुए। अलाउद्दीन खिलजी ने सन् 1296 में इस क्षेत्र पर आक्रमण किया तथा भारी मात्रा में माल–असबाब लूट कर ले गया। यह पहला मौका था, जब इस क्षेत्र ने मुस्लिमों के आगमन और उन्हें यहाँ बसते देखा। खिलजी के उत्तर को लौटने के बाद उसके सेनापति मलिक काफूर ने इस पूरे क्षेत्र को अपने नियंत्रण में ले लिया और सन् 1347 में यहाँ बहमनी वंश का राज्य स्थापित हुआ। ये शासक मुस्लिम थे और इन्होंने पारसी भाषा और संस्कृति को संरक्षण दिया। 15वीं शताब्दी तक अपने शासन के दौरान इस शासकों ने पूरे दक्कन क्षेत्र पर सम्पूर्ण नियंत्रण की कोशिश की, लेकिन सफलता नहीं मिली। 15वीं शताब्दी के अन्त तक बहमनी साम्राज्य 5 अलग–अलग राज्यों– अहमदनगर, बीजापुर, बेराड़, बीदर और गोलकुण्डा में विभाजित हो गया। ये राज्य आपस में लड़ते रहते थे। इन राज्यों के दरबार में तुर्क और अफगानी मूल के मुस्लिम तथा इस्लाम धर्म कबूल कर लेने वाले मुस्लिम थे। इनमें परस्पर तकरार और विवाद चलते रहते थे। इस समय तक ये राज्य भी उत्तर में अवस्थित मुगल साम्राााज्य के साथ युद्ध और कूटनीति के जरिए सम्पर्क में आने लगे थे। बेराड़ का शासक इमाद शाह राजवंश से था। अहमद नगर ने बेराड़ को अपने राज्य में मिला लिया था। अहमद नगर राज्य पर निजामशाही का शासन था। निजाम एक धर्मान्तरित मुस्लिम था। अहमद नगर राज्य सन् 1636 में मुगल साम्राज्य का हिस्सा बन गया। बीदर राज्य पर बरीद शाह राजवंश का शासन था और बीजापुर के इब्राहीम आदिल शाही द्वितीय ने सन् 1619 में इसे जीत लिया। बीजापुर राज्य, जिस पर आदिल शाही राजवंश का शासन था, सन् 1686 में मुगल साम्राज्य का हिस्सा बन गया। गोलकुंडा राज्य या आज का हैदराबाद

कुतुबशाही राजवंश के अधीन था। मुगल सेना ने सन् 1687 में इस राज्य को भी जीत लिया। अतः सन् 1627 में जन्मे शिवाजी, दक्कन के राज्यों में परस्पर तथा दक्कन के राज्यों के मुगलों के साथ संघर्ष के दौरान बड़े हुए थे। लेकिन दक्कन के राज्यों के बीच परस्पर शत्रुता के दौरान शिवाजी के पूर्ववर्ती एक महत्वपूर्ण राजनीतिक दल और सत्ता के दावेदारों के रूप में उभरे। उन्होंने इन प्रतिद्वन्दिताओं का फायदा उठाया और अपने परिवार तथा अपने वंश की स्थिति को मजबूत करना शुरू कर दिया। यह सारा घटनाक्रम शिवाजी द्वारा मराठा शक्ति की कमान सम्भालने और मराठा साम्राज्य की नींव रखने तथा दक्कन के शासकों और अन्ततः मुगल साम्राज्य, दोनों के चुनौती देने से पहले का है।

3.4 शिवाजी के पूर्ववर्तियों की बदलती किस्मत

दक्कन में मराठा परिवार पाटिल और देशमुख जैसे प्रशासनिक पदाधिकारियों से सम्बन्धित थे। देशमुख और पाटिल सरकारी पदनाम थे, जो इन मराठाओं को उन्हें सौंपे गए क्षेत्र का प्रशासन चलाने और राजस्व वसूलने के लिए सम्बन्धित राज्यों द्वारा प्रदान किये गये थे। इसमें साधारण पृष्ठभूमि वाले मराठा भी थे, जो दक्कन राज्यों की सेना में सैनिकों के रूप में सेवाएँ देते थे। 16वीं और 17वीं शताब्दी के दौरान जब दक्कन के राज्य परस्पर संघर्षरत थे, अनेक मराठा परिवार दक्कन के विभिन्न राज्यों में युद्ध तथा कूटनीति के द्वारा अपना दबदबा कायम कर रहे थे। इस अवधि के दौरान जिन मराठा परिवारों ने अपना रसूख कायम किया, उनमें फाल्टन के निम्बालकर, म्हस्वाड़ के माने, जावली के मोरे, सिन्दखेड के जाधव, मुधोल के घोरपड़े, वेरूल के भोंसले शामिल हैं।

इनमें वेरूल के भोंसले परिवार का उत्थान सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक था। शिवाजी इसी परिवार में जन्मे थे। इस परिवार यानि शिवाजी के पूर्ववर्तियों ने नए शासन के लिए मराठों को संगठित करने में अग्रणी भूमिका निभाई। बाबाजी शिवाजी के प्रपितामह थे। उन्हें पाटिल के अधिकार अपने मातृपक्ष यानि ननिहाल की तरफ से मिले थे। ये क्षेत्र पूना जिले के अन्तर्गत थे। बाबाजी महत्वाकांक्षी व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने वेरूल में गाँव के मुखिया के रूप में रहना पसन्द किया। सन् 1597 और 1599 के आसपास उनकी मृत्यु हुई। वे अपने पीछे दो पुत्र माले जी और विठोजी तथा वेरूल, हिंगानी, देयुलगावा, खनवत, जिन्ती और करनाड के पाटिल के रूप में अधिकार छोड़ गए थे।

लेकिन उनके दोनों पुत्र, विशेषकर मालोजी परिवार की सम्पदा और सम्मान में वृद्धि के बहुत इच्छुक थे। मालोजी और उनके भाई विठोजी, आरम्भ में फाल्टन के एक उच्च्व मराठा सरदार जगपाल निम्बालकर की सेवा में थे। उसे वांगोजी नाम से भी जाना जाता था। मालो जी का वांगोजी की पुत्री उमाबाई से विवाह हुआ। इस रिश्ते के लिए सिन्दखेड़ के मराठा सरदार लाखूजी जाधवराव ने सिफारिश की थी। इस विवाह से पता चलता है कि मालोजी इस समय तक निम्बालकर के अनुकूल दर्जा प्राप्त कर चुके थे। इस रिश्ते से मराठा सरदारों के बीच मालोजी का दर्जा भी ऊँचा हुआ। इस अवधि के दौरान, दक्कन के दो राजवंश, अहमदनगर की निजामशाही और बीजापुर के आदिलशाही के बीच तकरार चल रही थी। निजामशाही ने अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए मराठा सरदारों को अपने पक्ष में करना शुरू कर दिया। सन् 1377 में मालोजी और उनके भाई ने अहमदनगर राज्य के सेवा में आ गए। मालोजी को अहमदनगर जिले के श्रिंगोड़ा में 600 एकड़ जमीन दी और मालोजी वहीं बस गए तथा बेरूल में अपने पैतृक घर से बहुत दूर इस जगह बस्ती बसा ली। मालोजी की 1605 ई0 में इन्दापुर में एक संघर्ष के दौरान मृत्यु हो गई। विठोजी को उनके परिवार, विशेषकर उनके पुत्र शाहजी की देखभाल का दायित्व सम्भालना पड़ा। विठोजी ने जब लाखोजी जाधव की पुत्री के साथ शाहाजी का विवाह किया, उसकी उम्र छः वर्ष की थी। विठोजी सन् 1611 में सक्रिय सेवा से सेवानिवृत्त हो गए।

अहमदनगर की निजामशाही में शाहाजी ने अपने पिता की जगह ली। इस अवधि के दौरान मुगल दक्कन में अपना प्रभाव बढ़ाने में सक्रिय थे। परिणामस्वरूप अनेक मराठा सरदार पाला बदल कर मुगलों की तरफ जाने लगे। शाहजी के ससुर, लाखोजी जाधव, जो निज़ामशाही की सेवा में थे, सन् 1621 में मुगलों की सेवा में चले गये। शाहजी मलिक अम्बर के विश्वासपात्र थे। मलिक अम्बर अहमदनगर का प्रधानमंत्री था और वह निमाजशाही को मुगलों से बचाना चाहता था। शाहाजी और विठोजी के पुत्र सम्भाजी का अहमदनगर के दरबार में शामिल मराठा सरदारों के साथ संघर्ष हुआ, ये मराठा सरदार मुगलों से जा मिले थे। इस संघर्ष में सम्भाजी मारे गए और शाहाजी घायल हो गये। अपने पिता की तरह ही शाहाजी भी मलिक अम्बर के प्रति वफादार बने रहे। मलिक अम्बर ने मुगल सेना और इसके सहयोगी बीजापुर राज्य के हमलों का मुकाबला करने के लिए दीर्घकालिक युद्ध अभियान चलाए। इस प्रतिद्वन्द्विता का अन्त सन् 1624 में भटवाड़ी की लड़ाई के रूप में हुआ। इस युद्ध में मलिक अम्बर ने मुगलों और बीजापुर की संयुक्त सेना का मुकाबला किया और जीत हासिल की। शाहजी और उनके भाई शरीफजी ने इस युद्ध में मलिक अम्बर का कन्धे से कन्धा मिला कर साथ दिया। अब तक लखूजी जाधव, जो मुगलों की सेवा में जा चुके थे, निजामशाही के दरबारियों को काफी हद तक अपने प्रभाव में ले चुके थे। इसलिये इस विजय के बावजूद शाहाजी सन् 1625 में बीजापुर के पक्ष में हो गए। वहीं दूसरी तरफ सन् 1626 में उनके सलाहकार मलिक अम्बर की मृत्यु हो गई। सन् 1627 में बीजापुर के आदिलशाह द्वितीय की भी मृत्यु हो गई। अब बीजापुर के दरबार में शाहाजी अलग–थलग पड़ गए थे और सन् 1627 में वे निजाम शाही की सेवा में चले गए। निजाम शाह ने 1628 में उन्हें पूना के राजस्व का ठेका दिया। लेकिन निजामशाह द्वारा उनके श्वसुर लाखूजी जाधव राव और उसके दो पुत्रों की हत्या करवाने के बाद उन्होंने पुनः अहमदनगर की सेवायें त्याग दीं। शाह जी इसके बाद शिवनेरी के किले में आ गए, जहाँ उन्होंने अपने पुत्र सम्भाजी का किले के सरदार विजयराज की पुत्री से विवाह किया। उन्होंने नौकरी के लिए आजम खान के माध्यम से मुगलों से वार्ता की। उन्हें पाँच हजारी दर्जे के साथ मुगल मनसबदार के रूप में नियुक्त कर लिया गया। उन्हें दो लाख नगद तथा खिलअत (एक रेशमी वस्त्र) प्रदान की गई। मनसबदार के तौर पर उन्हें सौंपा गया पहला दायित्व दरयाखान को गिरफ्तार करना था। इस मुगल अधिकारी ने निजाम शाह के यहाँ शरण ली थी और यह मुगलों के लिए परेशानी पैदा कर रहा था। शाह जी ने इस दायित्व को सफलता से निभाया।

शाह जी ने अहमदनगर की सेवा त्याग कर मुगल मनसबदारी स्वीकार की। इस संधिकाल के दौरान 19 फरवरी, 1630 को जीजाबाई ने शिवनेरी में शिवाजी को जन्म दिया। शाह जी लम्बे समय तक मुगल सेवा में नहीं रहे, क्योंकि उनके हित तो दक्कन से जुड़े थे। वे फिर सन् 1631 में निजामशाही में लौट आए। इसी वर्ष बुरहान निजाम शाह तृतीय की हत्या कर दी गई थी। इस कृत्य को उसके प्रधानमंत्री फतह खान ने अंजाम दिया था और उसने गद्दी हथिया ली थी। शाह जी ने इस दरबारी शत्रुता को समाप्त करने तथा अहमदनगर राज्य को एकजुट करने एवं दक्कन को मुगलों के खिलाफ मजबूत बनाने का प्रयास किया। वे इस बार मुहम्मद आदिल शाह का समर्थन प्राप्त करने में भी सफल रहे। आदिल शाह के अनेक दरबारी, जैसे कि खवास खान, रन्दौला खान और मुरारी पण्डित दक्कन की आजादी के लिए शाह जी के प्रयासों पर विश्वास करते थे। 1634 में मुगल सेनापति महावत खान की मृत्यु हो गई और यह शाह जी के लिए बहुत फायदेमंद रहा। लेकिन सन् 1636 में शाहजहाँ दक्कन आया और उसने शाइस्ता खान, अहलावर्दी खान के साथ मिलकर आदिल शाही तथा निजाम शाही के तहत मराठों के संयुक्त प्रतिरोध को कुचल दिया। आदिल शाह को मजबूर हो कर मुगलों से सन्धि करनी पड़ी और शाहजी पूना और सूपा के जागीरदार के तौर पर आदिल शाही सेवा में बने रहे। निजाम शाही का अन्त हो गया और इसके भू–भाग को मुगलों और बीजापुर राज्य के बीच बाँट दिया गया।

इसके बाद मुहम्मद आदिल शाह ने शाह जी को कर्नाटक में तैनात कर दिया, जहाँ वे बीजापुर राज्य की सेवा में रहे। सन् 1656 में मुहम्मद आदिल शाह की मृत्यु के बाद शाहजी कर्नाटक के असल मालिक बन गए। अतः शिवाजी के जन्म तक मराठा, विशेष रूप से भोंसले परिवार दक्कन (दक्षिण) की राजनीति और युद्ध के मैदान, दोनों में अपनी धाक जमा चुका था। अब उनकी जागीर कुछेक गाँवों से बढ़कर लगभग एक राज्य के बराबर हो चुकी थी। वे दक्कन (दक्षिण) की दरबारी राजनीति में बहुत शक्तिशाली बन चुके थे और मुगल भी उन्हें एक शक्तिशाली कौम मानने लगे थे। इस पूरी अवधि के दौरान शिवाजी के पूर्वज ज्यादातर समय मुगलों से एक क्षेत्र के तौर पर दक्षिण की आजादी सुरक्षित रखने में अग्रणी रहे और उन्होंने इस प्रयोजन में विश्वास रखने वाले मुस्लिम कुलीनों तथा प्रतिभाशाली व्यक्तियों से गठबंधन किया। जब कोई विकल्प नहीं बचता था, तभी वे मुगलों से कोई वार्ता या सौदेबाजी करते थे।

शिवाजी आपसी संघर्ष, आदिल शाही राज्य और निजामशाही राज्य की उथल–पुथल भरी राजनीति तथा मुगलों द्वारा आक्रमण के माहौल में पले–बढ़े। उन्होंने अपने कार्यकाल में दक्षिण के दो राज्यों के भग्नावशेषों पर मराठा शक्ति को एकजुट करने और इस क्षेत्र में मुगलों की चुनौती से निपटने की दिशा में कार्य किया।

3.5 शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन और प्रेरणा–स्रोत

जिस वर्ष शिवाजी का जन्म हुआ था, उस वर्ष दक्षिण में भयानक अकाल पड़ा था। अकाल के बाद बेतहाशा बरसात हुई। बहुत भारी संख्या में जनहानि हुई। दक्कन (दक्षिण) का विशाल भू–भाग तहस–नहस हो गया। कृषि और व्यापार लगभग थम सा गया। इस अकाल से गाँव के गाँव बर्बाद हो गए, लेकिन राजनीतिक उथल–पुथल नहीं थमी। मुगलों तथा अन्य निकायों के बीच विवाद और युद्ध अभियान लगातार चलते रहे। सन् 1630 और 1636 के बीच शिवाजी के पिता शाहजी यहाँ–वहाँ पलायन करते रहे। इसका कारण बार–बार जगह बदलना और दुश्मनों का हमला था।

इस प्रकार शिवाजी का बचपन उथल–पुथल भरे राजनीतिक एवं आर्थिक हालातों में गुजरा। शाहाजी ने अपने पुत्र शिवाजी के लालन–पालन का दायित्व दादोजी कोन्डादेव और रामराव रान्जेकर को सौंपा था। दादोजी पूना में मल्थाना के कुलकर्णी थी। शिवाजी को अपनी माता जीजा बाई से अगाध प्रेम था। शिवाजी के प्रारम्भिक जीवन में ये तीन प्रमुख प्रेरणास्रोत थे। उन्होंने पढ़ना, लिखना तथा प्रशासक बनने के लिए जरूरी कला सीखी। इन सबके साथ–साथ उन्हें सैन्य प्रशिक्षण भी दिया गया। शिवाजी की माता जीजाबाई दृढ़ इच्छाशक्ति वाली महिला थी। शिवाजी ने अपनी माता की उत्कट और कभी हार न मानने वाली भावना को आत्मसात किया था। जीजाबाई ने मुगल दरबार में शामिल हो चुके अपने पिता की शरण लेने के बजाय पति के साथ यहाँ–वहाँ पलायन करना ज्यादा पसंद किया था।

पिता की अनुपस्थिति में दादोजी कोन्डादेव शिवाजी के लिए पिता समान थे। उन्होंने नागरिक प्रशासन के बारे में शिवाजी को लगभग सब कुछ सिखाया और जब शिवाजी ने अपनी जागीर की जिम्मेदारियाँ सम्भालना शुरू किया, वे हर समय शिवाजी के साथ रहे। इतिहासकार एक और प्रेरणास्रोत का हवाला देते हैं, जिसने शिवाजी के जीवन को प्रभावित किया, ये थी – पौराणिक गाथायें, हिन्दू महाकाव्य रामायण और महाभारत। चारण और भाट कथा कीर्तनों में इनका गायन और वाचन किया करते थे। शिवाजी इन कथा–कीर्तनों में नियमित रूप से जाया करते थे और उन्हेंने कथा–कीर्तनों में शामिल होने के लिए अपनी जान भी जोखिम में डाली थी। शिवाजी पढ़ना–लिखना जानते थे या नहीं, इस पर बहुत चर्चा–परिचर्चा हुई है, लेकिन इसके दस्तावेजी सबूत हैं कि अपने शासनकाल में उन्होंने अनेक प्रशासनिक सुधार किये थे।

3.6 शिवाजी की उपलब्धियाँ

सन् 1636 में, जब शिवाजी लगभग छः वर्ष के थे, शाहजी ने पूना परगना के 36 गाँव शिवाजी को सौंप दिये थे। सन् 1645–46 तक शिवाजी पूरी जागीर के ट्रस्टी बन गए। इसी उम्र से शिवाजी ने अपना शासनकाल शुरू किया। इसी चरण में उन्होंने संस्कृत में अपनी मुहर भी अपनाई।

3.6.1 तहस–नहस भू–भागों का जीर्णोद्धार

शिवाजी ने सबसे पहले अपनी जागीर में तबाह हो चुकी खेती को फिर से बहाल करने का कार्य किया। आदिल शाही सरदारों और सन् 1630–31 के अकाल ने खेती को तबाह कर दिया था। उन्होंने लोगों के लम्बे समय से चले आ रहे जमीन सम्बन्धी विवादों का समाधान किया। इससे उन्हें बहुत जन–समर्थन मिला। दादोजी कोंडादेव खेडबारे और मुठे–मावेल क्षेत्र से राजस्व प्राप्त करने में सफल रहे। उन्होंने गाँव के मुखियाओं पर कृषि कार्यों में लोगों की मदद करने और हमलों तथा अकाल के चलते वीरान हो चुके भू–भागों में लोगों को फिर से बसने के लिए समझाने का दबाव ड़ाला।

उनका दूसरा सबसे महत्वूपर्ण कार्य था उन किलों पर फिर से कब्जा करना, जो अपनी जागीर पर पकड़ बनाये रखने के अत्यंत अहम थे। इसलिये जैसे–जैसे वे किलों पर कब्जा करते गए, उनके आसपास के अपने प्रभाव क्षेत्र में लोगों को बसाते भी गए, उन्हें इन बसावटों में प्रशासन की एक ठोस व्यवस्था भी कायम की, ताकि उनके राज्य के लोगों का समर्थन उन्हें मिलता रहे। शिवाजी ने विस्तार और अपने राज्य के समेकन की नीति अपनाई। सन् 1647 में उन्होंने बीजापुर से कोन्डना (सिंहड़) का किला छीन लिया। यह अभियान मराठा साम्राज्य स्थापित करने की उनकी यात्रा का शुभारम्भ था। 27 वर्ष बाद 1674 में उनका राज्याभिषेक हुआ। इस समय तक वे अपने प्रशासन को दो परतों – प्रान्तीय (सूबाई) और केन्द्रीय के रूप में स्थापित कर चुके थे। राज्याभिषेक के बाद उनके प्रशसन और सेनाओं को और ज्यादा संगठनात्मक स्वरूप मिला।

3.6.2 किलों पर कब्जा और नियंत्रण

शिवाजी की एक प्रारम्भिक व महत्वपूर्ण उपलब्धि बिना रक्तपात के अपनी जागीर के आसपास के महत्वपूर्ण किलों पर कब्जा करना और उन्हें मजबूत प्रशासन के अधीन लाना था। इनमें पुरन्दर, रोहिड़ा, तोरण, रायगढ़ और चाकण के किले शामिल थे। उसके बाद उन्होंने अपनी चतुराई भरी चालों से आनन–फानन में जावली को अपने नियंत्रण में ले लिया। दक्कन (दक्षिण) में यह किला रणनीतिक तौर पर महत्वपूर्ण था। यह किला आदिल शाही के अधिराज्य के अधीन था। जावली में स्थित रायगढ और प्रतापगढ़ के किले उनके नियंत्रण में आ गए। अपनी जागीर को सुरक्षित बनाने के लिए उनकी यह विजय अत्यन्त अहम थी। इस दौरान शिवाजी ने मुगलों के साथ दोस्ताना सम्बन्ध बनाये रखे। मुगल भी आदिल शाही प्रभाव को मिटाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने शिवाजी को पूरी छूट दे रखी थी। सन् 1656 तक शिवाजी ने माहुली और महाड़ के बीच के क्षेत्र पर कब्जा कर लिया था और कुछ भू–भाग को छोड़कर पूरे कोंकण के उत्तरी भाग पर उनका वर्चस्व स्थापित हो गया था। किले इस रणनीति का एक अहम हिस्सा थे। शिवाजी ने लगभग 240 किलों (दुर्गों) पर अपना नियंत्रण कायम कर लिया था। इन किलों के अनुरक्षण की दिशा में वे काफी जागरूक थे। प्रत्येक किले में समान दर्जे के तीन अधिकारी हवलदार, सरनौबत और सबनीस तैनात किये गये थे। किले की रसद और भण्डार की निगरानी के लिए खरकानिस नियुक्त किये गये थे।

3.6.3 नागरिक प्रशासन (केन्द्रीय तथा प्रान्तीय या सूबाई) में सुधार

इन क्षेत्रों को अपने नियंत्रण में लेने के बाद यहाँ स्थिरता बनाये रखने के लिए शिवाजी ने प्रशसन का मजबूत ढांचा खड़ा किया। सन् 1657–58 में शिवाजी ने नागरिक एवं सैन्य दोनों प्रशासन की अलग–अलग शाखाओं के लिए 7 कारकूनों की एक परिषद बनाई थी। उनकी सेना में 1000 घोड़े, 1000 पैदल सैनिक थे तथा 40 किले उनके नियंत्रण में थे।

उन्होंने तत्कालीन परम्पराओं के आधार पर प्रशासन स्थापित किया ताकि यह प्रशासन सहनशील और टिकाऊ हो। इस आधार पर हम कह सकते हैं क भारत के आधुनिक काल के आरम्भ में शिवाजी एक कुशल प्रशासक थे। शिवाजी के राज्य के तीन सम्भाग (डिवीज़न) थे, उन्होंने सबसे पहले प्रत्येक सम्भाग में प्रांतीय (सूबाई) प्रशासन की नींव रखी। ये डिवीज़न (सम्भाग) इस प्रकार हैं –

1. उत्तरी सम्भाग – सलहर (आज का नासिक) और पूना के बीच का क्षेत्र, बम्बई के उत्तर में लगभग 100 मील की दूरी पर कोंकण का कुछ भाग।
2. मध्य सम्भाग – पश्चिमी घाट अथवा बालघाट और बम्बई के दक्षिण में भटकल तक दक्षिणी कोंकण के बीच का क्षेत्र।
3. दक्षिणी सम्भाग – पूना के दक्षिण में वारघाट से तुंगभद्रा के निकट कोपबल तक का क्षेत्र।

प्रत्येक सम्भाग का प्रमुख मजिस्ट्रेट दर्जे का अधिकारी था, जिसे सरकारकुन कहा जाता था। प्रत्येक सम्भाग को 14 जिलों में बाँटा गया था। प्रत्येक जिले का मुखिया सूबेदार कहलाता था, जो प्रशासन के असैन्य (सिविल) मामले देखता था। प्रत्येक सूबेदार की सहायता के लिए एक मजूमदार नियुक्त किया गया था, जो एकाउण्ट और ऑडिट का काम देखता था। प्रत्येक जिले को महल में बाँटा गया था, जिसका मुखिया हवलदार कहलाता था। इसके बाद महल के अन्तर्गत देशमुख, देशपाण्डे जैसे विरासतीय अधिकारी होते थे, जो गाँवों के समूह, जिन्हें परगना कहा जाता था, के प्रभारी होते थे। इसके अलावा पाटिल और कुलकर्णी भी थे, जो ग्राम स्तर पर दीवानी और आपराधिक मामले देखते थे।

सन् 1674 में, जब शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ, उन्होंने अष्ट प्रधान मण्डल नाम से 8 मंत्रियों की एक परिषद बनाई। केन्द्रीय प्रशासन का यह ढांचा सीधे शिवाजी के अधीन था। इस परिषद में शामिल लोगों को मराठा प्रशासन के अलग–अलग दायित्व सौंपे गये थे, जो इस प्रकार हैं

1. मुख्य प्रधान – प्रधानमंत्री
2. आमात्य (मजूमदार) – राजस्व मंत्री
3. सचिव – सभी शाही फरमानों और पत्राचार का सचिव
4. मंत्री – वाकनिस – रिकॉर्ड कीपर और व्यक्तिगत सलाहकार
5. सेनापति – कमाण्डर–इन–चीफ
6. सुमन्त – विदेश मंत्री
7. न्यायाधीश – चीफ जस्टिस
8. पण्डित राव – पुरोहित/धार्मिक प्रमुख

3.6.4 राजस्व प्रबन्धन : कृषि और व्यापार को प्रोत्साहन

शिवाजी के प्रशासन की आय के मुख्य स्रोत भू–राजस्व (जमीन पर लगान) प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष; चौथ और सरदेशमुखी थे। इसके अलावा युद्ध से प्राप्त लूट भी इस आय में शामिल कर ली जाती थी। मराठा राज्य द्वारा प्राप्त राजस्व का एक चौथाई भाग चौथ के रूप में वसूला जाता था। सरदेशमुखी मराठा प्रभुत्व वाले किसी सूबे द्वारा उगाहे गए कुल राजस्व का 10 प्रतिशत होता था। सरदेशमुखी पहली बार सन् 1648 में वसूला गया था। यह लेवी प्राप्त करने का मतलब होता था कि शिवाजी के शासन के अधिकार को स्वीकार कर लिया गया है। धीरे–धीरे चौथ वसूली नियमित होती

गई और बाद में अप्रत्यक्ष रूप से मराठों के नियंत्रणाधीन मुगल भू–भागों से भी चौथ वसूला जाने लगा।

जहाँ तक राज्सव उगाही और प्रशासन का सम्बन्ध है, जमीन की सटीक माप और उर्वरकता के अनुसार जमीन का वर्गीकरण निर्धारित करना शिवाजी की एक बड़ी उपलब्धि थी और भू–राजस्व इसी के अनुसार तय किया गया था। अपने राज्य के कुछ हिस्सों में शिवाजी ने बटाई बन्दोबस्त भी लागू किया। इस व्यवस्था में किसान के उत्पाद राज्य के साथ बराबर–बराबर बांटे जाते थे। शिवाजी ने यह सुनिश्चित किया था कि इन भू–भागों के किसान इसके अलावा कोई अन्य कर नहीं देंगे। उन्होंने जमीन सम्बन्धी विवादों का समाधान किया और लोगों को प्राकृतिक आपदाओं तथा आक्रमणों में बर्बाद हो चुकी जमीनों पर बसने के लिए प्रोत्साहित किया। साथ ही लोगों को बसाकर खेतिहर जमीन का विस्तार किया।

कृषि के विस्तार के लिए उन्होंने अधिकारियों को निर्देश दिये कि वे समझा–बुझा कर लोगों को बसने के लिए दबाव डालें और उन्हें सुरक्षा दें तथा क्रमिक रूप से वृद्धिगत राजस्व, जिसे इस्तवा कहा जाता था, के आधार पर कृषि कार्य के लिए प्रयुक्त जमीन का मूल्यांकन करें। इस व्यवस्था के तहत जिस जमीन पर लगातार आठ साल से खेती हो रही हो, उस पर पूरा टैक्स (कर) लगाया जाता था। नई जमीनों को कृषि योग्य बनाने के लिए यह एक उल्लेखनीय प्रोत्साहन था। बिचौलियों और दलालों की भूमिका खत्म करने के लिए शिवाजी ने केन्द्रीय प्रशासन और प्रान्तीय प्रशासन के सभी मंत्रियों को वेतन दिया।

शिवाजी ने वेतन, ईनाम और मुकासा जैसी पारम्परिक काश्तकारी को ससम्मान बनाये रखा, लेकिन इसके प्रति उन्होंने यथार्थ नजरिया अपनाया। असैन्य (सिविल) और सैन्य स्वरूप की ये दोनों सेवायें विरासतीय थीं। शिवाजी ने इन पुरानी व्यवस्थाओं में तब तक कोई दखल नहीं दिया, जब तक कि वे गाँव और समुदाय के प्रति अपने दायित्वों को भली–भांति निभा रहे थे। उन्होंने नई काश्तकारियाँ भी बनाई और उन पुरानी सम्पदाओं को जब्त भी किया, जो अपने पारम्परिक कर्तव्य नहीं निभा रहे थे।

शिवाजी ने पुर्तगालियों द्वारा उनके राज्य को निर्यात किये जा रहे नमक पर भारी शुल्क लगा कर कोंकण के नमक उद्योग को संरक्षण दिया। इससे मराठा राज्य में स्थित नमक व्यापारियों और नमक थालों (कड़ाहों) अर्थात नमक बनाने के बर्तनों को फलने फूलने में सहायता मिली। संतुलित नैसेना (नेवी) और किलों पर अपनी पकड़ के बल पर उनके राज्य में अवस्थित वाणिज्यिक केन्द्रों ने इस दौरान अच्छी प्रगति की। शिवाजी ने कल्याण और भिवन्डी में जहाज निर्माण (शिप बिल्डिंग) उद्योग लगाए। यहाँ जहाज के निर्माण में काम आने वाले इमारती वृक्ष बहुतायत में उगते थे।

3.6.5 कुशल सैन्य शक्ति का निर्माण

शिवाजी ने शक्तिशाली नौसेना का गठन किया। उनकी जलसेना में दो स्क्वाड्रन (दस्ते) थे और प्रत्येक दस्ते में 200 पोत थे। वह उन कुछेक राजाओं में से थे, जिन्होंने अपनी नौसेना बनाई थी। शिवाजी ने एक कुशल सैन्य शक्ति का भी निर्माण किया था। इसमें पैदल सेना, नियमित घुड़सवार सेना और छापामार हमलावर शामिल थे। एक हवलदार के अन्तर्गत पच्चीस सैनिक होते थे। इससे ऊपर के पद (रैंक) जुमलादार, हज़ारी, पाँच हज़ारी थे। इन अधिकारियों का प्रमुख सरनौबत कहलाता था, जो नियमित घुड़सवार सेना से होता था। शिवाजी की सेना में उनके अंगरक्षक सहित 2 लाख सैनिक थे। उनकी सेना चुस्त–दुरुस्त, फुर्तीली और बिना ज्यादा ताम–झाम के थी। उनकी सेना में 200 हाथी भी थे।

यह एक सुसंगठित सेना थी और सेना में धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होता था। बीजापुर की सेवाओं को त्याग कर 700 पठान शिवाजी की सेना में शामिल हो गए थे। सेना में वे लोग भी शामिल थे, जो अपने घोड़े और हाथी लेकर आते थे, इन्हें सिलाहदार कहा जाता था। शिवाजी के अधीन मराठा सेना में ऐसे 60,000 भाड़े के सैनिक थे।

3.6.6 धार्मिक सहिष्णुता और उदारनीति

शिवाजी की प्रमुख उपलब्धि यह थी कि उन्होंने सभी के प्रति अत्यंत उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनाई। मराठा साम्राज्य खड़ा करने में उनकी सफलता का श्रेय इसी नीति को जाता है। उनके राज्य में विद्वानों और प्रतिभाशाली व्यक्तियों का सम्मान किया जाता था। धार्मिक पुरोहित पण्डित राव को विद्वानों को आमंत्रित करने और उन्हें राज्य में बसाने का पूरा अधिकार दिया गया था। हालांकि शिवाजी आजीवन मुगलों और दक्कन (दक्षिण) के सुल्तानों के खिलाफ संघर्षरत रहे, लेकिन उन्होंने इस धर्म के लोगों के साथ भेदभाव नहीं किया। मुस्लिम सन्तों और हिन्दू सन्तों को अपने पूजा स्थलों और धर्म स्थलों के रख–रखाव के लिए अनुदान और भत्ते दिये जाते थे। उनके शासनकाल के दौरान मठों, मन्दिरों और मस्जिदों ने शिक्षा के केन्द्रों के रूप में अच्छी भूमिका निभाई। उनके प्रशासन के सभी पहलुओं में भी धर्मनिरपेक्षता को पूरी तरह अपनाया गया था।

3.7 सारांश

17वीं शताब्दी में दक्कन (दक्षिण) में मराठा एक शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में उभरे और उन्होंने दक्षिण के सुल्तानों और उत्तर में मुगलों को कड़ी चुनौती दी। उन्होंने मुगल सेना का प्रतिरोध करने के लिए न केवल एक सुगठित राज्य की स्थापना की, बल्कि दक्षिण के सामाजिक और आर्थिक जीवन में उल्लेखनीय सुधार भी किया। 16वीं शताब्दी में अनेक मराठा परिवार दक्षिण के पाँच राज्यों के दरबार में सेवारत थे। बहमनी राज्य के पतन के बाद अस्तित्व में आये ये पाँच राज्य परस्पर युद्धरत रहते थे। इन पाँच राज्यों में सबसे ज्यादा प्रमुख अहमदनगर का निज़ामशाही राजवंश और बीजापुर का आदिलशाही राजवंश था। दक्कन (दक्षिण) की राजनीति में, हालांकि अनेक मराठा परिवार शामिल थे, लेकिन इनमें से भोंसले परिवार एक सशक्त निकाय के रूप में उभरा। इसी परिवार में शिवाजी का जन्म हुआ था।

शिवाजी के पितामह मालोजी एक अन्य मराठा सरदार फाल्टन के जगपाल निम्बालकर की सेवा में थे। उसकी सिफारिश से मालोजी निज़ामशाही राजवंश के अहमदनगर राज्य की सेवा में शामिल हुए और अपनी जागीर में काफी वृद्धि की। उनके पुत्र शाह जी ने अपने पिता का पद सम्भाला और मलिक अम्बर के विश्वासपात्र बन गए। मलिक अम्बर अहमदनगर राज्य का प्रधानमंत्री था। यह वह समय था जब अनेक मराठा जिनमें शाह जी के श्वसुर लखूजी जाधव राव भी शामिल था, मुगलों में शामिल हो रहे थे।

मलिक अम्बर की मृत्यु के बाद निजामशाही का पतन हो रहा था, शाहजी आदिलशाही राजवंश के अधीन बीजापुर राज्य में चले गए और मुगलों से मनसबदार पद मिलने पर मुगलों की सेना में शामिल हो गए। लेकिन मुगलों के साथ उनका यह मेल–मिलाप ज्यादा नहीं चला। वे बीजापुर लौट आए और उन्होंने मुगलों का सामना करने के लिए कुलीनों को एकजुट करना शुरू किया। बाद में उन्हें कर्नाटक में तैनात कर दिया गया, जहाँ उन्होंने अपने शासन के दौरान आदिलशाही राज्य की सीमाओं का विस्तार किया और इस क्षेत्र को मजबूत प्रशासन दिया। सन् 1650 में आदिलशाह की मृत्यु के बाद वे कर्नाटक के असल शासक बन गए।

दक्षिण में युद्धों और प्राकृतिक आपदाओं की तबाही के दौरान उथल–पुथल भरे माहौल में सन् 1630 में शिवाजी का जन्म हुआ। शिवाजी का बाल्यकाल पिता के साथ नहीं बीता था। उन्हें उनकी माता ने व उनके पिता के विश्वासपात्र लोगों ने पाला था। शिवाजी अपनी माता तथा दादोजी कोन्डदेव और रामराव रांजेकर के संरक्षण और मार्गदर्शन में युवावस्था को प्राप्त हुए। उन्होंने आत्मनिर्भरता की भावना को आत्मसात किया और पूना में युद्ध कला और प्रशासन का प्रशिक्षण प्राप्त किया। उन्होंने अपने पिता से मिली जागीर का सन् 1640 से विस्तार करना और समेकन करना शुरू किया। उन्होंने युद्ध और कूटनीति के जरिये दुर्गों पर कब्जा कर के दक्षिण के बहुत बड़े भू–भाग पर अपना नियंत्रण कायम करना और वहाँ कुशल प्रशासन स्थापित करना शुरू किया। सन् 1674 में उनका राज्याभिषेक हुआ (गद्दी सम्भाली) और इसके बाद उन्होंने आठ मंत्रियों की एक परिषद बनाई, जिसे अष्ट प्रधान कहा गया। यह परिषद ही केन्द्रीय प्रशासन थी, जो मराठा राज्य के अन्तर्गत स्थापित प्रान्तीय (सूबाई) प्रशासनों से तालमेल व निगरानी का कार्य करती थी। शिवाजी ने कृषि विस्तार को बढ़ावा दिया। कृषि राज्य के राजस्व का प्रमुख स्रोत थी। शिवाजी ने दलालों की भूमिका समाप्त करने, भ्रष्टाचार पर नजर रखने, व्यापार और उद्योग को बढ़ावा देने, धार्मिक शिक्षण की सुविधायें देने और अपने राज्य में इसके प्रसार के लिए भी कदम उठाए।

शिवाजी 240 दुर्गों (किलों) को अपने नियंत्रण में लेने और यहाँ कुशल प्रशासन स्थापित करने में सफल रहे। उन्होंने ऐसी कुशल सैन्यशक्ति का निर्माण किया, जिसमें दिखावे और तामझाम के लिए कोई जगह नहीं थी। उन्होंने कुशल राजस्व प्रबंधन के जरिये चौथ और सरदेशमुखी की उगाही की और शासन के हर पहलू में उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनाई। वे एक ऐसे सशक्त मराठा साम्राज्य की नींव रखने में सफल रहे, जिसे न केवल मुगलों, बल्कि ब्रिटिश, डच, फ्रैन्च और पुर्तगाली जैसी विदेशी व्यापारी ताकतों ने भी सराहा।

3.8 तकनीकी शब्दावली

पाटिल : गाँव का मुखिया, जो खेती, राजस्व प्रबंधन और दक्कन (दक्षिण) के क्षेत्र में सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने का दायित्व निभाता है।

देशमुख : यह एक उपाधि (पद) है। यह पद उसे दिया जाता है, जिसे दक्कन (दक्षिण) में कोई भू–भाग आवंटित किया गया हो और राजस्व तथा मजिस्ट्रेट के अधिकार दिये गये हों।

मनसबदार : मुगल प्रशासन में किसी व्यक्ति को दिया जाने वाला एक पद जो एक निश्चित भू–भाग का प्रभारी होगा।

खिलअत : एक बड़े राजा द्वारा सम्मान में दी जाने वाली एक रेशमी पोशाक।

पाँच हजारी : मुगल प्रशासन की मनसबदारी व्यवस्था में सबसे बड़ा पद (रैंक)।

जागीरदार : यह एक पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाला पद है। इसकी शुरूआत सल्तनत काल से हुई थी। किसी राजाधिराज द्वारा किसी व्यक्ति को विरासतीय अधिकारों के साथ प्रदान की गई सामंती जमीन जायदाद।

कुलकर्णी : महाराष्ट्र क्षेत्र में प्रचलित एक उपनाम जो उन लोगों को दिया जाता है, जो बड़े सामन्ती परिवारों के रिकॉर्ड रखा हैं।

कथा : सामाजिक और धार्मिक प्रथा के एक भाग के रूप में आयोजित पौराणिक नाट्य मंचन और गाथाओं का गायन।

चौथ : दक्कन (दक्षिण) में एक प्रकार का वार्षिक कर। कुल राजस्व या उत्पाद के एक चौथाई के रूप में इसका आकलन किया जाता है। शिवाजी के शासन के दौरान इसे नियमित बना दिया गया था।

सरदेशमुखी : शिवाजी के शासन का संरक्षण प्राप्त करने वाले सभी सूबाई शासकों द्वारा मराठा शासक को दिया जाने वाला वार्षिक खिराज (शुल्क)। यह उनकी कुल राजस्व का 10 प्रतिशत था।

हवलदार : शिवाजी के प्रशासन में एक अधिकारी जो किले के संचालक का दायित्व निभाता था।

सरनौबत : शिवाजी के दरबार का सैनिक कमाण्डर, जो किलों के अनुरक्षण का भी प्रभारी था।
सबनिस : शिवाजी के शासन में किले के प्रशासन में लेखाकार (एकाउण्टेंट)।
खरकानिस : शिवाजी के प्रशासन के दौरान किले के लिए रसद का इंतजाम करने वाला अधिकारी।
सूबेदार : मुगल प्रशासन और शिवाजी के प्रशासन में सूबे का गवर्नर।
मजूमदार : शिवाजी के केन्द्रीय प्रशासन में लेखाकार (एकाउण्टेंट)।
महल : प्रशासन की राजस्व इकाई, जो सूबे से छोटी होती है।
परगना : प्रशासन की राजस्व इकाई, जो महल से छोटी होती है, गाँवों का एक समूह।
इस्तवा : आपदाओं के बाद लोगों को पुनः बसाने के लिए मराठा शासकों द्वारा दिया जाने वाला अनुदान, शिवाजी ने इसकी शुरूआत की थी।
वतन : शिवाजी प्रशासन द्वारा किसी जागीरदार को दी गई कृषि भूमि।
इनाम : एक ऐसी भू–काश्तकारी जिस पर राजस्व आकलन की दर कम कर दी गई हो या राजस्व समाप्त कर दिया गया हो।
मुकासा : एक अनुबंध व्यवस्था, जिसके तहत लेनदार के दावे को निरस्त कर दिया जाता है और इसकी भरपाई अन्य जरियों से की जाती है। यह व्यवस्था मुगल और मराठा प्रशासन में प्रचलित थी।
हजारी : शिवाजी की सेना में एक पद, जिसके अधीन 1000 सैनिक होते थे।
जुमलादार : शिवाजी की सेना में एक पद, जिसके अधीन 100 सैनिक होते थे।
हवलदार : शिवाजी की सेना में एक पद, जिसके अधीन 25 सैनिक होते थे।
सिलहदार : भाड़े के सैनिक, जो अपने साजो–सामान के साथ शिवाजी की सेना में लड़ते थे और बदले में युद्ध से प्राप्त लूट में अपना हिस्सा लेते थे।
मठ : भारत में अवस्थित समन्वयवादी और आध्यात्मवादी प्रतिष्ठान। इनमें आध्यात्मिक निष्ठा को सबसे ज्यादा महत्व दिया जाता था। शिवाजी के राज्य में और इसके आसपास ऐसे मठों की बहुतायत थी।

3.9 स्व–मूल्यांकन के प्रश्न और उत्तर

1. शिवाजी के जन्म के वर्ष दक्कन में कौन सी प्राकृतिक आपदा आई ?
   (क) अकाल (ख) भूकम्प (ग) बाढ़ (घ) सूखा
2. शिवाजी ने जब अपनी मुहर बनाई, वे कितने वर्ष के थे ?
   (क) 14 (ख) 16 (ग) 18 (घ) 20
3. शिवाजी ने प्रत्येक किले में कितने अधिकारी तैनात किये ?
   (क) 2 (ख) 1 (ग) 3 (घ) 4
4. शिवाजी की नौसेना में कितने पोत थे ?
   (क) 100 (ख) 130 (ग) 250 (घ) 400

3.10 संदर्भ सूची

1. ए.आर. कुलकर्णी, दी मराठाज, बुक्स एण्ड बुक्स, 1996।
2. टी.टी. महाजन, आस्पैक्ट्स ऑफ एग्रेरियन एण्ड अर्बन हिस्ट्री ऑफ दी मराठाज, कॉमन वैल्थ पब्लिशर्स, 1991।
3. राजाराम व्यंकटेश नादकर्णी, दी राइज एण्ड फॉल ऑफ दी मराठा अम्पायर, पॉपुलर प्रकाशन, 1966।

3.11 अनुशंसित साहित्य

1. जदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, लॉन्गमैन एण्ड ग्रीन, 1920।
2. स्टीवर्ट गॉर्डन, दी मराठाज़ 1600–1818, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस – 1993।

3.12 दीर्घ उत्तरित प्रश्न

1. शिवाजी द्वारा अपने शासनकाल में निष्पादित महत्वपूर्ण कार्यों का वर्णन करें।

ब्लॉक तीन

इकाई एकः मुगलों के विरूध्द विद्रोह

1.1 परिचय

1.2 उद्देश्य

1.3 मुगलों का अभ्युदय और भारतीय उपमहाद्वीप में उनका साम्राज्य

1.4 खानवा के युद्ध (1527 ई0) में बाबर के खिलाफ राणा सांगा

1.5 बाबर और हुमायूँ के खिलाफ अफगानों के अभियान

1.6 हुमायूँ के खिलाफ बहादुर शाह

1.7 हुमायूँ के खिलाफ शेरशाह (1532–1540 ई0)

1.8 अकबर के खिलाफ हेमू और अफगान

1.9 अकबर के खिलाफ मेवाड़ में महाराणा प्रताप

1.10 अकबर के खिलाफ बंगाल में दाउद खान और अन्य

1.11 औरंगजेब के खिलाफ सतनामियों का विद्रोह

1.12 औरंगजेब के खिलाफ हरगोविन्द और तेगबहादुर

1.13 जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के खिलाफ साहजी और शिवाजी

1.14 सार–संक्षेप

1.15 तकनीकी शब्दावली

1.16 संदर्भ सूची

1.17 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 परिचय

बाबर ने 1526 ई0 में पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोधी को पराजित करके दिल्ली और आगरा पर कब्जा कर लिया और इस प्रकार भारतीय उपमहाद्वीप में मुगल साम्राज्य की नींव रखी। 1857 ई0 में ब्रिटिशों द्वारा बहादुरशाह ज़फर को गिरफ्तार किये जाने तथा उसे निर्वासित कर रंगून की जेल में कैद रखे जाने के साथ ही लगभग 350 वर्षों तक चलने वाले इस मुगल शासन का अन्त हो गया। मुगल शासकों ने अनेक राज्यों को जीत कर और एक के बाद एक

अनेक विद्रोहों को कुचल कर मुगल साम्राज्य की स्थापना की। अकबर अपने पूर्ववर्ती शासकों के विजय अभियानों को सम्पन्न करके अधिकांश भारतीय उपमहाद्वीप पर मुगल साम्राज्य स्थापित करने और इसे स्थाई बनाने में सफल रहा, लेकिन इससे यह अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिये कि मुगल शासन से आजाद होने के प्रयासों के फलस्वरूप होने वाली बगावतों पर भी विराम लग गया था। मुगलों के खिलाफ बगावत के कारणों को मुख्यतया दो संदर्भों में खोजा जा सकता है। मुगलों द्वारा किसी क्षेत्र या शासक पर विजय के इरादे से आक्रमण करना पहला संदर्भ कहा जा सकता है। अवसर प्राप्त होते ही किसी क्षेत्र या शासक वंश द्वारा अपने मजबूत गढ़ से मुगल प्रभाव और मुगल शासन को उखाड़ फेंकने का प्रयास करना दूसरा संदर्भ कहा जा सकता है। इस अध्याय में मुगल शासकों के घराने में गद्दी हथियाने के लिए हुए युद्धों, जैसे कि जहाँगीर, औरंगजेब और बहादुर शाह आलम के युद्धों को शामिल नहीं किया गया है।

1.2 उद्देश्य

इस यूनिट का उद्देश्य आपको उन सभी संदर्भों या परिस्थितियों से परिचित कराना है, जो मुगलों के खिलाफ विद्रोह से जुड़ी हैं और साथ ही मुगलों के खिलाफ विद्रोह करने वाली सभी शक्तियों के बारे में एक व्यापक समझ पैदा करना है। प्रथम मुगल शासक बाबर के भारत आगमन के समय यहाँ की राजनीतिक परिस्थितियों और बाद में भारतीय उपमहाद्वीप में उसके और उसके उत्तराधिकारियों के विजय अभियानों तथा के संक्षिप्त विवरण के साथ यह अध्याय अपनी यात्रा शुरू करता है। इस यात्रा वृत्तान्त में आगे चल कर उन सभी परिस्थितियों और घटनाओं को भी समेटा गया है, जो अलग–अलग मुगल शासकों के खिलाफ सत्ता के दावेदारों द्वारा किये गये विद्रोहों का कारण बनी थीं।

1.3 मुगलों का अभ्युदय और भारतीय उपमहाद्वीप में उनका साम्राज्य

बाबर ने 1504 ई0 में काबुल पर कब्जा कर लिया था, तभी से वह भारत को जीतने की योजना बना रहा था। बाबर ने 1525 ई0 में लोधी को हरा कर पंजाब को हथिया लिया। अगले ही वर्ष इब्राहीम लोधी से अन्तिम संघर्ष के लिए उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और पानीपत में घनघोर युद्ध के बाद उसने दिल्ली और आगरा पर कब्जा कर लिया। बाबर की यह जीत भारत में मुगलों के आगमन की सूचक थी, जो आगे चल कर लगभग सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में मुगल साम्राज्य की स्थापना की गवाह बनी। 1526 ई0 से लेकर अकबर के शासनकाल तक मुगल शासन को अनेक उतार–चढ़ावों का सामना करना पड़ा और इसके बाद मुगल साम्राज्य में एक अपेक्षाकृत व्यवस्थित प्रशासन प्रणाली कायम हुई और साथ ही कुलीनों, विभिन्न राज्यों तथा जन साधारण में इस साम्राज्य को राजनीतिक वैधता हासिल हुई। मुगल साम्राज्य के सम्पूर्ण शासन के दौरान इस उपमहाद्वीप के अन्य शासकों के साथ इस साम्राज्य के रिश्तों को युद्धों ने तय किया और जहाँ युद्ध से कामयाबी नहीं मिली, वहाँ राजनयिक समझौतों का सहारा लिया गया। मुगल साम्राज्य, विशेषकर अकबर के समय से, इस देश के शासकों के साथ युद्ध में रत रहा, लेकिन इन युद्धों का उद्देश्य इन शासकों का पूरी तरह से विनाश करना या उन्हें समाप्त करना नहीं था, बल्कि उन्हें मुगल सत्ता की अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर करना और उनके साथ करद राज्य के रिश्ते कायम करना था, ताकि मुगल साम्राज्य के लिए राजस्व जुटाया जा सके।

अनेक स्वाभिमानी शासकों ने मुगलों की अधीनता का प्रतिरोध किया और बगावत की, वहीं दूसरी तरफ कई शासकों ने मुगलों की अधीनता सहर्ष स्वीकार कर ली। अधीनता स्वीकार करने वाले राजाओं को मुगलों की मनसबदारी व्यवस्था में ऊँचे–ऊँचे पद दिये गये और इन शासकों ने देशी राजाओं के खिलाफ मुगल साम्राज्य की तरफ से युद्ध में भाग लिया। अनेक शासक, सेनापति और भाड़े के सिपाही ऐसे भी थे, जो युद्ध की परिस्थितियों का फायदा उठाने के लिए देशी राजाओं के साथ मिल जाते थे, तो कभी मुगल साम्राज्य का साथ देते थे। अतः मुगलों के खिलाफ प्रतिरोध, बाबर से लेकर औरंगजेब के समय तक निरन्तर बना रहा और धर्म कभी भी इस प्रतिरोध का आधार नहीं बन सका। मुगल साम्राज्य के प्रत्येक चरण में विद्रोह और समझौते का रास्ता मुगल दरबार और देशी शासकों के दरबार में होने वाली राजनीति ने ही निर्धारित किया।

1.4 खानवा के युद्ध (1527 ई0) में बाबर के खिलाफ राणा सांगा

प्रारम्भ में जब बाबर भारतीय उपमहाद्वीप की ओर रुख कर रहा था, राणा सांगा मालवा और पूर्वी राजस्थान पर अपना नियंत्रण कायम करने के लिए दिल्ली के लोधी वंश के साथ संघर्षरत था। इसी समय बाबर की भी नज़र दिल्ली पर थी और दौलत खान लोधी बाबर पर इब्राहीम लोधी के खिलाफ युद्ध अभियान चलाने के लिए जोर दे रहा था। उस समय राणा सांगा ने भी बाबर को ऐसा ही न्यौता दिया था।

शायद राणा सांगा को उम्मीद थी कि बाबर का भारत की ओर प्रस्थान, इब्राहीम लोधी को विचलित कर देगा और वह इस अवसर का फायदा उठा कर पूर्वी राजस्थान और मालवा को अपने नियंत्रण में ले लेगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ और बाबर ने आनन–फानन में पंजाब को अपने कब्जे में लेकर इब्राहीम लोधी को हराकर दिल्ली और आगरा की ओर कूच कर दिया। बाबर से पहले भारत आने वाले विदेशी हमलावर लूट–पाट के बाद वापस लौट जाते थे, लेकिन बाबर ने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने की ठान ली, जबकि राणा सांगा जब बाबर लोधी के खिलाफ दिल्ली के लिए कूच कर रहा था, तब आगरा पर आक्रमण में उसने अपना कोई सहयोग नहीं दिया और बाबर ने इसे ध्यान में रखा। यह सुनिश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता कि राणा सांगा पानीपत के युद्ध से अथवा उसके बाद कब अलग रहे।

आगरा और दिल्ली को जीतने के बाद बाबर को अपनी भावी योजना से अपने कुलीनों को आश्वस्त करने तथा अपना शासन स्थापित करने के लिए राजपूतों और अफगानों से निपटने की योजना बनाने में कुछ समय लगा। इस बीच राणा सांगा ने रणथम्भौर के समीप कुन्धार के किले पर कब्जा कर लिया और बाबर के खिलाफ सैन्य संगठन खड़ा करना शुरू कर दिया। राणा सांगा ने 1527 ई0 की शुरूआत तक अपनी तैयारी पूरी करके अपने नेतृत्व में एक विशाल सेना के साथ आगरा की ओर कूच कर दिया।

इस घटनाक्रम की जानकारी मिलते ही बाबर ने हुमायूँ को आगरा बुला लिया और राणा सांगा के साथ युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। बाबर ने अपने मुस्लिम सेनापतियों से वायदा किया कि वह राणा सांगा के प्रस्थान मार्ग पर पड़ने वाले तीन महत्वपूर्ण किलों को उन्हें सौंप देगा। ये किले थे – धौलपुर, ग्वालियर और बयाना। बयाना का सेनापति नाज़िम खान इस अवसर का फायदा उठाने के लिए दोनों पक्षों से सौदेबाजी करता रहा। बाबर ने राणा सांगा की आगे बढ़ती सेना को रोकने के लिए सेना का एक अग्रिम दस्ता बयाना भेज दिया। इस दस्ते

को बुरी तरह हार का सामना करना पड़ा। इस पहली विजय ने राणा सांगा का पलड़ा भारी कर दिया और यह हार बाबर की सेना के लिए एक बड़ा आघात थी।

राणा सांगा ने राजपूतों के विख्यात शासक घरानों, जिनमें हाड़ौती, जालौर, सिरोही, डूंगरपूर, धुन्धार, आम्बार शामिल थे, के साथ गठबंधन कर सैन्य बल तैयार किया। मेवाड़ के राव गंगा ने अपनी सेना भेजी। मालवा में चन्देरी के राजा मेदिनी राव भी इस सैन्य बल में शामिल हुए। सिकन्दर लोधी का छोटा पुत्र महमूद लोधी , जिसे अफगानों ने अपना सुल्तान घोषित कर दिया था, भी इस गठबंधन में शामिल हुआ। मेवात के एक अफगानी हसन खान मेवाती भी अपने 12,000 सैनिकों के साथ इस सेना में शमिल हुआ। इस संयुक्त सेना में सभी धर्मों के सैनिक थे। उनका बस एक ही उद्देश्य था कि किसी अन्य विदेशी को भारत में पैर नहीं जमाने देंगे। जो भी इस साझा उद्देश्य से सहमत थे, इस संयुक्त अभियान में शमिल हुए।

लेकिन बाबर ने अपनी सेना के मनोबल को बढ़ाने के लिए धर्म का सहारा लिया। उसने इस युद्ध को जिहाद का नाम देते हुए अपनी शराब की सुराही तोड़ दी और कभी भी शराब न पीने की घोषणा की। मुस्लिमों में मदिरापान को बुराई माना जाता है। उसने मुस्लिमों से वसूला जाने वाला कर, ''तमगा'' भी माफ करने का वायदा किया। उसने यह भी वायदा किया कि इस युद्ध के बाद काबुल लौटने के इच्छुक सरदार वापस जा सकेंगे।

बाबर अपनी इस घोषणा और वायदे के द्वारा अपने सैनिकों का मनोबल बढ़ाने में सफल रहा। बाबर अभी तक युद्धों के दौरान पार्श्विक (बगली) रणनीति का उपयोग करता आ रहा था। इस युद्ध में भी उसने इसी युद्ध कला को अपनाया।

उसने अपनी सेना की पहली पंक्ति में तोपों से लैस छकड़ों (कार्ट) को श्रृंखलाबद्ध तरीके से तैनात किया। इन छकड़ों के बीच खाली जगह में घुड़सवार सैनिक तैनात किये गये। ये सैनिक फुर्ती से अपनी जगह बदल कर आक्रमण करने में माहिर थे। इन छकड़ों पर तिपाइयों पर तोपची बैठाए गए थे जो तोपों को पलीता दिखाने का काम करते थे। आगे बढ़ती फौज के इस अग्रभाग के दोनों बाजुओं को खाइयाँ खोद कर सुरक्षित बनाया गया था। दुश्मन पर दायीं तथा बाईं ओर से तथा पीछे से हमला करने के लिए अलग से दस्ते रखे गए थे। दोनों सेनाओं का आगरा के समीप खानवा में आमना–सामना हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि राणा सांगा इस युद्ध रचना को कारगर नहीं समझते थे। उन्होंने अपने हाथियों और तलवारबाज सैनिकों के साथ बाबर की सेना के दाहिने भाग पर धावा बोला। बाबर ने तत्काल कमुक भेज कर इस धावे को विफल कर दिया। राणा के धावे पर रोक लगते ही बाबर की सचल फौज ने मोर्चा सम्भाला और राणा की सेना के पाँव उखड़ गए। अत्यन्त बहादुरी से मुकाबला करने के बावजूद राणा सांगा की पराजय हुई। राणा सांगा हार कर चित्तौड़ लौट गये और उनका सैन्य संगठन ध्वस्त हो गया। बाबर ने पानी की कमी और गर्मी के कारण राणा सांगा का पीछा नहीं किया। बाबर मेवात की ओर बढ़ा और वहाँ हसन खान मेवाती की राजधानी तिजारा तथा अलवर को छीन लिया, लेकिन इसके बदले लाखों की कीमत वाले कई समृद्ध परगने उसके पुत्र नाहर खान को प्रदान कर दिये।

खानवा के युद्ध में इस जीत के साथ दोआबा क्षेत्र में बाबर की स्थिति मजबूत हो गई। अब वह राणा सांगा को उसके सैन्य गठबन्धन से अलग–थलग करने की कोशिशें करने लगा, लेकिन सफलता नहीं मिली। राणा ने बाबर से एक और युद्ध की तैयारी शुरू कर दी थी, लेकिन 30 जनवरी, 1528 को उसकी मृत्यु हो गई।

1.5 बाबर और हुमायूँ के खिलाफ अफगानों का अभियान

पानीपत और खानवा के युद्ध में अफगानों की पराजय के बावजूद उन्होंने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। भारत में अनेक जगहों पर इनकी बसासत थी। इन्होंने भारत में मुस्लिमों को एकजुट करके एक बड़ा संगठन तैयार कर लिया था। वर्तमान उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग और बिहार इनके मजबूत गढ़ थे। इन्होंने अनेक हिन्दू राजाओं से गठजोड़ कर रखे थे और इन क्षेत्रों में इन्हें व्यापक समर्थन प्राप्त था। इन किलों पर कब्जा किये बिना कोई भी शासक भारतीय उपमहाद्वीप में सफल नहीं हो सकता था।

बाबर इसे भलीभांति समझ चुका था, इसलिए उसने अफगानों के प्रति बल प्रयोग और सुलह की नीति अपनाई। वह पहले अपने सैन्य बल से उनको उनके किलों से खदेड़ देता था और बाद में उन्हें कहीं और ''इक्ता'' या जागीर दे कर उनसे सौदेबाजी करता था। बाबर अपनी इस नीति के जरिए इब्राहीम लोधी के कुछ प्रमुख सरदारों, जैसे कि अवध के शेख बयाज़िद को अपनी तरफ मिलाने में सफल रहा। कुछ ऐसे भी सरदार थे, जिन्होंने पहले तो बाबर की अधीनता स्वीकार कर ली, लेकिन बाद में उसके खिलाफ हो गए, जैसे कि पूर्वी उत्तर प्रदेश का विबन।

लेकिन इनमें से अनेक सरदार बाद में विद्रोही अफगानों के पक्ष में चले गए, इसके बदले उन्हें बड़े–बड़े परगने दिए गए थे। इसलिए बाबर अफगानों पर पूरी तरह से भरोसा नहीं करता था। इस मामले में, अहमद खान नियाज़ी मुगलों से नफरत होने के बावजूद बाबर के साथ जुड़ा रहा। इसके अलावा पूर्वी उत्तर प्रदेश में जौनपुर के आसपास बसे अफगान सरदार भी थे। इन्होंने लोधी शासन के खिलाफ भी विद्रोह किया था। पानीपत के बाद इन अफगानों ने गुजरात के शहजादे बहादुर शाह को जौनपुर का शासक नियुक्त कर दिया था।

बाबर खुद को लोधी के उत्तराधिकारी के रूप में देख रहा था और लोधी सल्तनत के कब्जे वाले किसी भी भू–भाग को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। 1526 ई0 के आसपास हुमायूँ के नेतृत्व में भेजी गई सेना ने जौनपुर पर फिर कब्जा कर लिया, लेकिन इसके बाद मुगल सेना राणा सांगा के प्रतिरोध को दबाने के लिए भेज दी गई।

इस बीच सिकन्दर लोधी का छोटा पुत्र महमूद लोधी बिहार पहुँच गया और वहाँ बिबन तथा शेख बयाजिद समेत सभी अफगानों ने उसे अपना सुल्तान स्वीकार कर लिया। इन सब घटनाओं के दौरान बंगाल के तत्कालीन शासक नुसरत शाह ने, जो उत्तर प्रदेश और बिहार को दिल्ली के शासकों के खिलाफ ढाल की तरह रखना चाहता था, अफगानों के साथ मैत्रीपूर्ण रिश्ते बनाए रखे। बाबर अभी भी मालवा में ही था। उसने कन्नौज का रूख किया। बाबर के घाघरा नदी पार करते ही विद्रोही भाग खड़े हुए। अस्करी को वहाँ का प्रभार सौंप कर बाबर आगरा लौट आया। अफगानों को भागते देख बंगाल के शासक ने मुगलों को भरोसा दिलाया कि वह विद्रोहियों की कोई मदद नहीं करेगा और तटस्थ बना रहेगा, लेकिन अफगानों की दुरभिसंधि जारी रही और वे अपने खोये हुए भू–भागों पर काबिज होते रहे। बाबर ने 1528 ई0 में सभी विद्रोहों के दमन का फैसला लिया और प्रयाग तथा बनारस होते हुए चुनार और बक्सर के किले तक पहुँच गया। एक बार फिर घाघरा नदी के तट पर पहुँचने पर उसने नदी के उस पार उसके खिलाफ बंगाल और अफगानों की संयुक्त सेना को तैनात पाया।

नुसरत शाह ने नावों दस्तों के साथ एक मजबूत सैन्य दीवार खड़ी की थी। इसके बावजूद बाबर ने नदी के ऊपरी छोर से घाघरा को पार किया, उसके साथ अस्करी की अगुवाई में 20,000 सैनिक भी थे। बाबर की सेना ने बंगाली और अफगानी सेना के संयुक्त मोर्चे पर

दो–तरफा हमला किया। घाघरा के तट पर 5 मई, 1929 को बाबर की सेना को इस युद्ध में निर्णायक जीत मिली। बिहार के सभी अफगानों ने बाबर के समक्ष समर्पण कर दिया और इसके बदले बाबर ने उन्हें विशाल परगने प्रदान किये। बिबन और बयाजिद लखनऊ की ओर निकल गए। बाबर की सेना द्वारा खदेड़े जाने पर वहाँ से कालिंजर की ओर भाग खड़े हुए। बाबर ने बंगाल के नुसरत शाह से सुलह कर ली, लेकिन बाबर यह भी जानता था कि यह केवल अस्थाई व्यवस्था है और अफगानों ने अभी भी उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की है।

बिबन और बयाज़िद हालांकि पराजित हो गये थे, लेकिन जल्दी ही उन्होंने जौनपुर पर फिर कब्जा कर लिया। बाबर की मृत्यु के बाद हुमायूँ ने घाघरा नदी को पार कर के गोमती के तट पर अफगानों का मुकाबला किया और उन्हें करारी शिकस्त दी। बयाज़िद मारा गया और 1531 ई0 में अफगान विद्रोह छिन्न भिन्न हो गया।

1.6 हुमायूँ के खिलाफ बहादुर शाह

बहादुर शाह ने 1526 ई0 में मालवा की गद्दी सम्भाली। वह हुमायूँ का हमउम्र था। गद्दी के लिए हुए युद्ध में अपने छः भाइयों में से पाँच भाइयों को मौत के घाट उतार कर उसने गद्दी हासिल की थी। जीवित बचा एक भाई राजपूतों की शरण में चला गया था। इससे उसे राजपूतों के अधीनस्थ मालवा तथा अहमदनगर पर आक्रमण करने का बहाना मिल गया। मालवा क्षेत्र, जिस पर राजपूतों और दिल्ली के मुगलों की ललचाई नजर थी, के लिए बहादुर शाह एक प्रबल दावेदार के रूप में उभर रहा था। हुमायूँ की खिलाफत करने वाले अनेक अफगान सरदार और तिमुरिद शहजादे उसके दरबार में शामिल हो गए थे। इन सभी ने मिल कर उसे हुमायूँ के खिलाफ युद्ध के लिए उकसाने का प्रयास किया। धीरे–धीरे बहादुर शाह की महत्वाकांक्षाएँ बढ़ने लगीं और वह मुगल फौज के खिलाफ बगावत का नेतृत्व करने के लिए राजी हो गया। अमीर मुस्तफा और ख्वाजा सफर, दोनों ही तुर्क और माहिर तोपची थे। इनकी सेवाएँ मिल जाने से बहादुर शाह का हौसला और भी बढ़ गया। बाबर के तोपखाने और रणनीति में इन तुर्कों को विशेषज्ञता हासिल थी। बहादुर शाह ने 1532 ई0 में चित्तौड़ पर घेरा डाल दिया। उसका यह कदम हुमायूँ को भड़काने के लिए पर्याप्त था।

इसके जवाब में हुमायूँ ने 1533 ई0 में ग्वालियर को कूच किया। यह देख कर उसने चित्तौड़ के राणा से तुरन्त सुलहनामा कर लिया, जो कि एक दिखावा मात्र था, क्योंकि इस सुलहनामे के द्वारा उसने राणा से भारी भरकम खजाना वसूला था और पूर्वी मालवा का एक भाग हासिल कर लिया था। हुमायूँ तब तक लौट आया था और कुछ समय के लिए अपनी राजधानी ''दीन पंथ'' के निर्माण में व्यस्त हो गया था। इस दौरान हुमायूँ के साथ बहादुर शाह के रिश्ते मैत्रीपूर्ण रहे, लेकिन यह सब ज्यादा दिन नहीं चला। बहादुर शाह ने 1534 ई0 में चित्तौड़ पर फिर चढ़ाई कर दी और हुमायूँ के खिलाफ उसके शासन के प्रारम्भ से ही षड़यंत्र रचने वाले मुहम्मद जमां मिर्जा के साथ गठजोड़ का प्रयास किया। हुमायूँ ने तुरन्त मिर्जा के खिलाफ अभियान चला कर उसे परास्त कर दिया और उसे गिरफ्तार करके बयाना भेज दिया। मिर्जा बयाना से बचकर भाग निकला और बहादुर शाह से जा मिला।

इसके प्रत्युत्तर में बहादुर शाह ने एक अफगानी तातार खान तथा भाड़े के सैनिकों के साथ गठजोड़ कर मुगल फौजों पर कालंजर, आगरा और बयाना में तीन तरफ से आक्रमण किया। अस्करी और हिन्दाल के नेतृत्व में मुगल फौजों ने तातार खान को मार दिया। हुमायूँ ने

फैसला किया कि वह गुजरात तक बहादुर शाह का पीछा नहीं छोड़ेगा और रास्ते में आने वाले हर क्षेत्र को जीत लेगा।

हुमायूँ चित्तौड़ जाने के बजाय आगरा से उज्जैन की ओर रवाना हुआ। चित्तौड़ पर बहादुर शाह ने घेरा डाल रखा था। राजपूतों के संयुक्त प्रतिरोध ने बहादुर शाह को लम्बे समय तक उलझाए रखा। अन्ततः बहादुर शाह की सेना का मुगलों से मन्दसौर में आमना–सामना हुआ। शाह की अति आत्मविश्वासी सेना ने वही सुरक्षा–व्यूह अपनाया, जो बाबर ने पानीपत के संग्राम में उपयोग किया था। हुमायूँ की सेना ने शाह की रणनीति को समझ लिया था। उसने शाह की सेना के रसद मार्गों को काट दिया और लगभग एक सप्ताह में शाह के सैनिक बीमार होने लगे तथा घोड़े मरने लगे।

बहादुर शाह अपने तोपचियों को युद्ध का जिम्मा सौंप कर पीछे हट गया और मान्डू चला गया। हुमायूँ की सेना ने शिविर पर कब्जा कर लिया और शाह के सैनिकों को तितर–बितर कर दिया। हुमायूँ को शिविर में विशाल खजाना हाथ लगा। हुमायूँ ने माण्डू तक शाह का पीछा किया और अनेक अफगान सरदारों तथा माहिर तोपची मुस्तफा को अपनी तरफ मिलाने में सफल रहा। बहादुर शाह ने चित्तौड़ और गुजरात के बारे में सौदेबाजी की, लेकिन सफलता नहीं मिली। बहादुर शाह को माण्डू छोड़ कर चम्पानेर भागना पड़ा। हुमायूँ ने बहादुर शाह का पीछा करने से पहले तीन दिन तक माण्डू में तबाही मचाई। इस प्रकार हुमायूँ ने अगस्त, 1535 में चम्पानेर का किला जीत लिया और दक्षिण गुजरात पर विजय हासिल की। बारिश का मौसम समाप्त होने के बाद मुगल सेनाएं उत्तरी गुजरात की ओर बढ़ी, जहाँ बाहदुर शाह के गुलाम इमाद–उल–मुल्क ने 30,000 सेना के साथ महमूदाबाद में मुगलों का मुकाबला किया। मुगलों ने अक्टूबर, 1535 तक इस सेना को पूरी तरह परास्त कर दिया।

गुजरात को जीत तो लिया गया था, लेकिन हुमायूँ का कोई भी सरदार यहाँ का प्रशासक नहीं बनना चाहता था। अतः हुमायूँ ने गुजरात और उत्तरी भारत पर नजर रखने के लिए माण्डू में खुद ही गद्दी सम्भाली और गुजरात के प्रशासक के तौर पर अस्करी को तैनात किया। अस्करी एक मजबूत प्रशासन देने में कामयाब नहीं हुआ और इससे सूरत में बहादुर शाह को फिर एक बार सिर उठाने का मौका मिला। उसने कैम्बे और भड़ौच को फिर अपने कब्जे में ले लिया, लेकिन पुर्तगालियों के साथ एक लड़ाई में मारा गया। इसके बाद हुमायूँ गुजरात को अपने काबू में रखने पर ज्यादा ध्यान नहीं दे सका तथा अस्करी और अन्य मुगल सरदार भी गुजरात तथा माण्डू क्षेत्र से पीछे हट गए और पूरा क्षेत्र फिर से स्थानीय क्षत्रपों के कब्जे में आ गया। इस प्रकार हुमायूँ ने बहादुर शाह के नेतृत्व में हुए इस शक्तिशाली विद्रोह को कुचल तो दिया, लेकिन इस प्रक्रिया में वह जीते हुए क्षेत्रों पर अपनी पकड़ मजबूत नहीं कर सका। इसके अलावा बिहार में अफगान सरदार शेर खान के नेतृत्व में भड़क रहे विद्रोह पर भी उसे अपना पूरा ध्यान केन्द्रित करना था।

1.7 हुमायूँ के खिलाफ शेरशाह सूरी

हुमायूँ ने शेर खान से खतरे को भांप लिया था। शेर खान बिहार में एक अफगान सरदार था। हुमायूँ ने इस खतरे को दूर करने के लिए बंगाल की तरफ कूच करने का इरादा बनाया, लेकिन इस बीच उसे बहादुर शाह के विद्रोह से निपटने के लिए लौटना पड़ा और गुजरात के खिलाफ सैन्य अभियान चलाना पड़ा। शेर खान एक शक्तिशाली सरदार के रूप में अपनी पहचान बना चुका था और उसकी अपनी महत्वाकांक्षायें थीं। हुमायूँ को शेर खान का पीछा

करने और बंगाल को जीतने का कारण मिल गया था। बारिश का मौसम था। हुमायूँ जुलाई, 1537 ई0 में बंगाल की ओर बढ़ा और अफगानों के मजबूत गढ़ चुनार तक पहुँच गया। बनारस में कुछ समय बिताने के बाद उसने चुनार के किले की नाकेबंदी कर दी और एक लम्बे इन्तजार के बाद अन्ततः जून, 1538 ई0 को चुनार के किले पर उसका कब्जा हो गया। इस बीच शेर खान और आगे पूर्व की ओर बढ़ चुका था और वहाँ उसने गौर पर कब्जा कर लिया। शेर खान न केवल मुगलों को भारत से बाहर खदेड़ना चाहता था, बल्कि बंगाल पर भी कब्जा करना चाहता था, क्योंकि यहाँ का शासक निरन्तर बिहार पर आक्रमण करता रहता था।

हुमायूँ ने शेर खान के समक्ष समर्पण की शर्त रखी। इस शर्त के अनुसार हुमायूँ चुनार की जागीर और जौनपुर शेर खान को देने को तैयार था। बदले में शेर खान को बंगाल छोड़ना था। लेकिन शेर खान बंगाल छोड़ने को तैयार नहीं था, क्योंकि उसने बंगाल को अपने पराक्रम से जीता था। शेर खान ने बिहार को हुमायूँ को सौंपने और बंगाल पर उसके कब्जे को स्वीकार करने के बदले दस लाख रूपये सालाना कर हुमायूँ को देने की शर्त रखी। हुमायूँ शायद इस शर्त को स्वीकार कर लेता, लेकिन बंगाल के पराजित शासक महमूद शाह ने हुमायूँ से सम्पर्क कर उससे अनुरोध किया कि वह अपना बंगाल अभियान जारी रखे और बंगाल में शेर खान के खिलाफ प्रतिरोध में सहयोग करे। इस प्रकार बंगाल लड़ाई की जड़ बन गया।

हुमायूँ सींकरी गल्ली में प्रतिरोध का सामना करने के बाद गौर पहुँच गया, लेकिन उसे समझ नहीं आ रहा था कि इस अभियान के दौरान जीते गए भू–भाग का क्या किया जाय। उसने अपनी अधीनता में इस भू–भाग पर एक नया शासक नियुक्त करने की कोशिश की, लेकिन इस जिम्मेदारी को सम्भालने के लिए कोई योग्य और इच्छुक सरदार उसे नहीं मिला। इस बीच उसके भाई हिन्दाल ने उसके खिलाफ बगावत कर दी। मजबूरन उसे आगरा वापस लौटना पड़ा। हुमायूँ के बंगाल कूच के दौरान शेर खान ने मौका पाकर बनारस पर कब्जा कर लिया था, चुनार और जौनपुर की नाकेबंदी कर दी थी और कन्नौज तथा सम्भल तक मुगलों के कब्जे को तहस–नहस कर दिया था।

हुमायूँ की बंगाल से वापसी मुसीबतों से भरी थी। हिन्दाल की बगावत उसे आगरा लौटने को मजबूर कर रही थी। आगरा वापसी के दौरान जगह–जगह अफगानों के हमले जारी थे। वह अपनी सेना के साथ बड़ी मुश्किल से चौसा पहुँचा। यह स्थान बिहार और वर्तमान उत्तर प्रदेश की सीमा पर स्थित है। हुमायूँ को मुगलों की श्रेष्ठता पर अटूट विश्वास था। इन सभी मुसीबतों और सरदारों तथा सेना के बीच अव्यवस्था के बावजूद उसे भरोसा था कि जीत उसी की होगी। इसीलिए उसने शेर खान के साथ शान्ति वार्ता के बजाय चौसा में मुकाबला करने का फैसला लिया। इस युद्ध में हुमायूँ की रणनीति भी खामियों भरी रही और 26 जून, 1539 को उसे बुरी तरह पराजय का सामना करना पड़ा। हुमायूँ भाग कर आगरा की ओर कूंच कर गया, जहाँ उसके भाई कामरान ने उसे सहयोग देने या अपनी सैन्य टुकड़ियाँ सौपने से इन्कार कर दिया और खुद कुछ समय बाद लाहौर चला गया। हुमायूँ का शेर खान के साथ दूसरा युद्ध कन्नौज में हुआ। हुमायूँ की सेना बुरी तरह असंगठित थी और 17 मई, 1940 को उसे दुबारा बुरी तरह शिकस्त मिली। यह ऐसा पहला विद्रोह था, जिसने मुगलों को लगभग 15 वर्ष के लिए भारतीय उपमहाद्वीप से बाहर खदेड दिया था। शेर खान ने पंजाब को जीत कर हुमायूँ के भाई कामरान को भी भारत से बाहर कर दिया।

हुमायूँ आगरा पर दुबारा कब्जा करने के लिए भारत के उत्तर–पश्चिम में स्थित विभिन्न राज्यों से मदद की तालाश में दो वर्ष तक भटकता रहा। अन्ततः उसे ईरान के शाह तहमास्प ने शरण दी और उसकी मदद से उसने कन्धार और काबुल पर कब्जा कर लिया। आखिरकार

1555 ई0 में वह फिर से आगरा पर कब्जा करने मे सफल रहा और शेर खान द्वारा खड़ा किया गया साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया।

1.8 अकबर के खिलाफ हेमू और अफगान

हालांकि हुमायूँ दिल्ली पर काबिज हो गया था, लेकिन अफगानों ने दिल्ली से आजाद रहने की अपनी महत्वाकांक्षा को त्यागा नहीं था। 1556 ई0 में हुमायूँ की मृत्यु के बाद तो उनके हौंसले और बुलन्द हो गए थे। शेरशाह सूरी की विरासत पर दावा करने वाले अदाली का बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश पर वर्चस्व कायम था। उसकी राजधानी चुनार थी। बंगाल मुहम्मद खान सूर के अधीन था। हुमायूँ की मौत की खबर सुनकर जलाल खान सूर के पुत्र के नेतृत्व में संगठिन 50,000 अफगानों ने मुगलों को बयान, सम्भल, काल्पी, नारनौल और आगरा से खदेड़ना शुरू कर दिया।

वही दूसरी तरफ अदाली के सेनापति हेमू ने 50,000 घुडसवारों, 1000 हाथियों, 51 तोपों और 500 छोटे बाजों के साथ दिल्ली की ओर कूच कर दिया।

एक सम्प्रभु शासक की महत्वाकांक्षा रखने वाला हेमू अलवर के छोटे से कस्बे देउली साचारी के एक साधारण से बक्काल (बनिया) से सेनापति के ओहदे पर पहुँचा था। तरड़ी बेग को युद्ध में हराने के बाद उसने विक्रमजीत की उपाधि धारण कर ली थी, लेकिन उसकी सेना में ज्यादातर अफगान थे। पानीपत का दूसरा युद्ध 1556 ई0 में हुआ। हेमू का मुकाबला अकबर के संरक्षक बैरम खाँ से हुआ। हेमू ने मुगलों के दायें और बायें बाजू पर जबर्दस्त आक्रमण करके उन्हें हतप्रभ कर दिया और अपने हाथी पर सवार वह सेना के मध्यभाग की ओर बढ़ा, लेकिन इस दौरान आँख में तीर लगने से वह बेहोश हो गया।

हेमू को हाथी पर न देख कर उसकी सेना भयभीत होकर तितर–बितर हो गई। हेमू को गिरफ्तार कर बैरम खाँ के समक्ष लाया गया, जिसने उसे मौत के घाट उतार दिया। अकबर इस हत्या के लिए तैयार नहीं था, लेकिन बैरम खाँ ने उसे समझाया कि वह केवल अपनी तलवार से उसकी गर्दन को छू दे, शेष काम वह कर देगा। इस युद्ध से मुगलों के हाथ विशाल खजाना लगा। हेमू के घर पर आक्रमण कर के उसके पिता की भी हत्या कर दी गई। इस पराजय के बाद भी अफगानों से खतरा समाप्त नहीं हुआ। छह महीने के घेरे के बाद सिकन्दर सूर ने मनकोट में मुगलों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। इसके बाद अफगान फिर से संगठित हुए और उन्होंने सम्भल पर आक्रमण कर दिया। बैरम खाँ की मृत्यु के बाद अकबर ने स्वतंत्र रूप से गद्दी सम्भाली। अफगानों ने अदाली के पुत्र शेर खान को अपना शासक नियुक्त कर 20,000 घुडसवारों 50,000 पैदल सैनिकों और 500 हाथियों की फौज के साथ जौनपुर की ओर कूच कर दिया।

1564 ई0 में अफगानों ने जौनपुर पर फिर आक्रमण किया, लेकिन अलीकुली जमां खान ने स्थानीय जागीरदारों की मदद से इनके सभी प्रयासों को विफल कर दिया। अली कुली जमां खान ने विफलता के बावजूद बिहार और बंगाल के अफगानों से गठबन्धन करके मुगलों की अधीनता से मुक्त होने के प्रयास जारी रखा। अकबर समझ चुका था कि इन सब विद्रोहों को समाप्त करने के लिए उसे सबसे पहले अपने दरबार के सरदारों में वर्चस्व की लड़ाई को समाप्त करना होगा और उसके बाद मुगलों के भारत आगमन के समय से ही उनके खिलाफ संघर्षरत अन्य क्षत्रपों को वश में करना होगा।

1.9 मेवाड में अकबर के खिलाफ महाराणा प्रताप

अकबर 1556 से 1560 ई0 तक मुगल साम्राज्य के विस्तार और इसके शासन को मजबूत बनाने की कोशिश में लगा रहा। उसके इस अभियान की नीति थी कि केन्द्र के शासन को मजबूत करो और उसके शासन के अधीन क्षेत्रीय क्षत्रपों को शासन करने की आजादी दो। साथ ही राजस्व उगाही को कानूनी–जामा पहनाओ। उसने इस प्रक्रिया में उन सरदारों पर भी नियंत्रण का प्रावधान किया, जो मुगलों के नाम पर युद्ध अभियान चला कर जीते हुए राज्यों को अपने कब्जे में रखते और लूटे गए माल–असबाब को स्वयं हड़प लेते थे।

मालवा के बाज बाहदुर ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। अकबर ने उसे एक हजारी मनसबदार बना दिया और बाद में संगीत के बारे में उसके ज्ञान को देखकर उसका ओहदा बढ़ा कर उसे दो हजारी मनसबदारी दे दी। गढ़ कटंगा में अकबर ने इस विजित सूबे के दस किलों को अपने अधीन रख कर शेष पूरा सूबा दिवंगत रानी दुर्गावती के भाई चन्द्र शाह को सौंप दिया।

अकबर ने राज्य जीतने और फिर समझौते की नीति को अपने अभियान का हिस्सा बनाकर मालवा, गोंडवाना, राजस्थान, गुजरात, बिहार और बंगाल पर मुगलों पर नियंत्रण स्थापित किया। अकबर ने अपने इस विजय अभियान के दौरान, सूबों और केन्द्रीय स्तर पर राजस्व संग्रह की एक सुव्यवस्थित प्रणाली स्थापित की। बाबर और हुमायूँ भी ऐसा ही करना चाहते थे, लेकिन अकबर ही अपने शासन के दौरान इस व्यवस्था को स्थापित करने में सफल रहा। अकबर ने अपना विजय अभियान जारी रखते हुए आगरा से लेकर लाहौर तक सभी तरह के विद्रोहों पर काबू पा लिया।

हालांकि अकबर को राजपूताना रियासतों को अपने नियंत्रण में लाने के लिए ज्यादा प्रयास नहीं करने पड़े, लेकिन मेवाड़ के महाराणा प्रताप से उसे जबर्दस्त प्रतिरोध का समना करना पड़ा। महाराण प्रताप ने 1572 ई0 में सिंहासन सम्भाला था। इसके बाद अकबर ने महाराणा प्रताप के साथ समझौते के तीन बार प्रसास किए, लेकिन ये सभी प्रयास विफल रहे, क्योंकि महाराणा प्रताप अकबर के सामने झुकने को तैयार नहीं थे। यह एक ऐसी परम्परा थी, जिसमें आधीनता स्वीकार करने वाले शासक को झुक कर उस जमीन को चूमना होता था, जहाँ बादशाह खड़ा होता था। ऐसा न करने वाले शासकों के खिलाफ अकबर चढ़ाई कर देता था। महाराणा प्रताप ने इस परम्परा को मानने से इन्कार कर दिया था। अतः मुगलों और प्रताप के बीच युद्ध का एक लम्बा सिलसिला शुरू हो गया। अकबर अन्यत्र विद्रोहों को दबाने में व्यस्त था और महाराणा प्रताप को मुगलों के आक्रमण से निपटने के लिए पर्याप्त समय मिल गया।

1575 ई0 में अकबर ने सिवाना के मजबूत गढ़ पर कब्जा करने के बाद 1576 ई0 में अजमेर में डेरा डाल कर मेवाड़ पर ध्यान केन्द्रित किया। राजा मानसिंह के नेतृत्व में पहला आक्रमण किया गया। मानसिंह की इस पाँच हजार सेना में राजपूत और मुगल सैनिक थे। महाराणा प्रताप ने मुगलों के आक्रमण का पूर्वानुमान लगाते हुए चित्तौड़ तक सेना के काम आ सकने वाले सभी संसाधनों को हटा दिया और पहाड़ियों को जाने वाले सभी दर्रे बन्द कर दिए। इसके बाद वे अपनी राजधानी कुम्मलगढ़ से 3000 सैनिकों के साथ आगे बढ़े। उनकी सेना में भीलों का भी एक दस्ता था और साथ ही मिर्जा हाकिम सूर के नेतृत्व में अफगान सैनिकों का दस्ता भी इस सेना में शामिल था। 18 फरवरी, 1576 को हल्दी घाटी में दोनों सेनाओं का आमना–सामना हुआ। इस युद्ध का मूल उद्देश्य मेवाड़ की स्थानीय आजादी था, जिसने

अलग–अलग धर्म और पंथ के लोगों को मुगलों से मुकाबला करने के लिए एकजुट किया था। हालांकि मुगलों की सेना में भी राजपूत थे और इस सेना का नेतृत्व भी एक राजपूत ही कर रहा था।

मुगल इस दुरूह भू–भाग में अपना तोपखाना नहीं ला पाए थे, इसलिए उन्हें घुड़सवार सेना और हाथियों की सहायता से पारम्परिक तरीके से युद्ध करना था। इस युद्ध में महाराणा प्रताप की सेना लाभ की स्थिति में थी और उसने मुगल सेना के दांये और बांये पक्ष को पस्त कर दिया। ऐसे समय में जब मुगलों के पांव उखड़ रहे थे, तब यह अफवाह फैली की अकबर स्वयं एक आरक्षित सैन्य दस्ते के साथ उनकी मदद के लिए पहुंच गया है। इस खबर ने युद्ध का रूख मुगलों के पक्ष में कर दिया और राणा की सेना दक्षिणी मेवाड़ की पहाड़ियों की ओर पीछे हटने लगी। पहाड़ियों में राणा की सैन्य टुकड़ियों से झड़प के भय और गर्मी से बेहाल मुगल सेना ने राणा की सेना का पीछा नहीं किया और यह संघर्ष हार–जीत के बिना समाप्त हो गया।

अब अकबर ने राणा के खिलाफ अभियान का नेतृत्व खुद सम्भाला। उसने महाराणा प्रताप को अलग–थलग करना शुरू किया। उसने गोगुन्दा, उदयपुर और कुम्भलमीर पर कब्जा कर लिया। मजबूर होकर राणा को गहन पहाड़ियों में छुपना पड़ा। इसके बाद अकबर ने जालौर के अफगान सरदारों तथा ईदर, सिरोही, बांसवाड़ा, दुर्गापुर और बून्दी के राजपूतों पर दबाव बनाना शुरू किया। बूंदी पर कब्जे के लिए विकट युद्ध भी हुआ। राणा प्रताप राजपूताने में पूरी तरह से अकेले पड़ गए थे। इन विपरीत परिस्थितियों में भी महाराणा प्रताप ने न तो समर्पण किया और न ही पकड़े गए और तीन वर्ष तक मुगल के खिलाफ युद्ध करते रहे।

1579 ई0 में अकबर का बंगाल और बिहार के विद्रोहों से निपटने में व्यस्त हो गया। 1585 ई0 में अकबर लाहौर चला गया और अगले 12 वर्षों तक वहीं रहा। इस अवधि के दौरान राणा के खिलाफ कोई अभियान नहीं चलाया गया और उन्होंने चित्तौड़ को छोड़कर शेष मेवाड पर फिर कब्जा कर लिया। उन्होंने दुर्गापुर के समीप चावण्ड को अपनी नई राजधानी बनाया। एक आन्तरिक घाव से 1597 ई0 में 51 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गई। उनके पुत्र अमर सिंह और करण को 1598 ई0 और 1605 ई0 में अकबर द्वारा भेजे गए सैन्य अभियानों का सामना करना पड़ा, लेकिन वे मुगल फौजों के लिए चुनौती बने रहे। 1613 ई0 में नवयुवक शहजादे खुर्रम (बाद में शाहजहाँ कहलाया) के माध्यम से जहाँगीर के शासनकाल में ही शान्ति–समझौता सम्भव हो पाया। जहाँगीर ने व्यक्तिगत रूप से झुकने की परम्परा पर जोर नहीं दिया तथा करण सिंह ने व्यक्तिगत रूप से जहाँगीर से आमने–सामने की मुलाकात की। करण सिंह को 5000 जाट, 5000 सवार का मनसब प्रदान किया गया और मालवा में रतलाभ, फूलिया तथा बांसवाड़ा की जागीर प्रदान की गई।

उदय सिंह, जो इस अभियान में अकबर के साथ लड़ा था, को राणा की उपाधि दे कर चित्तौड़ की गद्दी सौंप दी गई। मुगलों ने चित्तौड़ की दीवारों की मरम्मत कभी नहीं होने दी। इस प्रकार स्थानीय आजादी के लिए एक लम्बे संघर्ष के बाद मेवाड़ को मुगलों के साम्राज्य के अधीन ला दिया गया।

1.10 अकबर के खिलाफ बंगाल में दाउद खाँ

बंगाल राज्य दिल्ली में बदलते शासन के प्रभाव से अछूता रहते हुए स्वायत्त बना रहा। बंगाल के शासक बहुधा बिहार के अफगानों के साथ दुरभिसंधि करके दिल्ली के शासकों का इस क्षेत्र में आने पर प्रतिरोध करते थे। बाबर और हुमायूँ के शासनकाल में इन विद्रोहों और

दुरभिसंधियों का एक लम्बा सिलसिला चला को मिलता है। लेकिन, अभी तक बंगाल के किसी भी शासक ने दिल्ली के शासन से मुक्ति की खुले रूप से घोषणा का दावा नहीं किया था।

अकबर के शासनकाल के दौरान सूबों के बारे में अकबर द्वारा अपनाई गई केन्द्रीयकरण की नीति से इस क्षेत्र में अनेक क्षत्रप नाराज थे। इस नीति ने विद्रोह को हवा दी। इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद दाउद खाँ ने अपने नाम का अलग से ''खुतबा'' पढ़वा कर और अलग से अपना ''सिक्का'' जारी करके दिल्ली से आजादी की खुले–आम घोषणा कर दी। दाउद खाँ के पास सुप्रशिक्षित 40,000 घुड़सवार सैनिक और 1,40,000 पैदल सैनिकों की फौज थी। उसकी फौज में 3,600 हाथी तथा 20,000 तोपों वाला तोपखाना और हजारों युद्धपोतों का दस्ता भी शामिल था। अकबर ने यह खबर मिलते ही पूर्व की ओर सेना भेजी। जौनपुर के सूबेदार मुनीम खाँ ने अग्रिम कारवाई करके पटना पर कब्जा कर लिया, लेकिन वह और आगे नहीं बढ़ सका। अब तक अकबार 1573 ई0 में गुजरात में अपना विजय अभियान पूरा कर चुका था। उसने एक विशाल सेना और नावों के एक बड़े दस्ते के साथ बंगाल का रूख किया। उसने पटना और हाजीपुर को फिर से अपने कब्जे में लेकर बंगाल में दाउद खाँ को बंगाल में खेदड़ दिया। इसके बाद मुनीम खाँ को फिर से कमान सौंप दी गई। मार्च 1575 में बालासोर के टुकरोई में घमासान युद्ध के बाद मुनीम खाँ ने इस क्षेत्र में अपना कब्जा बरकरार रखा, लेकिन इस युद्ध के बाद जल्दी ही मुनीम खाँ की मुत्यु हो गई और फिर से विद्रोह भड़कने लगे। दाउद खाँ ने अपनी पुरानी राजधानी टांडा पर फिर से कब्जा कर लिया।

मुगलों को बिहार से भी पीछे हटना पड़ा। हुसैन कुली खान–ए–जहां को नया मुगल सूबेदार नियुक्त किया गया और इस अभियान की कमान उसे सौंपी गई। 1576 ई0 में घमासान युद्ध के दौरान दाउद खाँ मारा गया। इसके बाद अफगानों का सैन्य प्रतिरोध कमजोर हो गया, लेकिन स्थानीय जमींदार जहाँगीर के शासनकाल में भी अपनी स्वायत्तता के लिए संघर्ष करते रहे।

1576 ई0 में दाउद खाँ की मृत्यु के बाद बंगाल में तैनात सरदारों के बीच 1580 ई0 में फिर विद्रोह भड़क उठा। इस चरण में विद्रोह ने बिहार को भी लपेट लिया। अपने साम्राज्य को एकीकृत करने के लिए अकबर द्वारा अपनाई जा रही केन्द्रीयकरण की नीति, प्रशासनिक उपाय इस विद्रोह का प्रमुख कारण थे।

घोड़ों तथा अन्य पशुओं को दागने (ठप्पा लगाने) की प्रणाली 1574 ई0 में शुरू की गई थी। समय–समय पर इस प्रणाली की समीक्षा की जाती थी। कुलीनों और सरदारों की जाँच–पड़ताल की इस नीति ने शाही वंशजों की स्वयत्तंता और सूबाई नीति को काफी कमजोर कर दिया था। दाउद खाँ की मृत्यु के बाद इन मौजूदा नियमों–कानूनों को सख्ती से लागू किया गया। दिल्ली के अधिकारी पुराने खातों की जाँच की मांग करने लगे। इससे शाही वंशज और साथ ही मुल्ला–मौलवी अपमानित महसूस करने लगे तथा उनकी नाराजी बढ़ने लगी क्योंकि विशेषाधिकार प्राप्त अनेक लोग उन्हें प्राप्त सुविधाओं विशेषकर लगान मुक्त जमीन से वंचित होने लगे।

इस उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिम से अकबर के शासन को चुनौती देने वाले कुछ एजेंटों ने भी दिल्ली के खिलाफ विद्रोह में सहायता की। अकबर की तरफ से मिर्जा अज़ीज कोका और टोडरमल ने इस विद्रोह पर नियंत्रण किया।

1.11 औरंगजेब के खिलाफ सतनामियों का विद्रोह

सतनामी एक एकल व्यक्तिवादी समुदाय था। दिल्ली से लगभग 85 किमी0 दूर नारनौल (वर्तमान हरियाणा का एक जिला) के समीप बिजेसर निवासी बीरमान ने 1543 में इस समुदाय की स्थापना की थी। 17वीं शताब्दी में नारनौल इनका गढ़ था। स्रोतों से पता चलता है कि यह एक ईमानदार कौन थी और इनकी आजीविका का साधन खेती और छोटा–मोटा व्यापार था।

एक अत्यन्त तुच्छ कारण मुगलों से विवाद का मुद्दा बना। एक सतनामी किसान का मुगल सेना के एक पैदल सिपाही जिसे प्यादा कहते थे, से विवाद हो गया और सतनामियों ने मिलकर उस सैनिक की पीट–पीट कर हत्या कर दी। इस घटना की जानकारी मिलने पर, मुगल प्रशासन के लिए लगान वसूलने वाले स्थानीय अधिकारी, जिसे ''सिक़दार'' कहा जाता था, मुगल सैनिकों की एक छोटी सी टुकड़ी बदला लेने के लिए भेजी। सतनामियों ने भी एकजुट होकर इनका मुकाबला किया और इन्हें भगा दिया। यह क्रम कुछ समय तक चलता रहा और सतनामियों के लिए इस संघर्ष ने धार्मिक मोड़ ले लिया। शुरू–शुरू में इस मामले को दिल्ली से कुछ ही दूरी पर अवस्थित मुगल दरबार ने गम्भीरता से नहीं लिया और इस विद्रोह को कुचलने के लिए पर्याप्त संख्या में सैनिक नहीं भेजे। मुगल सैनिक बार–बार हारते रहे। हर जीत के साथ सतनामियों का हौंसला बढ़ता जा रहा था। उन्होंने नारनौल कस्बे के प्रमुख अधिकारी, जिसे ''फौजदार'' कहा जाता था, को उखाड़ फैंका और नारनौल पर कब्जा कर के इसे लूट लिया तथा मस्जिदों को ध्वस्त कर दिया और लगान वसूलना शुरू कर दिया। अन्ततः दिल्लीवासियों और मुगल दरबार के कान खड़े हुए। इसके अलावा, यह भी कहा जाने लगा कि एक महिला पैगम्बर इस धार्मिक विद्रोह से जुड़ गई है और यह अफवाह फैल गई कि उसने अपनी शक्तियों का प्रयोग करके विद्रोही सतनामियों को इस तरह संरक्षित कर दिया है कि मुगल सेना के हथियारों का उन पर कोई असर नही होता है। मुगल सेना के खिलाफ एक के बाद एक विजय ने इस अफवाह को और बल प्रदान किया तथा मुगल सेना हतोत्साहित होने लगी।

15 मार्च, 1672 को, औरंगजेब ने अपने अंगरक्षकों के एक दस्ते तथा तोपखाने के साथ रदन्दाज़ खान के नेतृत्व में 10,000 मुगल सैनिकों की एक टुकड़ी सतनामियों के खिलाफ भेजी। औरंगजेब, को ''जिन्दा पीर'' भी कहा जाता था, उसने अपने हाथों से इबादतें लिखकर और जादुई आकृतियाँ बना कर अपने सैनिकों को सौंपी और उन्हें आदेश दिया कि इन्हें अपने बैनरों और हथियारों पर इस पर प्रकार जड़ दें कि सभी को नजर आएं, इनसे शैतानी ताकतों का असर नहीं होगा। दूसरी तरफ, 5000 सतनामी भी मुगलों का मुकाबला करने के लिए लाभबंद हो चुके थे। इस संग्राम में सलनामियों को भारी नुक्सान पहुँचा। युद्ध के मैदान में लगभग 3000 सतनामी मारे गए तथा मुगल सेना ने पीछा करके अनेक सतनामियों को मौत के घाट उतार दिया। केवल कुछ सतनामी ही इस कत्ले–आम से बच पाए और इस पूरे क्षेत्र से विद्रोहियों का सफाया कर दिया गया।

1.12 औरंगजेब के खिलाफ हरगोविंद और तेगबहादुर

15 वीं शताब्दी में, हिन्दू कौम के खत्री वणिक जाति में बाबा लिखित नानक एक ऐसे सुधारक के रूप में उभरे, जिन्होंने धर्म ग्रंथों में कर्मकांडो और तत्व भावनाओं के बजाय धर्म के सार–सत्य पर बल दिया। बाबा नानक ने उनके कथन पर विश्वास करने वाले लोगों को अपने

समुदाय में शामिल किया। यही समुदाय अन्ततः एक ऐसे लौकिक सम्प्रदाय के रूप में स्थापित हुआ जहाँ नैतिक रूप से आत्म शुद्धि की जगह सैन्य अनुशासन को महत्ता मिली। बाद में, बाबा नानक सिख पंथ के दस गुरूओं में प्रथम संस्थापक गुरू के रूप में विख्यात हुए। यह पंथ 16 वीं शताब्दी के मध्य तक एक निष्ठावान समूह के रूप में संगठित हो चुका था। इस पंथ के पांचवे गुरू अर्जुन सिंह के समय तक सिख समुदाय अपने सन्तमय जीवन और आदर्शों के लिए मुगलों के सम्मान का पात्र बना रहा।

गुरू अर्जुन सिंह के समय तक सिख पंथ में काफी बदलाव आ चुका था। यह पंथ बहुत लोकप्रिय हो चुका था और अमृतसर इनका गढ़ बन गया था। यहाँ एक व्यवस्थित तरीके से इस पंथ के अनुयाइयों से अंशदान लिया जाता था। इस प्रकार, गुरू की सम्पदा में बहुत वृद्धि हुई। गुरू को राजा का दर्जा मिला और खालसा की विचारधारा सिखों की भूमि के रूप में विरूपित होने लगी। सिंख गुरू अर्जुन सिंह के साथ मुगलों का सर्वप्रथम विवाद तब शुरू हुआ जब अकबर के उत्तराधिकार के लिए दावेदार शहजादे खुसरों के खेमे को उन्होंने अपना आशीर्वाद दिया। खुसरों जहांगीर का प्रतिद्वन्द्वी था। जहाँगीर ने मुगल बादशाह बनने के बाद, गुरु अर्जुन पर उत्तराधिकारी के संघर्ष में खुसरो का साथ देने के लिए जुर्माना लगा दिया। उन्होंने जुर्माना देने से इन्कार कर दिया। जुर्माना अदा न करने पर उन्हें प्रताड़ित किया गया और यातनायें दी गईं। इन अपार कष्टों को सहन करते हुए जून, 1606 ई0 में उनकी मृत्यु हो गई।

उनके पुत्र हरगोविन्द ने सैन्य प्रशिक्षण का रास्ता अपनाया और अपने अनुयाइयों को योद्धा बनाना शुरू कर दिया। गुरु हरगोविन्द का मानना था कि सांसारिकता और धर्म एक दूसरे से सम्बद्ध होने चाहिये। शाहजहाँ के शासनकाल में अमृतसर के समीप एक पक्षी के शिकार के दौरान शाहजहाँ के शिकारी दल और गुरु हरगोविन्द के शिकारी दल का आमना–सामना हुआ। गुरु हरगोविन्द और शाहजहाँ के बीच इस संघर्ष में मुगलों को मुँह की खानी पड़ी और उन्हें पीछे हटना पड़ा। इसके बाद 1628 ई0 में सिक्खों के खिलाफ एक और सेना भेजी गई, जिसे संगराना के समीप सिक्खों ने फिर हरा दिया। इस विजय ने गुरु हरगोविन्द की प्रतिष्ठा और बढ़ा दी। शाहजहाँ एक के बाद एक भारी–भरकम सैन्य बल के साथ गुरु के खिलाफ अभियान चलाता रहा। अन्ततः गुरु की गद्दी अमृतसर पर मुगलों ने कब्जा कर लिया और गुरु हरगोविन्द कश्मीर की पहाड़ियों में स्थित किरतपुर चले गए, जहाँ 1645 ई0 में उनका देहावसान हो गया।

सिक्खों के विद्रोह के कारण मुगल प्रशासन व्यवस्थागत तरीके से सिक्खों को निशाना बना कर उन्हें प्रताड़ित करने लगा। इस बीच सिक्खों की एकता में विखण्डन का एक दौर चला और अधिकांश सिक्खों ने तेग बहादुर को गुरु के रूप में स्वीकार किया। औरंगजेब की भेदभाव पूर्ण नीति और सिक्खों और उनके धार्मिक स्थलों पर अकारण हमलों के चलते सिखों ने मुगल बादशाह औरंगजेब के खिलाफ बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया। कश्मीर के हिन्दू भी जबरन धर्म परिवर्तन के चलते मुगलों के खिलाफ थे। गुरु तेग बहादुर ने हिन्दुओं का सहयोग माँगा और हिन्दुओं ने भी मुगलों के खिलाफ बगावत कर दी। गुरु तेग बहादुर को कैद कर लिया गया। उन्हें इस्लाम धर्म अपनाने के लिए कहा गया, इन्कार करने पर उन्हें 5 दिन तक यातना दी गई और उसके बाद दिसम्बर, 1675 में उनका सिर कलम कर दिया गया।

गुरु तेग बहादुर के बाद दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने खुला विद्रोह जारी रखा। उन्होंने खालसा पर निःसन्देह आस्था और अनुकरण तथा गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की संस्कृति स्थापित की। उन्होंने सिक्खों को दीक्षा दी और हिन्दुओं व सभी समुदायों, जो औरंगजेब के मुगल

शासन से पीड़ित थे, को मुगलों के खिलाफ आन्दोलित किया। उन्होंने सिक्ख सैनिकों की एक सक्षम रेजीमेंट तैयार की और पश्चिम पंजाब की पहाड़ियों में मुगल सेना और उनके गठबन्धनों के खिलाफ संघर्ष जारी रखा। वर्षों तक चले संघर्ष के दौरान उनके अनुयाइयों की संख्या बढ़ती गई, यहाँ तक कि मुस्लिम भी उनके इस संघर्ष में शामिल हो गए। सिक्खों के गढ़ आनन्दपुर पर पाँच बार कब्जा किया गया। उनके चार पुत्र इस संघर्ष में मारे गए। लेकिन गोविन्द सिंह लम्बे समय तक मुगलों की गिरफ्त में नहीं आए। आखिरी बार आनन्दपुर पर मुगलों के आक्रमण के बाद वे आनन्दपुर को छोड़ कर दक्षिण भारत चले गए। 1707 ई0 में बादशाह बहादुर शाह प्रथम ने उन्हें विश्वास में लेकर राजपूताना और दक्कन को कूच करने का आग्रह किया। वे पैदल सेना की एक छोटी सी टुकड़ी और कुछ घुड़सवार सैनिकों के साथ गोदावरी नदी के तट पर स्थित नान्देड़ आ गए और एक वर्ष तक यहाँ रूके। यहीं एक अफगानी ने अगस्त, 1708 में छुरा घोंप कर उनकी हत्या कर दी।

1.13 दक्कन में विद्रोह : मलिक अम्बर, शाह जी और शिवाजी

दक्कन में मुगलों की घुसपैठ अकबर के समय में शुरू हुई। अकबर ने अपने साम्राज्य के विस्तार और केन्द्रीयकृत प्रशासन के एकीकरण के लिए 1593 ई0 में दक्कन का रूख किया। बिराड़ सबसे पहली रियासत थी, जो मुगलों के कब्जे में आई। इसे 1596 ई0 में अहमद नगर की शासक चाँदबीबी से छीना गया था। दक्कन में तीन सल्तनतें प्रमुख थी और इन तीनों सल्तनों में परस्पर प्रतिद्वद्विता थी तथा सल्तनों के अपने दरबारियों में भी विग्रह था। ये तीन सल्तनतें थीं – गोलकुण्डा में कुतुब शाही, अहमद नगर में निजाम शाही और बीजापुर में आदिल शाही। जब चाँद बीबी को मुगलों का सामना करना पड़ा, बीजापुर की सल्तनत ने मुगलों का साथ दिया। चाँदबीबी की 1600 में हत्या कर दी गई और बिराड़ मुगलों के हाथ में चला गया। युवा शहजादे को ग्वालियर के पहाड़ी किले में कैद कर दिया गया, लेकिन यह वंश अभी समाप्त नहीं हुआ था। निजाम शाही के वज़ीर मलिक अम्बर, अबसीनियन नस्ल का था, ने कुतुब शाही से गठबन्धन करके मुगलों और बीजापुर के आदिलशाही गठबन्धन से 20 वर्ष तक संघर्ष किया। अक्टूबर, 1624 में दोनों सेनाओं का युद्ध में आमना–सामना हुआ। इस युद्ध को भटवाड़ी का संग्राम कहा जाता है। मलिक अम्बर इस युद्ध में विजयी रहा। युद्ध में उसका सबसे विश्वासपात्र सेनापति शिवाजी के पिता शाहजी थे।

इस जीत के बावजूद मलिक अम्बर के नेतृत्व में संघर्ष जारी नहीं रह सका। शाहजी को अपनी जागीर में लौटना पड़ा, क्योंकि उनके श्वसुर लाखोजी जाधव राव को मुगलों ने उसे 24,000 की मनसबदारी की पेशकश करके अपने पक्ष में कर लिया था। निजाम शाही के अन्तर्गत साहजी असहज महसूस कर रहे थे, सल्तनत में उनकी खिल्ली उड़ाई जाती थी। मजबूरन वो बीजापुर दरबार में चले गए। यह सल्तनत पहले से ही मुगलों के साथ गठजोड़ किये हुई थी। मलिक अम्बर का 1627 ई0 में देहान्त हो गया और अहमद नगर राज्य नेतृत्व विहीन हो गया। शाह जी 1627 ई0 में निजामशाही में लौट आए और उन्होंने मुगलों की खिलाफत को फिर से जीवित करने का प्रयास किया। उन्होंने 1628 ई0 में पूना की जागीर हासिल कर ली। निजाम शाही ने लाखोजी से विश्वासघात का बदला लेने के लिए उनकी तथा उनके दो पुत्रों की हत्या कर दी। शाह जी अहमद नगर छोड़ कर शिवनेरी के किले में आ गए। यह किला विजय राज के नियंत्रण में था। शाह जी ने उसके माध्यम से मुगलों के यहाँ नौकरी पाने का प्रयास किया और उन्हें पाँच हजारी का ओहदा प्रदान किया गया।

इस समय शिवनेरी में 1630 ई0 में शिवाजी का जन्म हुआ। शाह जी एक भगोड़े का जीवन जी रहे थे और अपने पुत्र के साथ रहने की स्थिति में नहीं थे। 1631 ई0 में शाह जी ने निजाम शाही में लौटने और इसे पुनः बहाल करने का निर्णय लिया। मुगलों के षडयंत्र ने निजाम शाही को छिन्न–भिन्न कर दिया था और एक 7 वर्ष के बालक हुसैन तृतीय के नाममात्र के शासन में यह सल्तनत चल रही थी। शाह जी ने मुर्तजा निजाम शाह तृतीय को गद्दी पर बिठाया और पेमगिरी को राज्य की राजधानी बनाया। शाह जी मुहम्मद अली शाह तथा ख्वाजा खान, रन्दौला खान और मुरारी पण्डित जैसे अनेक दरबारियों को दक्कन के मुगलों से आजाद रखने के लिए समझाने में भी सफल रहे। अक्टूबर, 1634 में दक्कन का सूबेदार और मुगल सेनापति महावत खान की मृत्यु हो गई। इस घटना ने प्रतिरोध को और प्रोत्साहित किया, लेकिन 1636 ई0 में शाहजहाँ स्वयं एक विशाल फौज लेकर दक्कन पहुँचा। शाइस्ता खान और अहलावर्दी खान को विद्रोह कुचलने का दायित्व सौंपा। उन्होंने आदिल शाह को दबोच लिया और मुगलों के साथ संधि के लिए मजबूर कर दिया। महौली किले से शाह जी का संघर्ष तब तक जारी रहा, जब तक किले में सारी रसद समाप्त नहीं हो गई। अन्त में उन्होंने समर्पण कर दिया और उन्हें आदिल शाही दरबार में नियुक्त कर दिया गया। निजाम शाही वंश और उसका शासन समाप्त हो चुका था। शाह जी आदिल शाही दरबार में बने रहे, लेकिन उन्होंने और नीचे दक्षिण में आजकल के कर्नाटक पर अपना शासन स्थापित कर लिया और बंगलौर को अपनी सत्ता की गद्दी बनाया। आदिल शाह का दरबार मुगलों की अधीनता में संधि से बंधा था और इसके दरबारियों में सत्ता और प्रतिष्ठा के लिए होड़ चल रही थी। अतः किसी ने भी दक्कन की स्वतंत्रता को बलपूर्वक समर्थन नहीं दिया।

इन परिस्थितियों में युवा शिवाजी का उदय हुआ। अपने पिता शाह जी से विरासत में मिली जागीर पूना से 1646 ई0 में शिवाजी ने अपनी संघर्ष यात्रा शुरू की। इस समय तक निजाम शाही और कुतब शाही भंग हो चुकी थी तथा आदिल शाही मुगलों के अधीन थी। दक्कन में आन्तरिक प्रतिस्पर्धा, दरबारी षडयंत्रों का दौर चल रहा था तथा गैर जिम्मेदार सरदारों को सबक सिखाने के लिए मुगल सेना के बार–बार हमले जारी थे।

शिवाजी ने अपने गुरु दादोजी कोन्डदेव से मिली सीख के अनुसार अपनी जागीर में विसतार करना और किलों पर कब्जा करना शुरू कर दिया। उन्होंने 1647 ई0 में पहला किला कोण्डना (सिंघड़) जीता। उसके बाद पुरन्दर के किलेदार पर दबाव बना कर इस किले को हथिया लिया। इस तरह शिवाजी ने बिना किसी रक्तपात के अपनी जागीर के आस–पास के प्रमुख किलों पर कब्जा कर लिया और उत्तरी कोंकण में एक बड़ी शक्ति बन गए।

शिवाजी की बढ़ती शक्ति पर रोक लगाने के लिए बीजापुर के कुछ दरबारियों ने शिवाजी के पिता शाह जी को धोखे से गिरफ्तार कर लिया, लेकिन मुहम्मद आदिल शाह ने महसूस किया कि शाह जी को कैद करना जोखिम भरा होगा और उन्हें कर्नाटक जाने की इजाजत दे दी। बाद में शिवाजी ने पिता की गिरफ्तारी का बदला लिया और मुधोल को ध्वस्त कर दिया। यह बाजी घोरपड़े की जागीर थी और बाजी घोरपड़े षडयंत्रकारी दरबारियों में शामिल था। शाह जी ने शिवाजी की नई राजधानी रायगढ़ के निर्माण में मदद के लिए 1602 ई0 में कुछ समय तक शिवाजी के साथ निवास किया। इस प्रकार शिवाजी को अधिपति बनने की अपनी इस महत्वाकांक्षी यात्रा के प्रारम्भ में सबसे पहले उन्हें बीजापुर दरबार के ईर्ष्यालु दरबारियों को वश में करना पड़ा। उन्होंने बीजापुर के उन अनेक भू–भागों को अपने नियंत्रण में लिया, जो उनकी जागीर के आस–पास अवस्थित थे। इस दौरान मुगलों के साथ उनके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे, क्योंकि दिल्ली का बादशाह बीजापुर सल्तनत को समाप्त करना चाहता था। जब

शिवाजी ने बीजापुर सल्तनत के और भू–भागों पर कब्जे के लिए मुगलों से सम्पर्क किया, तो उन्हें मुगलों ने इसकी अनुमति दे दी।

लेकिन प्रतापगढ़ और रायगढ़ इन दो किलों पर कब्जा करने के बाद मई, 1657 में जुन्नार में मुगलों पर आक्रमण करके उन्होंने मुगलों को हैरत में डाल दिया। उन्होंने कल्याण पर कब्जा कर के अहमद नगर पर हमला कर दिया, लेकिन उन्हें आंशिक सफलता ही मिली। औरंगजेब ने उन्हें अहमद नगर से पीछे हटा दिया। शिवाजी ने इस स्थिति में अपनी सेना को युद्ध के लिए तो तैयार रखा, लेकिन संधि का आग्रह किया और मुगलों के प्रति निष्ठा जताई। लेकिन 1658 ई0 में औरंगजेब को दिल्ली की गद्दी पर अधिकार के लिए उत्तर की ओर कूंच करना पड़ा और इससे शिवाजी को अपना अभियान जारी रखने का मौका मिल गया। लेकिन 1659 ई0 में औरंगजेब ने सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत करने के बाद शाइस्ता खान को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। शाइस्ता खान ने शिवाजी के पुणे स्थित लाल महल सहित पुणे और बारामती पर कब्जा कर लिया। कर तालिब खान को दक्षिण कोंकण में शिवाजी को गिरफ्तार करने का दायित्व सौंपा गया। बीजापुर दरबार भी शिवाजी को पकड़ना चाहता था। अफज़ल खान ने यह बीड़ा उठाया। सभी मराठा सरदारों और दरबारियों को फरमान जारी किया गया कि वे शिवाजी की फौजों को सहयोग न दें। ये आदेश और अफजल के चयन से शिवाजी को पकड़ने में कोई मदद नहीं मिली। अफज़ल खान ने शिवाजी के भाई सम्भाजी की हत्या की थी और मन्दिरों को अपवित्र किया था, इसलिए उससे सभी नफरत करते थे। शिवाजी को मवाल के देशमुख और जेधे सरदारों का सहयोग मिला। शिवाजी ने प्रतापगढ़ पहाड़ी के एक छोटे से पठार पर अफजल खान की हत्या कर दी और उसके शिविर को ध्वस्त कर भारी मात्रा में माल–असबाब लूट लिया। इसके बाद उन्होंने पन्हाला, रंगना, खेलना, दाभोल को नियंत्रण में ले लिया और समुद्र के नज़दीक राजपुर पर कब्जा कर लिया। बीजापुर की फौज ने पन्हाला में शिवाजी को रोकने का प्रयास किया पर उन्हें गिरफ्तार नहीं कर पाई। शिवाजी 1660 ई0 में विशाल गढ़ चले गए और अपना अभियान जारी रखा। उन्होंने राजापुर पर फिर से कब्जा कर के श्रंगारपुर का किला जीत लिया। शिवाजी ने 1662 ई0 में रात्रि में पुणे में लाल महल पर अचानक हमला कर के सभी मुगलों को मार दिया। केवल शाइस्ता खान मुश्किल से अपनी जान बचा कर भाग निकला। इस प्रकार शिवाजी ने अपने आवास पर फिर कब्जा कर लिया। शिवाजी ने 1664 ई0 में मुगलों के सबसे समृद्ध बंदरगाह सूरत पर कब्जा कर लिया। मुगल सूबेदार ने खुद को किले में कैद कर लिया और सूरत लुटता रहा। शिवाजी ने सूरत की लूट से मराठा किलों को मजबूत बनाया।

औरंगजेब ने अब, आम्बेर के मिर्जा राजा जय सिंह को दक्कन का सूबेदार बना कर भेजा। जय सिंह ने जब शिवाजी के सबसे बड़े किले पुरन्दर का घेरा डाला, उस समय शिवाजी ने गोवा में पड़ाव डाल रखा था। शिवाजी पुरन्दर पहुँचे और समझ गए कि जय सिंह की सेना से नहीं निपटा जा सकता। उन्होंने 11 जून, 1665 को समर्पण कर दिया। 12 जून को पुरन्दर की संधि हुई। शिवाजी ने 23 किले और इनके आस–पास का क्षेत्र मुगलों को सौंप दिया। शिवाजी के पास 12 किले रहे। शिवाजी से आगरा आने और शाही दरबार में उपस्थित होने को कहा गया। शिवाजी अपने पुत्र सम्भा जी के साथ 11 मई, 1666 को आगरा पहुँचे। मिर्जा राजा जय सिंह के पुत्र राम सिंह ने शिवाजी की अगवानी की। राम सिंह शिवाजी को दीवान–ए–खास ले गया, जहाँ शिवाजी ने बादशाह को खिराज भेंट की। इस दिन औरंगजेब का जन्मदिन था और दरबार आमोद–प्रमोद में मस्त था। शिवाजी को लगा कि उनकी अनदेखी की गई है, वे बिना कोई औपचारिकता निभाए दरबार छोड़ कर चले गए। औरंगजेब ने इसे

अपना अपमान समझ कर राम सिंह को शिवाजी को कैद करने का हुक्म दिया। शिवाजी 17 अगस्त, 1666 को फरार हो गए और 20 नवम्बर, 1666 को रायगढ़ पहुँच गए।

इस घटना के बाद दक्कन में मुगल प्रशासन शहजादा मुअज्जम को सौंप दिया गया और जसवन्त सिंह को उसका सलाहकार नियुक्त किया गया। शिवाजी ने जसवन्त सिंह के साथ वार्ता कर के मुगलों के साथ सन्धि की पेशकश की। औरंगजेब ने इस पहल का स्वागत किया और शिवाजी के पुत्र सम्भाजी को 5000 का मनसब प्रदान किया, लेकिन यह संधि केवल 1669 ई0 तक कायम रही। शिवाजी ने पाया कि नया सूबेदार और उसका सलाहकार इस क्षेत्र में मुगलों की पकड़ बनाए रखने में सक्षम नहीं है। शिवाजी ने उनके मतभेदों का फायदा उठाकर मुगलों को सौंपे गए अपने किलों पर फिर से कब्जा करना शुरू कर दिया। इसमें उनके प्रमुख किले सिंघगढ़, पुरन्दर, माहुली, कल्याण, भिवन्डी और लोहगढ़ शामिल थे। शिवाजी ने अपना अभियान जारी रखा और 1672 ई0 में सूरत को फिर से लूट लिया। वापसी में उनका मुगल सेना और तोपखाने से सामना हुआ। उन्होंने छापामार हमलों से मुगल सेना को काफी नुकसान पहुँचाया और कोंकण लौट गए। उन्होंने खानदेश, बगलाना और बेराड़ में मुगलों को बहुत प्रताड़ित किया। मोरो पन्त पिंगले के नेतृत्व में मराठों ने इसी वर्ष खानदेश और गुजरात की सीमा पर स्थित सल्हड़ के किले पर कब्जा कर लिया।

सूरत में शिवाजी की लूट से औरंगजेब आगबबूला हो रहा था। उसने महावत खान को दक्कन भेजा। उसके बाद बहादुर खाँ और दलेर खाँ को भेजा गया। इनमें से केवल दलेर खाँ ही शिवाजी को कड़ी टक्कर दे सका, लेकिन हार गया। उसने 1678–79 में एक बार फिर पन्हाला पर हमला कर के शिवाजी को पकड़ने का प्रयास किया, लेकिन सफलता नहीं मिली। 1673 ई0 तक शिवाजी ने पन्हाला, सतारा और पराली पर कब्जा कर लिया था। इसी वर्ष शिवाजी का राज्याभिषेक किया गया। अब शिवाजी दक्कन के निर्विवाद अधिपति बन चुके थे। इसके बाद मुगल न तो कभी उन्हें पराजित कर सके और न ही हरा सके।

1.14 सार–संक्षेप

मुगलों के खिलाफ विद्रोहों को दो संदर्भों में देखा जा सकता है। पहला – वो परिस्थितियाँ, जब मुगलों ने किसी शासक या क्षेत्र को जीतने की मंशा से उस पर आक्रमण किया। दूसरा – वह संदर्भ, जब मुगलों की राजस्व प्रणाली और उनके साथ करदाता जैसे सम्बन्धों को उखाड़ फेंकने तथा स्थानीय स्वतंत्रता और स्वायत्तता को बरकरार रखने के लिए किसी एक या अधिक क्षेत्रीय ताकतों ने मिल कर मुगलों के खिलाफ विद्रोह किया।

मुगल सैनिकों और सेनापतियों का नेतृत्व करते हुए बाबर और हुमायूँ ने भारत के किसी एक शासक या शासकों के साथ गठजोड़ करके दिल्ली और आगरा को जीता। उन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप में दिल्ली से अपना साम्राज्य स्थापित करने और इसे एकीकृत करने का प्रयास किया, लेकिन पूर्व में दोआबा के पार वाले क्षेत्र और पश्चिम में गुजरात से निरन्तर विद्रोहों के कारण उनकी विजय स्थाई नहीं रही। शेरशाह सूरी के द्वारा साम्राज्य स्थापना ने तो हुमायूँ के मुगल शासन को एक दशक से भी ज्यादा समय तक भारतीय उपमहाद्वीप से बाहर कर दिया था। अकबर से पहले के मुगल शासक भारत में समेकित और स्थाई साम्राज्य स्थापित करने में असफल रहे। इसके अनेक कारण थे। बाबर और हुमायूँ के साथ आने वाले कुलीनों ने अपने आपको एक ऐसे अजनबी समाज में पाया, जो उनसे नफरत करता था। ये कुलीन यहाँ की बैरपूर्ण आबादी पर शासन की बजाय लूटपाट के बाद वापस लौट जाना चाहते थे। बाबर और

हुमायूँ भारत के स्थानीय शासक वर्ग अर्थात् राजपूतों, अफगानों और अन्य शासकों की तुलना में मुगलों की श्रेष्ठता पर विश्वास करते थे। उन्होंने यहाँ के शासकों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए, उन्हें मुगल दरबार में शामिल करने का प्रयास नहीं किया। इसलिए दिल्ली की मुगल सत्ता के खिलाफ राजनीतिक षडयंत्र और विद्रोह चलते रहे, लेकिन सभी विद्रोही शासक युद्ध के मैदान में एक संयुक्त मोर्चा बना कर मुगलों को निर्णायक तौर पर पराजित नहीं कर सके। इसलिए उनके विद्रोहों को हर बार कुचल दिया गया और ये विद्रोह एक सीमा तक ही कुछ सफल रहे और मुगलों को लम्बे समय तक अपने राज्य से दूर नहीं रख सके।

अकबर के सत्ता में आने के बाद हालात बदले। उसने सबसे पहले अपने ही दरबार में चलने वाले राजनीतिक षड़यंत्रों को समाप्त किया, मौजूदा मुगल राज्य को समेकित करने के लिए काबिल सरदारों को चुना। उसने क्षेत्रीय सत्ताओं के साथ सौदेबाजी की और उन्हें मुगलों की अधीनता स्वीकार करने के बदले संरक्षण की गारण्टी, ओहदा और सम्मान प्रदान किया। उसने मिले–जुले शासक वर्ग को विकसित होने दिया। इसमें अफगान, राजपूत, भारतीय मुस्लिम तथा सभी समुदायों के काबिल व्यक्ति शामिल थे। इस एकजुटता के साथ उसने मुगल साम्राज्य में पूर्व में शामिल सभी क्षेत्रों को फिर से नियंत्रण में लाने और इन्हें समेकित करने के लिए 15 वर्ष तक सैन्य अभियान चलाया। वह अपने शासन और प्रशासन की नई नीति के जरिये इस सीमा तक सफल रहा कि बहुत से विद्रोहों के मामले में अकबर ने इन विद्रोहों का स्वयं सामना नहीं किया, बल्कि राजपूत शासकों और अन्य विश्वास पात्र राजाओं को मुगल साम्राज्य की तरफ से लड़ने के लिए नियुक्त किया।

बाबर, हुमायूँ और अकबर के सम्पूर्ण शासनकाल के दौरान राजपूत शासक घराने विद्रोह करते रहे। जहाँगीर के शासनकाल के दौरान मुगल शासन को इनका खतरा नहीं रहा। इसी प्रकार अफगान भी विद्रोह करते रहे और इन्होंने बाबर, हुमायूँ, अकबर और जहाँगीर के खिलाफ विद्रोहों में राजपूतों को सहयोग दिया। सतनामियों और सिक्खों ने भी विद्रोह किया, लेकिन मुगल शासकों के खिलाफ लम्बे समय तक अभियान नहीं चला सके। दक्कन के शासक, विशेष रूप से मराठा, दिल्ली के शासन के खिलाफ अपेक्षाकृत लम्बे समय तक विद्रोह करते रहे। साथ ही यह भी ध्यान रखने योग्य है कि इन सभी विद्रोहों में कुलीनों, सैनिकों और एक समान समुदायों के आम लोगों ने भी मुगल शासकों को सक्रिय समर्थन और सहयोग दिया। ऐसा कोई भी विद्रोह नहीं था, जहाँ युद्ध के मैदान में दोनों पक्षों में अलग–अलग धर्मों और समुदायों के लोग न हों। अधिकांश विद्रोह सूबाई सत्ताओं की क्षेत्रीय आजादी और स्वायत्तता पर आधारित थे।

1.15 तकनीकी शब्दावली

प्यादा – मुगल सेना में पैदल सिपाही।

सिकदार – मुगल प्रशासन में लगान उगाहने वाला अधिकारी।

फौजदार – मुगल सेना में किले का कमाण्डर।

फरमान – दरबार से जारी होने वाला शाही आदेश।

खुतबा – शुक्रवार को दोपहर की नमाज में मस्जिद के मंच से किया जाने वाला शाही सम्बोधन, जिसमें शासक की सम्प्रभुता की स्वीकारोक्ति भी शामिल होती थी।

सिक्का – अपने शासन की सम्प्रभुता की पहचान के रूप में जारी शाही मुद्रा।

दीवान–ए–खास – मुगलों की प्रशासन व्यवस्था में एक ओहदा (पद या दर्जा)।

1.16 संदर्भ सूची

सतीश चन्द्र, मीडियावल इण्डिया II, आनन्द प्रकाशन, 2009

जदुनाथ सरकार, ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, 1962, तीसरा संस्करण

ए.आर. कुलकर्णी, दी मराठाज़, बुक्स एण्ड बुक्स, 1996

1.17 उपयोगी पाठ्य सामग्री

इरफान हबीब, दी एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, 1556–1707, ओयूपी

जदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, लौंगमैन एण्ड ग्रीन, 1920

स्टीवर्ट गॉर्डन, दी मराठाज़, 1600–1815, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993

1.18 निबन्धात्मक प्रश्न

क्या मुगलों के खिलाफ विद्रोह मुख्यतया धर्म पर आधारित थे ? उदाहरणों के साथ चर्चा करें।

ब्लॉक तीन

इकाई दोः मुग़ल साम्राज्य का पतन

2-1 प्रस्तावना

2-2 उद्देश्य

2-3औरंगज़ेब की भूमिका

2-4 उमराँ वर्ग की गुटबाज़ी और जागीरदारी संकट

2-5 कृषिगत व्यवस्था में संकट और जमींदार–कृषक विद्रोह

2-6 आर्थिक समृद्धि, नये वर्गों एवँ सत्ता के नये केद्रों का उदय

2-7 सारांश

2-8 संदर्भ ग्रंथ सूची

2-9 निबंधात्मक प्रश्न

2-1 प्रस्तावना

मुग़ल साम्राज्य की स्थापना सोलहवीं सदी के आरम्भ में ज़हीरुद्दीन मोहम्मद बाबर ने दिल्ली में अफ़ग़ान लोदी वंश के शासक इब्राहीम लोदी को पराजित कर की। हलांकि बाबर अधिक समय तक शासन नहीं कर सका और चार वर्ष में ही उसकी मृत्यु हो गई। इतने कम समय में बाबर भारत में कोई दूरगामी परिवर्तन नहीं सका। उसका पुत्र हुमायुँ भी भारत में मुग़ल शासन को स्थायित्व नहीं दे सका और बिहार के लोहानी पठान शेरशाह सूरी से पराजित होकर ईरान भाग गया। शेरशाह सूरी की मृत्यु के पश्चात 1555 ई. में हुमायुँ दिल्ली पर पुनरू कब्ज़ा करने में सफ़ल तो हो गया परन्तु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। अतरू मुग़ल साम्राज्य की वास्तविक नींव 1556 ई. में अकबर ने रखी। अकबर नें न केवल सत्ता का विस्तार किया बल्कि राजपूतों के साथ राजनीतिक सम्बंध स्थापित किए। उसनें एक उदार धार्मिक नीति अपनायी जिसे 'सुलह कुल' अर्थात सभी के साथ शान्ति कहा जाता है। अकबर की नीतियों के कारण ही मुग़ल साम्राज्य इतना शक्तिशाली हो गया कि अगले 150 वर्षों तक कोई उसे

चुनौती नहीं दे सका। 1707 ई. में औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात भी मुग़ल साम्राज्य की सर्वोच्चता बनी रही। हलांकि, अगले पचास सालों मे ही मुग़ल साम्राज्य का विघटन होने लगा और भारत में अनेक स्वतंत्र स्थानीय राज्य उभर आये। अट्ठारहवीं सदी में जिस तेजी से मुग़ल साम्राज्य का विघटन हुआ उसने इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित किया है। अट्ठारहवीं सदी के साहित्यकारों और इतिहासकारों ने सर्वागींण पतन का एक चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें कमज़ोर और नकारा मुग़ल उत्तराधिकारी, भ्रष्ट और पतित उमराँ वर्ग, दरबारी षडयंत्रों के साथ–साथ समाज के सांस्कृतिक पतन की तस्वीर सामने आती है। निश्चित रूप से अट्ठारहवीं सदी का ये बुद्धीजीवी वर्ग साम्राज्य के पतन को तो रेखांकित कर पा रहा था परन्तु उसके कारणों को समझने में असफल था। बाद के इतिहासकारों ने मुग़ल साम्राज्य के ऐतिहासिक दस्तावेज़ों का अध्ययन कर पतन के कारण को जानने का प्रयास किया है।

इतिहासकारों के एक वर्ग नें मुग़ल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगज़ेब की नीतियों को दोषी माना है। इन नीतियों मे भी उसकी विभाजनकारी धार्मिक नीतियों को ज़िम्मेदार माना जाता है। इतिहासकारों का दूसरा वर्ग मुग़ल साम्राज्य के पतन को कुछ व्यक्तियों या नीतियों में देखने के बजाय, इसे साम्राज्य की प्रशासनिक संस्थाओं और कृषि–व्यवस्था में संकट के रूप में देखता है। इन दोनों ही वर्गों के इतिहासकारों ने मुग़ल साम्राज्य के पतन का अध्ययन करने के लिए फ़ारसी मे लिखे गये मुग़ल दस्तावेज़ों, ऐतिहासिक ग्रण्थों और स्मारकों आदि का अध्ययन किया है। चूंकि इन इतिहासकारों ने साम्राज्य के केन्द्र में ही उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों का ही अध्ययन किया है अतरू इनके विश्लेषण को साम्राज्य–केंद्रित दृष्टिकोण कहा गया है। हाल ही में इतिहासकारों के एक अन्य वर्ग, जिन्हें संशोधनवादी इतिहासकार कहा जाता है, ने अट्ठारहवीं सदी के पूर्वार्ध में अस्तित्व में आये राज्यों की आर्थिक, राजनीतिक एवँ सामाजिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया। इन इतिहासकारों ने इन राज्यों के फ़ारसी, मराठी और दूसरी देशी भाषाओं में उपलब्ध दस्तावेज़ों का अध्ययन कर विघटन के विचार को ही चुनौती दी है। चूंकि इन इतिहासकारों ने साम्राज्य की परिधि में बने नए राज्यों में उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों का अध्ययन किया है अतरू इनके विश्लेषण को क्षेत्र–केंद्रित दृष्टिकोण कहा गया है। इन इतिहासकारों ने साम्राज्य के पतन को विघटन न मानकर सत्ता का विकेंद्रीकरण माना है तथा इसे व्यापक आर्थिक और सांस्कृतिक समृद्धि के दौर के रूप में विश्लेषित किया है। आगे हम इन सभी इतिहासकारों के लेखनों का व्यापक विश्लेषण करेंगे।

2-2 उद्देश्य

मुग़ल साम्राज्य के पतन के विषय में आमधारणा है कि मुग़ल साम्राज्य का पतन औरंगज़ेब की कट्टर धार्मिक नीति का परिणाम था। ऐसा माना जाता रहा है कि औरंगज़ेब ने अकबर की सहिष्णुता की नीति का परित्याग कर दिया और जज़िया फिर से लगा दिया। इससे भी अधिक यह कहा गया कि उसके समय में हिन्दुओं को नौकरी से निकाल दिया गया था और मंदिरों को ध्वस्त कर दिया गया। ऐसा भी माना जाता था कि उसकी इस नीति के विरोध में ही मराठों, जाटों और सिक्खों ने साम्राज्य

के प्रति विद्रोह कर दिया। इन विद्रोहों के फलस्वरूप ही मुग़ल साम्राज्य का विघटन हो गया। आज हम जानतें है कि मुग़ल साम्राज्य के पतन की यह अवधारणा मूलतरू औपनिवेशिक इतिहासलेखन से जन्मी। बीसवीं सदी के पूर्वाध में सर जदुनाथ सरकार के अध्ययनों ने इस अवधारणा को और भी मज़बूती प्रदान कर दी। इस तरह के विचारों को प्रकट करने वाले इतिहासकार उन दिनों की देन हैं जब भारतीय इतिहासलेखन अपने विकास की आरम्भिक अवस्था में था और इतिहासलेखन में शासकों की राजनीतिक, सैनिक और व्यक्तिगत सफ़लताओंकृअसफ़लताओं को ही अधिक महत्व दिया जाता था। स्वतंत्रता के पश्चात मुग़ल साम्राज्य पर हुए अधिकांश अध्ययनों ने इन विश्लेषणों को कठोर चुनौती दी। हलांकि आज़ादी से पूर्व भी राष्ट्रवादी इतिहासकार डा. ताराचंद और मार्क्सवादी इतिहासकार के. एम. अशरफ ने मध्यकालीन इतिहास की ऐसी साम्प्रदायिक व्याख्याओं को चुनौती दी थी। आज़ादी के बाद तो मार्क्सवादी और गैर–मार्क्सवादी इतिहासकारों ने अपने अध्ययनों से मुग़ल साम्राज्य के पतन में औरंगज़ेब की भूमिका के विचार को लगभग ध्वस्त ही कर दिया। बाद के इन इतिहासकारों का यह भी मत है कि मुग़ल साम्राज्य के पतन को व्यक्तियों या विशेष नीतियों के बजाय मुग़ल प्रशासन की बुनियादी संस्थाओं जैसे मनसबदारी व्यवस्था, जागीरदारी प्रथा तथा कृषि व्यवस्था और कृषि–सम्बंधों आदि में देखा जाना चाहिए। आगे हम क्रमबद्ध रूप से मुग़ल साम्राज्य के पतन के इन विविध कारणों का अध्ययन करेंगे। इस ईकाई का उद्देश्य मुग़ल साम्राज्य के पतन के कारणों पर विभिन्न ऐतिहासिक दृष्टिकोणों की विवेचना करना भी है। अतरू हम समय समय पर ऐतिहासिक लेखनों को राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी या संशोधनवादी के रूप में विश्लेषित करेंगे। हम देखेंगे कि इन सारे ही ऐतिहासिक विवेचनों ने न केवल मुग़ल साम्राज्य के पतन अपितु मुग़ल साम्राज्य की प्रकृति के बारे में भी हमारी समझ को बढ़ाया है। इन अध्ययनों से अट्ठारहवीं सदी के सम्बन्ध में इतिहासकारों की रूचि बढ़ी और अनेक नये अध्ययन हुए।

2-3 औरंगज़ेब की भूमिका

जैसा कि हमने ऊपर चर्चा की है कि आरम्भिक इतिहासकारों ने मुग़ल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगज़ेब को ज़िम्मेदार ठहराया था। इलियट और डाउसन ने 19वीं शताब्दी के मध्य में भारतीय इतिहास के मध्यकाल से सम्बंधित फ़ारसी इतिवृत्तों को एकत्र कर इनके अंग्रेज़ी अनुवाद को आठ खण्डों में 'द हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, एज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियंसरू द मोहम्मडन पीरियड' नाम से प्रकाशित कराया। बाद के अनेक इतिहासकारों ने मध्यकाल का इतिहास लिखने में इन अनुवादों का बारम्बार प्रयोग किया। परन्तु ये अनुवाद दरअसल ब्रिटिश इतिहासकारों में मौजूद औपनिवेशिक विचारधारा से प्रभावित थे। इन अनुवादों में न केवल त्रुटियाँ पाई गयीं, बल्कि मूल पाठ को अनुवादों में काँट–छाँट भी दिया गया था। इलियट का उद्देश्य भारत में ब्रिटिश राज को न्यायप्रिय और योग्य दिखाना था। अतः उन्होंने 'मुस्लिम शासकों' को क्रूर, निर्दयी और तानाशाह की भाँति पेश किया। उन्होंने आशा व्यक्त की कि 'इस तरह देसी लोग हमारे शासन की कोमलता और न्याय का अनुभव कर पाएँगे।' इस तरह के औपनिवेशिक इतिहास लेखन नें मध्यकाल और साथ ही मुग़ल साम्राज्य के बारे में एक नकारात्मक राय बना दी। यहाँ तक कि अनेक राष्ट्रवादी इतिहासकार भी ऐसे

विश्लेषण करने लगे जिसमें मध्यकाल को पतन, शोषण और साम्प्रदायिक टकराव के काल के तौर पर देखा गया।

मुग़ल साम्राज्य के पतन पर विस्तृत अध्ययन सर जदुनाथ सरकार ने किया। उन्होंने चार खण्डों में 'द फॉल ऑफ़ मुग़ल इम्पायर' और पाँच खण्डों में 'द हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' नाम से महत्वपूर्ण ग्रण्थ लिखे। जदुनाथ सरकार के अध्ययन मूलतरू औरंगज़ेब के समय की राजनीतिक स्थितियों का ही अध्ययन करते हैं। सरकार का मानना था कि औरंगज़ेब एक धार्मिक कट्टरपंथी शासक था तथा उसने अपने अधिकारियों और कुलीनों में धार्मिक आधार पर भेदभाव किया। सरकार ने यह भी कहा कि औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी और उसके अमीर भी अपने पूर्वजों की छाया मात्र थे और वे उसके द्वारा की गई गलतियों को सुधार नहीं सके। सरकार का मत था कि औरंगज़ेब की धार्मिक नीति के फलस्वरूप हिंदुओं में एकता आ गई तथा मराठा, राजपूत और दूसरे स्थानीय शासकों ने मुग़ल साम्राज्य का विरोध आरम्भ कर दिया।

ब्रिटिश इतिहासकार विलियम इरविन ने अपनी पुस्तक 'द लेटर मुग़ल्स' में मुग़ल शासकों और उनके कुलीनों (उमराँ वर्ग) की चारित्रिक गिरावट को साम्राज्य के पतन का ज़िम्मेदार माना था। जदुनाथ सरकार ने भी माना कि शासकों और कुलीनों की योग्यता में गिरावट ने साम्राज्य को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित किया। उन्होंने यह भी जोड़ा कि उत्तर मुग़लकाल में हरम का प्रभाव बढ़ जाने से साम्राज्य के प्रशासन पर बुरा प्रभाव पड़ा। वहीं माउँट स्टुवर्ट एल्फ़िंसटन के अनुसार दक्षिण भारत में बीजापुर और गोलकुण्डा की विजयें मुग़ल साम्राज्य के लिए हानिकारक साबित हुईं। ये राज्य मुग़ल साम्राज्य और मराठों के मध्य बफ़र राज्य की भाँति थे। औरंगज़ेब के द्वरा 1886–87 में इन दोनों राज्यों के उन्मूलन के फलस्वरूप मुग़ल साम्राज्य और मराठा सीमाएँ नज़दीक आ गईं। अब मराठों को मुग़ल साम्राज्य पर छापा मारना आसान हो गया। सर जदुनाथ सरकार ने एल्फ़िंसटन के मत का समर्थन करते हुए लिखा कि औरंगज़ेब द्वारा दक्कन में मुग़ल साम्राज्य का विस्तार करने से राजनीतिक और प्रशासनिक रूप से साम्राज्य का प्रबंधन मुश्किल हो गया। इतिहासकारों ने दक्षिण भारत को मुग़ल साम्रज्य के लिए 'स्पेन का कैंसर' कहा अर्थात जिस तरह स्पेन के मामले में हस्तक्षेप ने नेपोलियन के पतन की पृष्ठभूमि तैयार की, वैसे ही दक्षिण भारत में औरंगज़ेब के हस्तक्षेप ने मुग़ल साम्राज्य के पतन की नींव रख दी। मार्क्सवादी इतिहासकारों मे सतीश चंद्रा और इरफ़ान हबीब ने भी मुग़ल साम्राज्य के दक्षिण भारत में संघर्षों और विस्तार को साम्राज्य के आर्थिक संसाधनों पर बोझ डालने वाला माना है। सतीश चंद्रा का मानना था कि दक्षिण हमेशा से एक घाटे का सौदा था और बीजापुर एवं गोलकुण्डा की विजयों ने जागीर संकट को कम नहीं किया। इरफ़ान हबीब ने माना कि मराठों से संघर्ष मुग़लों के लिए हानिकारक रहे। इन संघर्षों के परिणामस्वरूप दक्षिण में अराजकता फैल गई। मुग़लों ने सेना को गतिशील बनाए रखने के लिए आर्थिक संसाधनों को जुटाने की कोशिश की जिससे इन संसाधनों पर काफी बोझ पड़ा। वास्तव में मुग़ल साम्राज्य के लिए दक्षिण एक खर्चीला राज्य बन गया। फिर भी मुग़लों को मराठों पर सफलता नही मिली और 1707 में औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मराठा एक शक्तिशाली शासक दल के रूप में उभरे।

फिर भी, जहाँ तक मुग़ल साम्राज्य के पतन में औरंगज़ेब की भूमिका का सवाल है उसकी दक्षिण नीति के मुकाबले उसकी धार्मिक नीति ही इतिहासकारों के लिए अधिक आकर्षण का केन्द्र बनी रही। जदुनाथ सरकार के पश्चात एस. आर. शर्मा और ईश्वरी प्रसाद ने भी औरंगज़ेब को मुग़ल साम्राज्य के पतन का मुख्य कारण माना। बाद के अधिक सूक्ष्म अध्ययनों ने दिखाया कि औरंगज़ेब के बारे में इतिहासकारों के ये विचार पूरी तरह ठीक नहीं थे। अतहर अली ने 1966 में किए गये अपने अध्ययन 'द मुग़ल नोबलटी अंडर औरंगज़ेब' में पाया कि औरंगज़ेब के समय में हिन्दु मनसबदारों की संख्या बढ़ गई थी। उन्होंने अकबर और औरंगज़ेब के समय में मुग़ल उमराँ वर्ग की संरचना और भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन कर यह विचार प्रस्तुत किया था। दूसरे अध्ययनों ने पाया कि राजपूतों ने औरंगज़ेब या उसके पश्चात मुग़ल साम्राज्य का साथ नहीं छोड़ा था तथा वे मुग़लों के प्रति वफ़ादार बने रहे थे। इरफ़ान हबीब को वृंदावन के मंदिरों से औरंगज़ेब के ऐसे फ़रमान मिले जिनमें वहाँ के मंदिरों को करमुक्त भूमि दी गई थी। हाल ही में ऑद्रे ट्रश्क ने अपने अध्ययन 'औरंगज़ेबरू द लाइफ एण्ड लिगेसी ऑफ इण्डियाज़ मोस्ट कंट्रोवर्सियल किंग' में तर्क दिया कि भारत और पाकिस्तान में औरंगज़ेब की जैसी छवी बन गई है वह सत्य से परे है। भारत में उसे एक कट्टर धार्मिक शासक की भाँति देखा जाता है जिसने हिन्दुओं को हिंसात्मक ढंग से दबाया। ट्रश्क ने अपने एक अन्य अध्ययन में पाया कि औरंगज़ेब के काल में संस्कृत का काफी उत्कर्ष हुआ। उनका मत है कि इस्लाम के साथ औरंगज़ेब का सम्बन्ध जटिल था। ये सम्बंध गतिशील, रणनीतिक एवँ विरोधाभासी तक था। ट्रश्क से पहले भी इतिहासकारों ने माना था कि औरंगज़ेब ने वास्तव में अपने राजनीतिक लक्ष्यों के लिए धर्म का उपयोग किया। बहरहाल, भले ही औरंगज़ेब ने धर्म का राजनीति के लिए दुरुपयोग किया हो, मुग़ल साम्राज्य के पतन के लिए उसकी धार्मिक नीति ज़िम्मेदार नही थी। निश्चित रूप से, साम्राज्य के पतन के कारण औरंगज़ेब की नीतियों मे नहीं बल्कि साम्राज्य की बुनियादी संरचना और व्यवस्था में ही विद्यमान थे, जिन्हें औरंगज़ेब भी नही बदल सकता था। आगे हम इन मुग़ल संरचनाओं का ही अध्ययन करेंगे।

2-4 उमराँ वर्ग की गुटबाज़ी और जागीरदारी संकट

आरम्भिक इतिहासकारों में सर जदुनाथ सरकार ने यह भी माना था कि उत्तर–मुग़लकाल में योग्य लोगों का अभाव था। उनका मत था कि बादशाह कमज़ोर थे और अमीर वर्ग निकम्मा हो गया था। टी. जी. पी. स्पियर ने इस विचार को चुनौती देते हुए कहा कि अट्ठारहवीं सदी में योग्य व्यक्तियों की कोई कमी नहीं थी। सैय्यद भाईयों, निज़ामुलमुल्क, अब्दुस्समद खाँ, सआदत खाँ, सफदरजंग, जकरिया खाँ, मुर्शीद कुली खाँ तथा मिर्ज़ा राजा सवाई जयसिंह जैसे योग्य व्यक्ति और सिपहसालार मुग़ल साम्राज्य की सेवा मे थे। हलांकि, ये सभी योग्य लोग खुद को ही आगे बढ़ाने मे लगे रहे और साम्राज्य की चिंता उन्होंने कम ही की। फलस्वरूप साम्राज्य के संकटकाल में आपसी संघर्षों में रत अमीर वर्ग नेतृत्व प्रदान करने मे असफल रहा। और, इस तरह मुग़ल उमराँ वर्ग ने साम्राज्य के पतन का मार्ग ही प्रशस्त किया।

यह भी कहा गया है कि मुग़ल शासक एवँ उमराँ वर्ग का चरित्र मूलतरू विदेशी था, जो उनके पतन का कारण बना। परन्तु यह मत भी ठीक नही है। मुग़ल साम्राज्य के एकदम आरम्भ से ही मुग़ल उमराँ वर्ग देसी और विदेशी तत्वों का अदभुत मिश्रण था। जो अमीर बाहर से आये भी थे, वे भी समय के साथ–साथ जल्दी ही यहाँ के रंग में रंग गये। यहाँ तक की जो भी अमीर विदेशी थे उनका अपने मूलनिवासों या दूसरे देशों से कोई सम्बंध ही नही रहा। अतरू उन्हें विदेशी कहना अनुचित ही नहीं गैर–ऐतिहासिक भी है। मध्यकाल तक लोगों के आपसी सम्बंध समान देश के निवासी या राष्ट्रवाद की भावना से नहीं, बल्कि जाति या नस्ल के आधार पर बनते थे। शायद भारत के इतिहास में कोई भी शासक वर्ग अपने नस्लीय संगठन में इतना विविधतापूर्ण नहीं था जितना मुग़ल प्रशासक वर्ग। यह शासक वर्ग अट्ठारहवीं सदी में मुख्यतरू तुरानी, ईरानी, भारतीय, राजपूत और मराठा का मिश्रण था। वास्तव में यही उमराँ वर्ग, जिसमें भिन्न–भिन्न जातियों, नस्लों और धर्मों के लोग थे, मुग़ल साम्राज्य की केन्द्रीकृत शक्ति का आधार स्तम्भ था। इतना ही नहीं, इन वर्गों ने ही मुग़ल साम्राज्य की उन्नति, विस्तार और समृद्धि के साथ–साथ मुग़लकालीन समन्वित संस्कृति के विकास में योगदान दिया। फिर भी, 17वीं सदी के मध्य से इस उमराँ वर्ग को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा था, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

प्रसिद्ध इतिहासकार सतीश चन्द्रा ने अपने ग्रण्थ 'पार्टीज़ एण्ड पॉलिटिक्स एट द मुग़ल कोर्ट (1707–40)' में मुग़ल उमराँ वर्ग के गुटों में बँटे होने की बात कही है। कुछ महत्वपूर्ण गुट थे कृ असद खाँ और ज़ुल्फिकार खाँ के नेतृत्व में ईरानी गुट (बाद में इस गुट का नेतृत्व अवध के संस्थापक सआदत खाँ और सफदरजंग ने किया); गाज़ीउद्दीन खाँ, फ़ीरोज़जंग और चिनकिलिच खाँ (जो हैदराबाद का संस्थापक था और निज़ामुलमुल्क की उपाधि से जाना जाता था) के नेतृत्व में तुरानी गुट; सैय्यद भाईयों, खाँनेदौराँ, अफ़गान सरदारों और हिन्दु राजाओं के नेतृत्व वाला हिंदुस्तानी गुट। सतीश चन्द्रा का मानना था कि इन गुटों के आपसी संघर्ष, एक–दूसरे के विरुद्ध षडयंत्र, विरोधी गुट को विफ़ल करने के लिए किए गये छल–प्रपंच आदि के परिणामस्वरूप मुग़ल शासक वर्ग कमज़ोर होता चला गया और अंतरू साम्राज्य का पतन अवश्यंभावी हो गया। सत्ता के केन्द्र अर्थात बादशाह से किसी विशेष गुट की निकटता स्वाभाविकरूप से दूसरे गुटों को उससे दूर करती थी। सभी गुट शासक से पद और महत्व पाने के संघर्ष मे लगे थे। सैय्यद भाईयों ने तो सीधे हस्तक्षेप कर मुग़ल राजकुमारों में से अपनी पसंद के मुताबिक बादशाह बनाए। इसके फलस्वरूप बादशाह और उसके वफादार अमीरों के सम्बंध ही खराब नहीं हुए बल्कि सेना में भी भ्रष्टाचार फैल गया। आरम्भ में वफादार रहे योग्य अमीरों ने स्वयँ के राज्य स्थापित कर लिए और मुग़ल साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया को तेज़ कर दिया। अपने बाद के अध्ययनों में सतीश चन्द्रा ने मुग़ल उमराँ वर्ग की इस गुटबाज़ी को मुग़ल साम्राज्य की आर्थिक समस्या से जोड़ा, जिसे वे जागीरदारी संकट कहते हैं।

दरअसल, मुग़ल साम्राज्य के राजनीतिक–प्रशासनिक संगठन का आधार मनसबदारी व्यवस्था थी। मनसब पदानुक्रम में दिया जाने वाला एक ओहदा था जिससे मनसबदार का पद ही नहीं बल्कि स्तर और वेतन भी तय होता था। छोटे मनसबदारों को तो नगद वेतन दिए जाते थे, परंतु बड़े मनसबदारों

को वेतन के बदले जागीर का आवंट्न किया जाता था। इन्हीं मनसबदारों को जागीरदार कहा जाता था। सतीश चन्द्रा का मत है कि अट्ठारहवीं सदी में इस जागीरदारी व्यवस्था को संकट का सामना करना पड़ रहा था। प्रोफेसर चन्द्रा के अनुसार 17वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में योरोपीय व्यापारिक गतिविधियों के फलस्वरूप भारत में मुद्रास्फीति बढ़ गई, जिसकी वजह भारी मात्रा में बुलियन मुख्यतरू चाँदी का साम्राज्य में प्रवेश था। इस स्फीति के कारण प्रशासन के खर्च बढ़ गये जिन्हें पूरा करने के लिए साम्राज्य ने विस्तारवादी नीति अपनाई और इसके लिए बड़ी संख्या में अमीरों की नियुक्ति की। एक ओर मुग़ल अमीरों की संख्या तो बढ़ रही थी परन्तु उसी अनुपात में उन्हें देने के लिए जागीरें नहीं थीं। सतीश चन्द्रा के मतानुसार दक्कन में मुग़ल साम्राज्य का विस्तार भी अतिरिक्त खर्च को पूरा नहीं कर सका क्योंकि दक्कन स्वयँ ही कमी का क्षेत्र था। हम जानते हैं कि मुग़ल साम्राज्य में जमा अर्थात निर्धारित राजस्व मांग और हासिल अर्थात वसूल हुई राजस्व आय में हमेशा से अंतर बना रहा था। अतरू जागीरदारों को सदैव ही आमदनी की कमीं का सामना करना पड़ता था। चन्द्रा के अनुसार इस काल में जागीरदारों को भूराजस्व एकत्र करने में मुग़ल फौजदारों का पर्याप्त सहयोग भी नहीं मिला। अतरू दक्षिण भारत और उपद्रव वाले इलाकों से जागीरदारों की वास्तविक आय अनुमानित आय से काफी कम थी। अब मुग़ल जागीरदार अच्छी जागीरों के आवंटन के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे थे। चन्द्रा ने पाया कि इस काल में कई जागीरदारों को वर्षों तक बिना जागीरों के रहना पड़ा। जब कभी जागीर का आवंटन हो भी जाता था तो इसे वास्तविक रूप से हस्तांतरित होने में समय लगता था। हलांकि मुग़ल साम्राज्य में भूराजस्व से प्राप्त 80% आय जागीरदार–मनसबदार के ही नियन्त्रण में थी परन्तु इस आय का वितरण बहुत असमान था। 17वीं शताब्दी के मध्य में तकरीबन 8000 मनसबदरों में से 445 ऐसे थे जिनका भूराजस्व की 61% आय पर नियन्त्रण था। 18वीं सदी में मुग़ल प्रशासन निश्चित रूप से पहले से महत्वपूर्ण मनसबदारों के अधिकार कम करने का जोखिम नहीं ले सकता था। औरंगज़ेब की मुत्यु के बाद की उथलपुथल ने भूराजस्व की वसूली को और भी मुश्किल बना दिया। परिणामस्वरूप मुग़ल साम्राज्य को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा था। अब कोई भी मनसबदार जो जागीरदार था अपेक्षित संख्या में सिपाही और घोड़े नहीं रख सकता था। अब मुग़ल साम्राज्य भी प्रशासनिक निगरानी का कोई कारगर उपाय नहीं अपना सका। इससे फलस्वरूप मुग़ल साम्राज्य की सैनिक क्षमता कम हो गई और साम्राज्य अपने ऊपर हुए मराठों, ईरानियों (नादिरशाह) और अफ़ग़ानी (अहमदशाह अब्दाली) हमलों का मुकाबिला नहीं कर सका। सतीश चन्द्रा ने अपने बाद के अध्ययन में मुग़ल दरबार की गुटबाज़ी को भी जागीरदारी संकट से जोड़कर देखा। मुग़ल साम्राज्य में मनसबदारों–जागीरदारों को समाज में सम्मान और ऊँचा स्तर प्राप्त था। इस सम्मान को बनाए रखने कि लिए उन्हें उच्च जीवनस्तर बनाए रखना पड़ता था जो पर्याप्त आर्थिक साधनों के बिना लगभग नामुमकिन था। इस तरह की आर्थिक समस्या के वातावरण नें कुलीनों मे गुटबाज़ी को बढ़ावा दिया।

जे. एफ. रिचड्र्स ने 1970 के दशक में किए गये अपने अध्ययन के आधार पर सतीश चन्द्रा के मत का खण्डन किया है। उनके अनुसार मुग़ल साम्राज्य में बेजागीरी की समस्या नहीं थी। गोलकुण्डा से प्राप्त दस्तावेज़ों के आधार पर रिचड्र्स ने इस विचार को भी चुनौती दी कि दक्कन में जागीरों की कमी थी जिससे बेजागीरी उत्पन्न हुई। उनके अनुसार जागीरदारी संकट मूलरूप से प्रशासकीय और प्रबन्धन के स्तर पर था। उनका मानना है कि दक्कन राज्यों दृ बीजापुर और गोलकुण्डा, के साम्राज्य में विलय से राजस्व स्रोतों में निश्चय ही वृद्धि हुई थी परन्तु कुलीनों की संख्या भी बढ़ गई थी। रिचड्र्स ने यह भी बताया कि कर्नाटक और मराठों के विरुद्ध युद्ध के खर्च को पूरा करने के लिए औरंगज़ेब ने समृद्ध जागीरों को खालसा भूमि (राजकीय भूमि) में परिणित कर दिया था। अतरू जागीरदारी संकट वास्तव में बेजागीरी के कारण नहीं अपितु प्रशासनिक प्रबन्धन की अयोग्यता के कारण उत्पन्न हुआ। 1980 में अपने शोध को पुनर्मार्जित करते हुए सतीश चन्द्रा ने जागीरदारी संकट को बेजागीरी की समस्या से अलग कर दिया। उन्होंने अपनी पुस्तक 'मेडीवल इंडियारू सोसाईटी, द जागीरदारी क्राइसिस एण्ड द विलेज' जागीरदारी संकट को मुग़ल प्रशासनिक और सामाजिक व्यवस्था से जोड़ा। चन्द्रा ने माना कि जागीरदारी संकट जागीरों की कमी, बेजागीरी मनसबदार आदि के कारण नहीं अपितु व्यवस्था के सुचारू रूप से चल न पाने के कारण ही उत्पन्न हुई। परन्तु उन्होंने इसके लिए औरंगज़ेब को दोषी न मानते हुए इसे एक लम्बी आर्थिक प्रक्रिया के रूप में देखा। सतीश चन्द्रा के अनुसार 17वीं शताब्दी में मौजूद व्यापक सामाजिक संघर्षों को मुग़ल अपने वर्गीय सम्बन्धों के वृहद ढाँचे के अंदर सुलझा नही पाए जिससे वित्तीय संकट उत्पन्न हुआ। इस आर्थिक संकट ने जागीरी संकट को जन्म दिया। उन्होंने पुनरू ज़ोर दिया कि दक्कन में वसूली की कमी थी, जागीरदार प्रभावी नही रह गये और उनकी सैन्यशक्ति में भी कमी आई। इसके साथ–साथ परम्परागत सामाजिक सम्बन्ध छिन्न–भिन्न हो गये। सतीश चन्द्रा के मतानुसार जागीरदारी व्यवस्था का यह संकट कृषि और गैर–कृषि साधनों जैसे व्यापार का विस्तार कर रोका जा सकता था। परंतु, मुग़ल काल में कमोबेश व्यापार और राजनीति अलग–अलग क्षेत्र थे। यहाँ तक कि मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था के कारण भूमि और कृषि का विकास भी सीमित ही रहा था। अतरू कुल मिलाकर शासकीय वर्ग (जागीरदारों) का बढ़ता आकार, कुलीनों के जीवन में बढ़ता आडम्बर, उत्पादन विस्तार न होने से उपलब्ध उत्पादन–अधिशेष की कमी और धीमा आर्थिक विकास जागीरदारी संकट को बनाने और बढ़ाने का ही काम कर रहे थे, जो मुग़ल साम्राज्य के पतन के लिए ज़िम्मेदार है।

2-5 कृषिगत व्यवस्था में संकट और जमींदार–कृषक विद्रोह

सबसे पहले सैय्यद नूरुल हसन ने मुग़लकालीन कृषि व्यवस्था में जमींदारों की भूमिका का अध्ययन किया। प्रोफेसर हसन के अनुसार मुग़ल शासन के दौरान कृषि सम्बन्धों में ऊपर से नीचे तक पिरामिडाकार ढंग से एक प्राधिकारी संरचना का विकास हुआ। इस संरचना में विभिन्न प्रकार के अधिकारी एक दूसरे के ऊपर अध्यारोपित किए गये। इस संरचना में सबसे ऊपर जागीरदार थे और

सबसे नीचे किसान। जागीरदार ज़मींदारों के माध्यम से राजस्व वसूल करते थे। अतरू इन दोनो वर्गों के बीच जमींदार थे जो सीधे किसानों से राजस्व वसूल कर साम्राज्य या जागीरदारों को देते थे। नूरुल हसन के अनुसार एक वर्ग के रूप में ज़मींदार साम्राज्य के प्रति काफी निष्ठावान थे। परन्तु, अट्ठारहवीं शताब्दी में जब मुग़ल सत्ता का पतन हो रहा था और जागीरदारों पर आर्थिक दबाव बढ़ने लगा तो राजस्व की मांग भी बढ़ गई। राजस्व की बढ़ी मांग का सबसे अधिक बोझ तो किसानों पर पड़ा, परन्तु ज़मींदार वर्ग भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। फलस्वरूप कृषि सम्बन्धों की पूरी व्यवस्था ही चरमरा गई और साम्राज्य पतन की ओर उन्मुख हो गया।

सत्रहवीं सदी के अंतिम तथा अट्ठारहवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में हुए कृषक—ज़मींदार विद्रोहों को मुग़ल साम्राज्य के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण माना गया है। मुग़ल साम्राज्य के द्वारा आरोपित आर्थिक दबावों का ज़मीनदारों और किसानों अक्सर विरोध किया था। साम्राज्य को जोरतलब ज़मीनदारों से भूराजस्व वसूली के लिए हमेशा ही सैनिक शक्ति का प्रयोग करना पड़ता था। औरंगज़ेब के काल और उसकी मृत्यु के पश्चात अनेक किसानों और ज़मीनदारों के विद्रोह हुए जैसे जाटों, सतनामियों और सिक्खों के विद्रोह। कभी इनकी व्याख्या करते हुए इन विद्रोहों को औरंगज़ेब की धार्मिक नीति के विरुद्ध प्रतिक्रिया के तौर पर तो कभी अतिक्रामक केंद्रीय सत्ता के खिलाफ क्षेत्रीय और सामुदायिक पहचानों (मराठा, राजपूत या सिक्ख आदि) की राजनीतिक दावेदारी के रूप में पेश किया गया है। औरंगज़ेब की धार्मिक नीति के विरुद्ध प्रतिक्रिया के विचार को नये शोधों के आधार पर इतिहासकारों ने पूरी तरह अस्वीकार कर दिया है। निश्चित रूप से इन विद्रोहों के मूल कारण राजनीतिक न होकर आर्थिक थे।

इरफ़ान हबीब ने अपने कालजयी अध्ययन 'द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुग़ल इंडिया' में भूराजस्व, कृषि अर्थव्यवस्था और कृषि सम्बन्धों का गहन अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि मुग़लों ने वेतनभोगी नौकरशाही पर आधारित अत्यंत कुशल भूराजस्व व्यवस्था को मध्यकालीन भारत में लागू किया था। यह व्यवस्था उत्पादन के आधार पर भूमि के प्रकार, भूमि की सटीक माप, प्रति वर्ष उत्पादन का उचित अनुमान और फसलों के बाज़ार मूल्यों के आधार पर राजस्व का सही—सही निर्धारण पर बनी थी। मुग़लों ने इसतरह राजस्व निर्धारण कर लिया कि किसानों और ज़मीनदारों के लिए छिपाने को कुछ बचा ही नहीं। कुल मिलाकर उत्पादन अधिशेष की वसूली में मुग़ल प्रशासन पहले से अधिक सक्षम था। इरफ़ान हबीब के मतानुसार मुग़ल राजस्व व्यवस्था इस अलिखित समझौते पर टिकी थी कि किसान के पास जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त अनाज छोड़ दिया जाता था। जहाँ तक सम्भव हुआ अधिशेष को पूरा वसूला जाता था। हलांकि, कुछ अन्य इतिहासकारों का मानना है कि उत्पादन जारी रखने के लिए भी किसान के पास निश्चित रूप से कुछ अनाज छोड़ दिया जाता था। जो भी हो प्रोफेसर हबीब के अनुसार किसानों पर इस काल में अत्यधिक दबाव था। बड़े किसान तो कुछ हद तक इस बोझ को सह भी सकते थे परन्तु छोटे किसान अपने आपको उत्पीड़ित समझने लगे। अतरू विद्रोहों के अवसरों पर किसानों ने ज़मीनदारों का साथ दिया। दूसरी तरफ जागीरदार भी किसानों और ज़मींनदारों का शोषण करते थे। जागीरदारों को दरअसल स्थानीय किसानों या भूमि से

कोई लगाव नहीं था क्योंकि तबादले की व्यवस्था के कारण उनकी रूचि केवल अधिक से अधिक वसूली में ही थी। इसके विपरीत ज़मींनदारों का किसानों और भूमि से करीबी सम्बन्ध था। हबीब के अनुसार जागीरदारों का बढ़ता दमन ही सम्भवतरू ज़मींनदारों की खुली अवज्ञा का कारण बना। मुग़लकाल में किसानों की दशा खराब होने का एक कारण इतिहासकारों ने इज़ारेदारी व्यवस्था को भी माना है। दरअसल अनेक मनसबदार–जागीरदार जो अपनी जागीर का प्रबंध करने में असमर्थ थे उन्होंने अपनी जागीरें अधिक से अधिक बोली लगाने वालों को निलाम करना आरम्भ कर दिया। हबीब ने पाया कि यह व्यवस्था शाहजहाँन और औरंगज़ेब के दौर में भी जारी थी परन्तु उत्तर–मुग़लकाल में अत्यधिक प्रचलित होने लगी। यहाँ तक की फरूखसियर के काल में तो खालिसा ज़मीनें भी इज़ारेदारी में दी जाने लगीं। स्वाभाविक था कि इज़ारेदार की किसानों से मांग मालगुज़ारी की मांग से भी ज़्यादा होती थी। अतरू इस प्रथा का सबसे बुरा प्रभाव किसानों और छोटे ज़मींनदारों पर ही पड़ा। इज़ारेदारी व्यवस्था का व्यापक अध्ययन नोमान अहमद सिद्दीकी ने किया है। उनके अनुसार इज़ारेदार की रुचि किसान से केवल धन उगाहने में थी, जिसके लिए उन्होंने बहुत ही ज़ालिमाना तरीकों का इस्तेमाल किया। इज़ारेदारों के अलावा जागीरदार और उसके कारिंदे भी किसानों से अवैध वसूली किया करते थे। समकालीन इतिवृत्त लेखकों भीमसेन और ख़ाफ़ी खाँ ने किसानों की दुर्दशा और सरकारी कारिंदों की लूट–खसोट का व्यापक वर्णन किया है। इरफ़ान हबीब ने मुग़लकालीन कृषि सम्बन्धों को किसानों के लिए शोषणकारी व्यवस्था माना है। उनके अनुसार किसानों के शोषण पर आधारित इस व्यवस्था में पहले से ही कृषिगत संकट के बीज मौजूद थे। हबीब के अनुसार औरंगज़ेब के काल में हुए सतनामियों, जाटों, सिक्खों और मराठों के विद्रोह वस्तुतरू किसान विद्रोह ही थे। इन किसान विद्रोहों के फलस्वरूप साम्राज्य के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तंतु क्षीण होते चले गये। इन विद्रोहों ने साम्राज्य को जड़ों तक हिला दिया। मुग़ल साम्राज्य की सारी सैनिक शक्ति इन उभरते हुए विद्रोहों को कुचलने के प्रयासों में खर्च हो गयी। बढ़ते आर्थिक बोझ को मुग़ल साम्राज्य सह नहीं सका और अंततरू साम्राज्य का पतन हो गया। इरफान हबीब ने माना कि इसप्रकार मुग़ल साम्राज्य ने अपनी कब्र ख़ुद खोदी। इन विद्रोहों के फलस्वरूप साम्राज्य के विभिन्न भागों में स्वतंत्र स्थानीय राज्य कायम हो गये और मुग़ल सत्ता कमज़ोर पड़ गई। हाल में कुछ इतिहासकारों ने किसानों की निर्धनता और आर्थिक दबाव को इन विद्रोहों और इसप्रकार मुग़ल साम्राज्य के पतन की पर्याप्त व्याख्या नहीं माना। इन्होंने अट्ठारहवीं सदी के भारत में आर्थिक संकट (जागीरदारी या कृषि संकट) के विचार को ही चुनौती दी है। आगे हम उन विश्लेषणों का अध्ययन करेंगे जो इन इतिहासकारों ने रखे है। यहाँ यह कहना उचित होगा कि इरफ़ान हबीब के अध्ययन ने मुग़लकाल पर इतिहासलेखन को आमूलचूल ढंग से परिवर्तित कर दिया। पहले के राजनीतिक विश्लेषण का स्थान आर्थिक विश्लेषणों ने ले लिया। उनके अध्ययनों को नज़रअंदाज़ कर मुग़लकालीन इतिहास लिखना असम्भव हो गया।

2-6 आर्थिक समृद्धि, नये वर्गों एवँ सत्ता के नये केंद्रों का उदय

अभी तक हमनें मुग़ल साम्राज्य के पतन के जिन कारणों के भी बारे में जाना है वे सभी साम्राज्य के फ़ारसी में लिखे दस्तावेज़ों और इतिवृत्तों के अध्ययन पर आधारित थे। इसके आलोचकों ने इसे इतिहासलेखन की राज्य–केंद्रित व्याख्या कहा है। यह इतिहास स्थानीय स्तर पर अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं के अंतर को नज़रअंदाज़ करता है। हाल में संशोधनवादी इतिहासकारों ने मुग़ल साम्राज्य के पतन को नए समूहों के उत्कर्ष और इनके आर्थिक तथा राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर साम्राज्य को चुनौती देने की प्रक्रिया से जोड़कर देखा। इन इतिहासलेखकों ने मत दिया कि नव–उद्भुत इन वर्गों को नियंत्रित करने में एक दूर स्थित कमज़ोर केन्द्र असमर्थ था। आंद्रे विन्क ने मत दिया कि मुग़ल साम्राज्य विद्रोहियों को प्रशासनिक व्यवस्था में समाहित कर लिया करता था। दरअसल, मुग़लकाल में केंद्रीय सत्ता और क्षेत्रीय कुलीनों के बीच समझौते और तालमेल की एक प्रक्रिया निरंतर चलती रही। इसप्रकार मुग़लों की 'प्रभुसत्ता निरंतर परिवर्तनशील शत्रुताओं के साथ गठजोड़ों की एक संतुलनकारी व्यवस्था पर टिकी हुई थी।' फ़्रैंक पर्लिन ने मुग़ल साम्राज्य में शासन की व्यवस्थाओं, मापन और राजस्व संग्रह के तरीकों तथा विभिन्न प्रकार के अधिकारों की बहुलता की बात कही है। उनके अनुसार विरासत में मिलने वाले अनेक अधिकार तो ऐसे थे जिन्हें बादशाह भी छीन नहीं सकता था। अतरू मुग़ल साम्राज्य वास्तव में एक सर्वसत्तावादी शक्ति नहीं था बल्कि सत्ता विभिन्न स्तरों पर विभाजित थी। ऐसा भी माना गया है कि मुग़ल साम्राज्य में ऐसे निगमबद्ध समूह और सामाजिक वर्ग भी थे, जो तथाकथित अतिक्रामक केंद्रीय सत्ता के बावजूद विभिन्न प्रकार के अधिकारों से परिपूर्ण थे। प्रसिद्ध कैम्ब्रिज इतिहासकार सी. ए. बेयली ने अपने अध्ययन 'रूलर्स, टॉउन्समेन एण्ड बाज़ार्स' में 18वीं सदी के अंतिम दशकों में नये सामाजिक वर्गों के उदय की चर्चा की है जिनके पास पर्याप्त संसाधन थे जिसका निवेश कर वे भारी मुनाफा कमा सकते थे। इन वर्गों के संसाधनों को बेयली ने 'पोट्फ़ोलियो कैपिटल' कहा है। बेयली ने तर्क दिया कि इस काल में आर्थिक पतन के ठोस प्रमाण नहीं हैं। जो भी संसाधन थे वे अब मुग़ल अमीरों के बजाय छोटे–छोटे कस्बाई अमीरों और व्यापारियों के बीच बँटने लगे थे। अब केंद्र के पास राजस्व पूरी मात्रा में नहीं पहुँच पा रहा था। छोटे कस्बे के व्यापारी और बैंकर मुग़ल साम्राज्य में कोई भूमिका नहीं निभाते थे लेकिन इन्होंने अब नवउदित क्षेत्रीय राज्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अब नई आर्थिक पद्यति और नये शहर अस्तित्व में आए। अतरू कुल मिलाकर आर्थिक पतन नहीं हुआ और अर्थव्यवस्था में एक निरंतरता बनी रही। अशीन दास गुप्ता ने भी पाया कि मुग़ल साम्राज्य के दौरान व्यापार–वाणिज्य में प्रगति हुई थी और सूरत, मसूलीपट्टनम तथा हुगली जैसे बंदरगाह नगरों का उदय हुआ था।

संशोधनवादी इतिहासकार मुज़फ़्फ़र आलम के मतानुसार विकेंद्रीकरण और व्यवसायीकरण के चलते 18वीं सदी में 'नए नवाबों' के एक दल ने साम्राज्य के संसाधनों पर इसप्रकार अपना अधिकार जमा लिया कि पुश्तैनी मुग़ल ख़ानज़ादे भी उनसे वंचित हो गये। प्रोफेसर आलम का मत है कि 17वीं शताब्दी के अन्त और 18वीं शताब्दी के आरम्भ में अवध और पंजाब में निश्चित आर्थिक विकास देखने

को मिलता है। इस आर्थिक समृद्धि का लाभ उठाकर नये वर्गों नें केंद्रीय सत्ता को चुनौती देना शुरु कर दिया और परम्परागत सामाजिक तथा राजनीतिक संतुलन बिगड़ गया। अवध की सूबेदारी में नये तत्वों का उदय हो गया। पंजाब में सिक्खों का उदय भी बड़े किसानों तथा ज़मींदारों का उदय था। आलम के अनुसार इन नये तत्वों के उदय में ही मुग़ल साम्राज्य के पतन के बीज छिपे हुए थे। इसप्रकार मुज़फ़्फ़र आलम ने इरफ़ान हबीब के अध्ययन, जिसमें सिक्ख विद्रोह को किसानों के शोषण और विपन्नता का परिणाम माना गया था, को सीधी चुनौती दी।

चेतन सिंह ने पंजाब पर किए गये अपने अध्ययन में सिक्ख–मुग़ल संघर्ष को एक लम्बी आर्थिक–राजनीतिक प्रक्रिया के तौर पर देखा। उनके अनुसार 17वीं सदी में सिंधु नदी में गाद जमा होने से पंजाब का जलमार्ग बुरी तरह बाधित हो गया, जिससे पंजाब की अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा असर पड़ा। आटोमन इम्पायर में उथल–पुथल, ईरान के शाह का कंधार पर कब्ज़ा और इसे पुनरू पाने के मुग़लों के प्रयासों के परिणामस्वरूप पंजाब से व्यापार का थलमार्ग भी बाधित हो गया। चेतन सिंह का मानना है कि पंजाब की अर्थव्यवस्था जो वाणिज्यिक कृषि पर निर्भर थी, नष्ट होने लगी। प्रोफेसर सिंह ने यह भी बताया कि पंजाब में आर्थिक विकास हर जगह एकसमान नहीं था। अतरू आर्थिक दृष्टि से समृद्ध इलाकों पर ही व्यापार के पतन का सबसे अधिक असर पड़ा। उन्होंने पाया कि इन्हीं इलाकों में सिक्ख विद्रोह अधिक हुए। चेतन सिंह ने निष्कर्ष दिया कि पंजाब में उत्पन्न सामाजिक विक्षोभ और अंनतरू साम्राज्य से उसका विच्छेद एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम था। अतरू पंजाब में ऐसी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियाँ चल रहीं थी जिन पर मुग़लों का कोई नियंत्रण ही नही था। सिंह के इस शोध ने केंद्र के बजाय क्षेत्र में हुए परिवर्तनों के अध्ययन को मुग़ल साम्राज्य के पतन को समझने के लिए महत्वपूर्ण बना दिया।

इन नये अध्ययनों ने निश्चित रूप से मुग़ल साम्राज्य के पतन से सम्बंधित परम्परागत विचारों को चुनौती दी है। फिर भी, इन अध्ययनों ने साबित कर दिया कि मुग़ल साम्राज्य का पतन किसी एक व्यक्ति (औरंगज़ेब) की रुचि, द्वेष या नीतियों का परिणाम नहीं था बल्कि एक लम्बी आर्थिक, राजनीतिक एवँ सामाजिक प्रक्रिया का परिणाम था जो सत्रहवीं शताब्दी से ही चल रहीं थीं और जिनमें से कई पर तो मुग़ल साम्राज्य का कोई नियंत्रण भी नहीं था।

2-7 सारांश

हमने देखा कि मुग़ल साम्राज्य के पतन पर इतिहासकारों ने कई अवधारणाएँ दी हैं। परन्तु, इसका अर्थ यह नहीं है कि मुग़ल साम्राज्य के पतन पर इतिहासकारों में कोई सहमति ही नहीं है। बल्कि, हम पाते हैं कि इतिहासकारों ने एक मत से इस विचार को ख़ारिज कर दिया है कि मुग़ल साम्राज्य के पतन का मूल कारण औरंगज़ेब की विभाजनकारी धार्मिक नीतियाँ थीं। हमनें यह भी जाना कि अधिकतर इतिहासकार मुग़ल साम्राज्य के पतन को राजनीतिक के साथ–साथ आर्थव्यवस्था के पतन में देखतें हैं। जहाँ सतीश चन्द्रा ने साम्राज्य के पतन को जागीरदारी व्यवस्था में उत्पन्न समस्याओं से जोड़कर देखा, वहीं इरफ़ान हबीब नें इसे कृषक संकट कहा है। हलांकि, दोनों ही अध्ययन

इतिहासलेखन की मार्क्सवादी परम्परा का पालन करते हैं, और पतन में राजनीतिक–सांस्कृतिक कारणों के स्थान पर आर्थिक तत्वों पर ज़ोर देते हैं। परन्तु, इरफ़ान हबीब का शोध इस कारण से महत्वपूर्ण है कि यह साम्राज्य के सबसे प्रमुख उत्पादक वर्ग कृषकों के शोषण, उत्पादन सम्बंधों, उत्पादन तकनीकों आदि का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है। इससे भी अधिक यह अध्ययन कृषक विद्रोहों को मध्यकालीन सामंती शोषण से जोड़कर देखता है, जो दुनियाभर में मार्क्सवादी चिंतन का आधार रहा है। हलांकि, बाद के संशोधनवादी इतिहासकारों ने विपरीत विचार प्रस्तुत किए हैं। इन इतिहासकारों ने विद्रोहों को किसानों की आर्थिक विपन्नता के स्थान पर आर्थिक समृद्धि से जोड़ा। साथ ही, अट्ठारहवीं सदी में अनेक नये सामाजिक वर्गों के उदय तथा अर्थव्यवस्था में आये बदलावों की ओर हमारा ध्यान खींचा है। अर्थव्यवस्था में आ रहे बदलावों के फलस्वरूप क्षेत्रों का उदय हो रहा था। इन नए आर्थिक समृद्धि के क्षेत्रों में शक्तिशाली व्यक्तियों ने सामाजिक गठबंधन कर नये राज्यों को जन्म दिया। इतिहासकारों का यह भी मानना है कि मुग़ल साम्राज्य में एक अपसारी प्रवृत्ति तो हमेशा से बनी हुई थी। मुग़लों ने प्रशासन की ऐसी व्यवस्था बनाई थी कि सभी अधिकारियों पर नियंत्रण और संतुलन बना रहता था। इसके अलावा साम्राज्य फ़ितना यानि विद्रोह को राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में ही समाहित कर लेने की नीति अपनाता था। 18वीं सदी में जैसे ही केंद्रीय व्यवस्था कमज़ोर पड़ी, क्षेत्रीय इलाके स्वतंत्र होने लगे और कई राज्य अस्तित्व में आ गये। हंलाकि, नये राज्यों के उदभव को केंद्रीय मुग़ल सत्ता के पतन के तौर पर तो देखा जा सकता है, परन्तु इसे 18वीं सदी के समूल राजनीतिक, आर्थिक या सांस्कृतिक पतन के तौर पर नहीं देखा जा सकता। अतरू संशोधनवादी इतिहासकारों ने अट्ठारहवीं सदी को विघटन के बजाय विकेंद्रीकरण की शताब्दी के तौर पर देखा। कुछ भी हो यह तो मानना पड़ेगा कि शक्तिशाली मुग़ल साम्राज्य के पतन और नये राज्यों के उदय ने वह अवसर प्रदान किया कि एक व्यापारिक कम्पनी के रूप में आये अंग्रेज़ भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाल सके।

2-8 संदर्भ ग्रंथ सूची

सीमा अलवी, द एट्टींथ सेंचुरी इन इंडिया (दिल्ली आक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2002)

मुज़फ़्फ़र आलम एण्ड संजय सुब्रहमन्यम, संपादक, द मुग़ल स्टेट, 1526–1750 (दिल्ली आक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1986)

इरफ़ान हबीब, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुग़ल इंडिया 1556–1707 (दिल्ली, आक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2013)

2-9 निबंधात्मक प्रश्न

1- मुगलों के पतन में औरंगजेब के उत्तरदायित्व का परीक्षण कीजिए।

2- मुगलों के पतन के कारकों पर विचार कीजिए।

इकाई तीनः मुगल साम्राज्य का विघटन और उत्तराधिकारी राज्य

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मुगल साम्राज्य का विघटनग
 3.3.1 औरंगजेब का उत्तरदायित्व
 3.3.2 औरंगजेब के अयोग्य उत्तराधिकारी
 3.3.3 मुगल अभिजात वर्ग का पतन
 3.3.4 दरबार में गुटबन्दी
 3.3.5 उत्तराधिकार का त्रुटिपूर्ण नियम
 3.3.6 मराठों का उत्थान
 3.3.7 सैनिक दुर्बलता
 3.3.8 आर्थिक दिवाला
 3.3.9 नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण
 3.3.10 यूरोपीय आगमन
3.4 उत्तराधिकारी राज्यों की स्थापना
 3.4.1 अवध
 3.4.2 हैदराबाद
 3.4.3 रूहेले तथा बंगश पठान
 3.4.4 राजपूत
 3.4.5 बंगाल
 3.4.6 मराठा राज्य
3.5 सारांश
3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

मुगल साम्राज्य का उत्थान और विघटन मध्यकालीन भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। बाबर ने मुगल साम्राज्य की नींव रखी, अकबर ने अपनी योग्यता से उसे सुदृढ़ता प्रदान की। शाहजहाँ के काल में यह अपनी भव्यता की चरम सीमा तक पहुँच गया था, लेकिन औरंगजेब के काल में मुगल साम्राज्य डगमगाने लगा तथा इसका विघटन प्रारम्भ हो गया था, परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार सम्बन्धी झगड़ों तथा दुर्बल एवं अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण अवस्था उत्तरोत्तर बिगड़ती गई। नादिरशाह और अब्दाली के आक्रमणों तथा आन्तरिक विद्रोहों ने मुगल साम्राज्य की रही–सही शक्ति को भी नष्ट कर दिया। परिणामस्वरूप लगभग एक शताब्दी के समय में ही मुगल साम्राज्य का विघटन हो गया और उसके पश्चात मुगल साम्राज्य के खण्डों से भारत में विभिन्न स्वतन्त्र अथवा अर्द्ध स्वतन्त्र राज्यों का निर्माण हुआ। इन उत्तराधिकारी राज्यों में कुछ

शक्तिशाली बने। इनमें सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य का निर्माण मराठों ने किया। मराठों के अतिरिक्त दक्षिण भारत में निज़ाम–उल–मुल्क ने हैदराबाद में एक शक्तिशाली राज्य का निर्माण किया और उसके पश्चात हैदरअली ने मैसूर के दृढ़ राज्य का निर्माण किया। उत्तरी भारत में औरंगजेब की मृत्यु के कुछ वर्ष पश्चात् ही बंगाल, बिहार और उड़ीसा में एक धनवान एवं शक्तिशाली स्वतन्त्र राज्य का निर्माण हुआ। अवध के विस्तृत राज्य का निर्माण सादतखाँ बुरहान मुल्क ने किया और अठारहवीं सदी के अन्तिम चरण में रणजीतसिंह ने पंजाब, कश्मीर तथा उत्तर–पश्चिमी भारत के अधिकांश भाग को विजय करके सिखों के शक्तिशाली राज्य का निर्माण करने में सफलता पायी। छोटे राज्यों में कर्नाटक, रूहेलखण्ड और भरतपुर के राज्य प्रमुख रहे। राजस्थान में राजपूतों के स्वतन्त्र राज्य थे, परन्तु वे आपस में निरन्तर झगड़ते रहे और उनमें कोई भी राजपूतों के गौरव को पुनः स्थापित न कर सका।

ये सभी बड़े और छोटे राज्य आन्तरिक दुर्बलताओं से ग्रस्त रहे। इनमें से कोई भी भारत को राजनीतिक और आर्थिक स्थिरता प्रदान न कर सका। इनके सभी शासकों की विचारधारा मध्ययुगीन रही। कोई भी भारत को आधुनिक विचार और साधन उपलब्ध कराने में सफल न रहा। इस कारण इन राज्यों के शासकों ने अपनी प्रजा पर शासन करने का नैतिक अधिकार खो दिया। वे न तो स्वयं अपनी रक्षा कर सके, और न ही अपने नागरिकों के सम्मान और आर्थिक साधनों की। इसी कारण धीरे–धीरे सभी अंग्रेजों से परास्त हुए। इनमें से कुछ राज्य छोटे कर दिये गये और कुछ को समाप्त कर दिया गया। जिन राज्यों का अस्तित्व बना रह सका, वे सभी अंग्रेजों के अधीन राज्य रहे। अन्ततः भारत में सभी उत्तराधिकारी राज्यों की सार्वभौमिक सत्ता अंग्रेजों के अधीन हो गई।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि –

- भारत में मुगल साम्राज्य के विघटन के मुख्य कारण क्या थे।
- मुगलों के विघटन के पश्चात् भारत में किस प्रकार उत्तराधिकारी राज्यों की स्थापना हुई।
- मराठा, अवध, हैदराबाद व अन्य उत्तराधिकारी राज्यों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई।

3.3 मुगल साम्राज्य का विघटन

औरंगजेब अन्तिम महान मुगल सम्राट था। सन् 1707 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई, जिसके मात्र पचास वर्षों के अन्दर ही मुगल साम्राज्य अस्त–व्यस्त हो गया, उसका विघटन होने लगा और देश में अस्थिरता फैल गयी। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात मुगल साम्राज्य तेजी से विघटित होने लगा। उसके अयोग्य उत्तराधिकारी इसे रोकने में असफल रहे। मुगल साम्राज्य का अन्तिम शासक बहादुरशाह द्वितीय था। मुख्य रूप से मुगल साम्राज्य के पतन के निम्नलिखित कारण थे –

3.3.1 औरंगजेब का उत्तरदायित्व

यद्यपि मुगल साम्राज्य का अधिकतम विस्तार औरंगजेब के काल में हुआ, परन्तु पतन के चिन्ह भी इसी समय से दिखाई पड़ते हैं। औरंगजेब की धर्मान्धता की नीति के कारण सिक्खों, जाटों, बुन्देलों, राजपूतों एवं मराठों ने विद्रोह किए। जजिया पुनः लागू करने तथा अन्य सामाजिक अपमानों के कारण सतनामी, बुन्देलों तथा जाटों ने विद्रोह किया। औरंगजेब की दक्षिण की मूर्खतापूर्ण नीति, जो 25 वर्षों तक चलती रही, के कारण राज्य के समस्त साधनों पर इतना बोझ पड़ा कि धन, सेना इत्यादि का नाश हुआ। वस्तुतः दक्कन का नासूर मुगल साम्राज्य के लिए उतना ही घातक सिद्ध हुआ, जितना नेपोलियन के लिए स्पेन का नासूर।

3.3.2 औरंगजेब के अयोग्य उत्तराधिकारी

मुगल साम्राज्य एक राजतंत्रात्मक साम्राज्य था। इस प्रकार की शासन व्यवस्था में सम्राट का व्यक्तित्व ही विशेष महत्व रखता है। औरंगजेब के उत्तराधिकारी दुर्बल एवं नैतिक रूप से पतित थे। बहदुरशाह की उपाधि 'शाहे बेखबर' थी। जहांदारशाह लम्पट मूर्ख था, फर्रुखशियर घृणित कायर था, मुहम्मदशाह की प्रशासन के प्रति उदासीनता, मदिरा एवं सुन्दरी के प्रति रुचि होने के कारण लोग उसे 'रंगीला' कहा करते थे। इस प्रकार के शक्तिहीन और मूर्ख सम्राट राज्य के हितों की रक्षा नहीं कर सकते थे।

3.3.3 मुगल अभिजात वर्ग का पतन

सम्राटों की देखा–देखी मुगल अभिजात वर्ग ने भी परिश्रमी एवं कठोर सैनिक जीवन छोड़ दिया था। डॉ0 जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि यदि एक सरदार की वीरगाथाओं का वर्णन तीन पृष्ठों में होता है, तो उसके पुत्र का प्रायः एक पृष्ठ पर और पौत्र का केवल कुछ पंक्तियों में। इस प्रकार अभिजात वर्ग के लोगों में जो जर्जरता आ गई थी, उसके कारण उत्तम शासक वर्ग तथा वीर सैनिक नेताओं का देश में अभाव हो गया था।

3.3.4 दरबार में गुटबन्दी

औरंगजेब के अन्तिम दिनों में दरबार में उमरा प्रभावशाली गुटों में बँट गए थे। मुगल दरबार में तूरानी, अफगानी, ईरानी एवं हिन्दुस्तानी गुट विशेष रूप से सक्रिय थे। प्रत्येक गुट का प्रयत्न यह था कि वह सम्राट के कान भरे और सम्राट को दूसरे दल के विरूद्ध कर दे। विदेशी आक्रमणों के विरूद्ध भी ये दल एक नहीं होते थे और प्रायः आक्रामणकारियों से मिलकर षड्यंत्र रचते थे। निजामुलमुल्क और बुरहानुलमुल्क के निजी स्वार्थों के कारण नादिरशाह से मिलकर दिल्ली प्रशासन के विरूद्ध षड़यंत्र रचे और अपने स्वार्थ के लिए राष्ट्रीय हितों को न्यौछावर कर दिया।

3.3.5 उत्तराधिकार का त्रुटिपूर्ण नियम

मुगलों में उत्तराधिकार का कोई नियम नहीं था। अतः उत्तराधिकार का फैसला मुख्यतः तलवारों के बल पर ही होता था। प्रसिद्ध लेखक अर्स्कीन के शब्दों में, तलवार ही अधिकार की निर्णायक थी और प्रत्येक पुत्र अपने भाइयों के विरूद्ध अपना भाग्य आजमाने को उद्यत रहता था। इसका फायदा उत्तरकालीन मुगलों के कमजोर शासनकाल में उमरा वर्ग ने उठाया। वे अपने निजी स्वार्थों के लिए सम्राटों को सिंहासन पर बैठाते अथवा उतारते थे। इस प्रकार उत्तराधिकार के त्रुटिपूर्ण नियम ने देश की राजनीति को शिथिल बना दिया और देश आर्थिक तथा राजनैतिक रूप से अपंग हो गया।

3.3.6 मराठों का उत्थान

मुगल साम्राज्य के पतन में सबसे महत्वपूर्ण बाहरी कारण जो इस साम्राज्य को ले डूबा, वह था पेशवाओं के अधीन मराठों का उत्थान। पेशवाओं ने हिन्दू पद पादशाही का आदर्श अपने सामने रखा, जो मुस्लिम राज्य के क्षय द्वारा ही पूरा किया जा सकता था। इस समय भारत की राजनीति में मराठे ही सबसे शक्तिशाली थे। यद्यपि मराठे भारत में एक स्थायी सरकार बनाने में असफल रहे, तो भी उन्होंने मुगल साम्राज्य के विघटन में बहुत योगदान किया।

3.3.7 सैनिक दुर्बलता

मुगल सैन्य व्यवस्था में भी जन्मजात त्रुटियाँ थीं। सैनिक अपने मनसबदारों के प्रति ही निष्ठा रखते थे, सम्राट के प्रति नहीं। प्रसिद्ध लेखक विलियम अर्विन के अनुसार सैनिकों में व्यक्तिगत वीरता के अभाव को छोड़कर शेष सभी अवगुण जैसे अनुशासनहीनता, विलासपूर्ण जीवन, निष्क्रियता आदि इनमें विद्यमान थे।

3.3.8 आर्थिक दिवाला

आर्थिक और वित्तीय परिस्थितियों की बिगड़ती हुई स्थिति ने मुगल साम्राज्य को खोखला कर दिया। औरंगजेब के दक्षिण के दीर्घकालीन युद्धों ने न केवल कोष ही रिक्त कर दिया, अपितु देश के व्यापार उद्योग का भी नाश कर दिया, जो शेष बचा उसे मराठों ने खा लिया। कृषकों ने तंग आकर कृषि करना छोड़ दिया और लूटमार आरम्भ कर दिया। फलस्वरूप कृषि और व्यापार दोनों ही चौपट हो गए।

3.3.9 नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण

इन विदेशी आक्रमणों ने मरणासन्न मुगल साम्राज्य को अत्यधिक आघात पहुँचाया। कोष रिक्त हो गया और सैनिक दुर्बलता स्पष्ट हो गई। जो लोग मुगल नाम से भय खाते थे, वे अब सिर उठाने लगे और मुगल सत्ता की खुलकर अवहेलना करने लगे। पानीपत का तृतीय युद्ध अहमदशाह अब्दाली ने मुगलों के विरूद्ध नहीं, अपितु मराठों के विरूद्ध लड़ा, जो उस समय समस्त उत्तर भारत पर प्रभुसत्ता रखते थे। इस तरह सन् 1765 ई0 से 1772 ई0 तक दिल्ली पर नजीबुद्दौला का शासन चलता रहा।

3.3.10 यूरोपीय आगमन

भारत में यूरोपीयों का आगमन 15वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से ही शुरू हो गया था। प्रारम्भ में उनका लक्ष्य केवल व्यापारिक विकास था। वे जब भारत आये, तब यहाँ सैनिक सामन्तशाही व्यवस्था थी। यूरोपीय कम्पनियाँ भारतीय शासकों की सैनिक सामन्त बन गयीं और भारतीय राजाओं से व्यापार और सैनिक सत्ता धीरे–धीरे छीन ली। वास्तव में तत्कालीन भारतीय समाज गतिहीन था, जिसके कारण यूरोपीय कम्पनियों ने भारत में व्यापार के साथ–साथ राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा बढ़ने लगी।

राजनीतिक महत्वाकांक्षा के बढ़ने पर उन्होंने पहले भारतीयों के द्विपक्षीय या बहुपक्षीय झगड़ों में किसी एक पक्ष को सहायता देकर अपनी स्थिति मजबूत की और बाद में अपनी शक्ति को विस्तृत करके सम्पूर्ण सत्ता कब्जा ली। सन् 1757 में प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों को अपनी शक्ति के प्रदर्शन का एक उचित मौका बंगाल में मिला, जिसमें विजित होकर उन्होंने बंगाल में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की। बक्सर के युद्ध (सन् 1764) में मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय की पराजय ने अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी ही नहीं दिलायी, अपितु भारतीय राजाओं की कमजोरियाँ भी दिखा दीं, फलतः उन्होंने दिल्ली पर सन् 1803 ई0 में कब्जा कर लिया। वास्तव में भारतीय समाज गतिशील एवं प्रगतिशील यूरोपीय समाज का विरोध करने में असफल रहा।

इस प्रकार विभिन्न कारणों से मुगल साम्राज्य का पतन हुआ। मुख्यतः उसकी आन्तरिक दुर्बलताएँ और उत्तरकालीन मुगल बादशाहों की अयोग्यता ही उसके इस पतन के लिए उत्तरदायी थीं, परन्तु विभिन्न शक्तिशाली सरदारों के स्वार्थ, उनकी महत्वाकांक्षाएँ और मराठों की बढ़ती हुई शक्ति भी उनके पतन का कारण बनीं। मुगल साम्राज्य का अवशेष तो सन् 1858 ई0 तक रहा और अन्त में

अंग्रेजों द्वारा उसे समाप्त किया गया, परन्तु वास्तव में मुगल साम्राज्य का पतन उससे बहुत पहले हो चुका था।

3.4 उत्तराधिकारी राज्यों की स्थापना

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् शक्तिशाली मुगल साम्राज्य निरन्तर पतन की ओर अग्रसर होता गया। निरन्तर क्षीण होती मुगल शक्ति का मुगलों के अनेक सूबेदारों ने लाभ उठाया व अपने–अपने स्वतन्त्र राज्यों की उन्होंने स्थापना की। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् स्वतन्त्रता की घोषणा करने वाले प्रमुख राज्यों का वर्णन निम्नवत् है –

3.4.1 अवध

मुगल दासता का जुआ अपने कन्धे से उतारने वाला पहला राज्य अवध था। अवध को स्वतन्त्रता दिलाने का साहसिक कार्य मुहम्मद अमीन ने किया। मुहम्मद अमीन प्रारम्भ में मगल दरबार में तोरानी दल का नेता था तथा स्वयं सैय्यद होते हुए भी उसने मुगल दरबार से सैय्यद प्रभाव को कम करने में बादशाह मुहम्मदशाह की सहायता की थी। उसके इसी कार्य से प्रसन्न होकर उसने मुहम्मदशाह को 'सादतखाँ बहादुर' की उपाधि दी तथा आगरा का सूबेदार भी बना दिया। मुहम्मद अमीन आगरा की सूबेदारी के काल में जाटों एवं राजपूतों का विद्रोह न दबा सका, अतः सम्राट ने उसे आगरा के स्थान पर अवध का सूबेदार नियुक्त कर दिया। अवध का सूबेदार बनना मुहम्मद अमीन के लिए वरदान प्रमाणित हुआ। सन् 1724 ई0 तक मुहम्मद अमीन ने अवध में अपनी सत्ता को सुदृढ़ कर लिया तथा अपने भतीजे सफदरजंग को अपना सहायक नियुक्त किया। तत्पश्चात् मुहम्मद अमीन ने अवध का कार्यभार सफदरजंग पर छोड़ दिया व स्वयं दिल्ली जाकर वहाँ की राजनीति में भाग लेने लगा।

सन् 1739 ई0 में भारत पर नादिरशाह ने आक्रमण किया। मुहम्मद अमीन इस समय नादिरशाह से मिल गया तथा उसने मुहम्मदशाह और निजामुल–मुल्क को बन्दी बनाने में नादिरशाह की सहायता की, किन्तु बाद में मुहम्मद अमीन ने स्वयं भी 19 मार्च, 1739 ई0 में आत्महत्या कर ली। मुहम्मद अमीन के पश्चात सफदरजंग अवध का सूबेदार बना। मुहम्मद अमीन व सफदरजंग नाममात्र के लिए ही मुगल सम्राट के अमीन थे। सन् 1754 ई0 में सफदरजंग की मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् शुजाउद्दौला अवध का नवाब बना।

3.4.2 हैदराबाद

हैदराबाद में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना निजामुल–मुल्क ने की थी। निजामुल–मुल्क, जिसका वास्तविक नाम चिनक्लीज खाँ था, वह मुगल शासन में एक मनसबदार था। निजामुल–मुल्क औरंगजेब के अत्यन्त निकट था तथा उसने औरंगजेब को दक्षिण के अभियान में महत्वपूर्ण सहायता की थी। फर्रुखशियर के पतन के समय उसे मालवा का सूबेदार नियुक्त किया गया था। मालवा में रहकर उसने अपनी शक्ति में वृद्धि की। सैय्यद बन्धुओं के पतन के पश्चात् सन् 1722 ई0 में मुगल सम्राट ने निजाम को वजीर नियुक्त किया। सन् 1742 ई0 तक निजाम ने सम्राट के वजीर के रूप में अनेक कार्य किये, किन्तु अत्यधिक विरोध होने के कारण सन् 1724 ई0 में निजाम पुनः दक्षिण भारत आ गया। निजाम द्वारा वजीर का पद त्यागने के कारण मुगल सम्राट अत्यधिक क्रोधित हुआ तथा उसने मुबारक खाँ को निजाम पर आक्रमण करने के लिए भेजा। 11 अक्टूबर, 1724 ई0 को निजाम तथा मुबारक खाँ के मध्य शकरखेड़ा नामक स्थान पर युद्ध हुआ। निजाम ने इस युद्ध में मुबारक खाँ को परास्त कर उसकी हत्या कर दी। विवश हो कर मुगल सम्राट ने 20 जून, 1725 ई0 को निजाम को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया गया था, किन्तु उसने सदैव स्वतन्त्रता का ही आचरण किया।

नादिरशाह के आक्रमण के समय निजाम मुगल सम्राट की सहायतार्थ दिल्ली आया। नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात् निजाम पुनः दक्षिण भारत लौट आया। इरविन ने लिखा है, ''निजाम–उल–मुल्क दक्षिण का सर्वेसर्वा था। वह स्वेच्छा से जागीरें तथा उपाधियाँ प्रदान करता था और नियुक्तियों के सम्बन्ध में भी उसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। यदि उसके पूर्ण सत्ताधारी होने में किसी बात में कमी थी, तो यह कि उसके नाम का खुतबा नहीं पढ़ा जाता था और सिक्कों पर उसका नाम नहीं लिखा जाता था।''

निजाम उल–मुल्क की मृत्यु के पश्चात् हैदराबाद राज्य में अव्यवस्था फैल गयी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र नासिरजंग और पोते मुजफ्फरजंग में गद्दी के लिए संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में नासिरजंग ने अंग्रेजों से सहायता ली और मुजफ्फरजंग ने फ्रांसीसियों से सहायता प्राप्त की, जिसके परिणामस्वरूप इन विदेशी शक्तियों को हैदराबाद के निजाम राज्य या निजामशाही में अपने प्रभाव को बढ़ाने का अवसर मिला। हैदरअली के नेतृत्व में मैसूर राज्य की शक्ति का विस्तार हुआ और मराठों की शक्ति भी दिन–प्रतिदिन बढ़ती गयी। इन दोनों शक्तियों ने भी हैदराबाद के राज्य के लिए कठिनाइयाँ उपस्थित कीं। वस्तुतः निजाम–उल–मुल्क की मृत्यु के पश्चात् हैदराबाद के शासकों की दक्षिण भारत की राजनीति में जो भूमिका रही, वह असम्मानजनक थी। हैदराबाद का कोई भी शासक योग्य सिद्ध न हुआ। उन्हें इसका परिणाम भी भुगतना पड़ा। सन् 1798 ई0 में हैदराबाद के तत्कालीन निजाम, निजामअली ने वैलेजली की सहायक सन्धि (निजामों ने ही सर्वप्रथम सहायक संधि को स्वीकार किया) को स्वीकार कर लिया। उस समय से हैदराबाद के शासक अंग्रेजों पर आश्रित हो गये।

हैदराबाद के निजाम

निजाम–उल–मुल्क आसफ़ जहाँ (सन् 1724–1748 ई0)

↓

नासिरजंग (सन् 1748–1750 ई0)

मुजफ्फरजंग (नासिरजंग का भांजा और निजाम–उल–मुल्क का पौत्र) ने पराजित कर के हत्या कर दी।

↓

मुजफ्फर जंग (सन् 1750–1751 ई0)

फ्रांसीसी सहायता से सिंहासनारूढ़। एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई।

↓

सलाबतजंग (सन् 1751–1760 ई0)

निजाम–उल–मुल्क का तृतीय पुत्र, जो फ्रांसीसी सहायता से सिंहासनारूढ़ हुआ।

↓

निजाम अली (सन् 1760–1803 ई0)

↓

सिकन्दरजाह (सन् 1803–1829 ई0)

↓

नासिर–उद्–दौला (सन् 1829–1857 ई0)

↓

अफजल–उद्–दौला (सन् 1857–1869 ई0)

↓

महाबत अली खान (सन् 1869–1911 ई0)

↓

उस्मान अली खान (सन् 1911–1949 ई0)

3.4.3 रुहेले तथा बंगश पठान

गंगा की घाटी में रुहेलों तथा बंगश पठानों ने भी स्वतंत्र राज्य स्थापित किए। एक अफगान वीर दाउद तथा उसके पुत्र अली मुहम्मद खाँ ने बरेली में एक छोटी सी जागीर का विस्तार कर रुहेलखण्ड में एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया, जो उत्तर में कुमायूँ से दक्षिण में गंगा नदी तक फैल गया। इससे कुछ दूर पूरब में मुहम्मद खाँ बंगश ने, जो एक अन्य अफगान वीर था, फर्रुखाबाद की जागीर को एक स्वतंत्र राज्य बना लिया। बाद में इसने बुन्देलखण्ड तथा इलाहाबाद के प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया।

3.4.4 राजपूत

राजपूत औरंगजेब की नीतियों से अप्रसन्न थे। 18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य की दुर्बलता से लाभ उठाकर उन्होंने अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी। बहादुरशाह ने सन् 1708 ई0 में जोधपुर पर आक्रमण किया। अजीत सिंह ने अधीनता तो स्वीकार कर ली, परन्तु शीघ्र ही उसने जयसिंह द्वितीय तथा दुर्गादास राठौर के साथ मिलकर मुगलों के विरूद्ध एक गठजोड़ बना लिया। सन् 1714 ई0 में मुगल सेनापति हुसैन अली ने जोधपुर पर आक्रमण किया। अजीत सिंह को अपनी पुत्री का विवाह मुगल सम्राट फर्रुखशियर से करना पड़ा।

सैय्यद बन्धुओं ने अजीत सिंह को अपनी ओर मिलाने के लिए उसे अजमेर तथा गुजरात की सूबेदारी प्रदान की, जिस पद पर वह सन् 1721 ई0 तक बना रहा। सैय्यद बन्धु विरोधी दल ने जयपुर के महाराज जयसिंह द्वितीय को सन् 1721 ई0 में आगरा का सूबेदार नियुक्त कर दिया। मुहम्मदशाह के समय में उसे गुजरात का क्षेत्र भी दे दिया गया।

सवाई जय सिंह (सन् 1688 ई0 से 1747 ई0) – अट्ठारहवीं शताब्दी का सबसे श्रेष्ठ राजपूत शासक अजमेर का सवाई जय सिंह था। इसे सवाई की पदवी मुगल शासक फर्रुखशियर ने दी थी। जय सिंह एक विख्यात राजनेता, कानून निर्माता और सुधारक था, परन्तु सबसे अधिक वह विज्ञान प्रेमी थी। उसने सन् 1722 ई0 में जयपुर शहर की स्थापना की।

जय सिंह एक महान खगोलशास्त्री भी था। उसने दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, वाराणसी और मथुरा में बिल्कुल सही और आधुनिक उपकरणों के सुसज्जित पर्यवेक्षणशालायें बनाई। उसने सारणियों का एक सैट तैयार किया, जिससे लोगों को खगोल शास्त्र सम्बन्धी पर्यवेक्षण करने में सहायता मिले। इसका नाम जिंज मुहम्मदशाही था। उसने युक्लिड की 'रेखागणित के तत्व' का अनुवाद संस्कृत में कराया। उसने त्रिकोणमिति की बहुत सारी कृतियों और लघु गणकों को बनाने और उनके इस्तेमाल सम्बन्धी नेपियर की रचना का अनुवाद संस्कृत में कराया।

जय सिंह समाज सुधारक भी था। उसने एक कानून लागू करने की कोशिश की, जिससे लड़की की शादी में किसी राजपूत को अत्यधिक खर्च करने के लिए मजबूर न होना पड़े।

3.4.5 बंगाल

बंगाल का सूबेदार मुर्शिद कुली खां था। मुर्शिद कुली खां एक योग्य व्यक्ति था। उसने बंगाल में कुशलतापूर्वक शासन किया। 1727 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् मुर्शिद कुली खां का दामाद शुजाउद्दौला बंगाल का सूबेदार बना। शुजाउद्दौला ने बंगाल व उड़ीसा में स्वतन्त्र शासन की स्थापना की। शुजाउद्दौला के शासनकाल में बंगाल व उड़ीसा नाममात्र के लिए ही मुगलों के अधीन थे। शुजाउद्दौला की मृत्यु 1739 ई0 में हुई। उसके पश्चात् उसका पुत्र सरफराज खां बंगाल, उड़ीसा व बिहार का सूबेदार बना। सरफराज एक अयोग्य व्यक्ति था, अतः नायब सूबेदार अलीवर्दी खां सरफराज को परास्त कर बंगाल, उड़ीसा व बिहार का सूबेदार बन गया।

अलीवर्दी खाँ एक योग्य शासक था। उसने बंगाल को एक शक्तिशाली राज्य बनाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसके कार्य में दो बाधाएँ उपस्थित हुई। सन् 1748 ई0 में ही वह अफगानों की शक्ति को नष्ट करने में सफल हो सका। उसके कार्य में दूसरी कठिनाई मराठों के आक्रमणों ने उपस्थित की। इस अवसर पर मराठे भारत के सभी भागों पर आक्रमण कर रहे थे। उन्होंने बंगाल पर आक्रमण किया तथा अलीवर्दी खाँ ने 12 लाख रुपया प्रतिवर्ष मराठों को चौथ के रूप और उड़ीसा के एक भाग का राजस्व देना स्वीकार करके उनसे सन् 1751 ई0 में सन्धि कर ली। मराठों ने अपनी तरफ से वायदा किया कि जब तक उन्हें यह धनराशि मिलती रहेगी, तब तक वे बंगाल की सीमाओं में प्रवेश नहीं करेंगे। उसने अंग्रेजों को कलकत्ता और फ्रांसीसियों को चन्द्रनगर के अपने—अपने कारखानों की किलेबन्दी करने से भी रोका था। 10 अप्रैल, 1756 ई0 को अलीवर्दी खाँ की मृत्यु हो गयी।

अलीवर्दी खाँ की मृत्यु के पश्चात उसका पौत्र सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब बना। सिराजुद्दौला ने अपने विरोधियों को नष्ट किया और बंगाल के शासन को दृढ़ किया, परन्तु उसके शत्रुओं की संख्या अधिक हो गयी। उसका झगड़ा अंग्रेजों से भी हुआ। अंग्रेज उसके राज्य में बिना कर दिये हुए व्यापार करते थे, उसके शत्रुओं को शरण देते थे तथा उसकी आज्ञा के विरूद्ध कलकत्ता के किले को दृढ़ कर रहे थे। सिराजुद्दौला ने उनके इन कार्यों में बाधा डाली। अंग्रेजों ने उसके शत्रुओं से मिलकर उसके विरूद्ध षड्यन्त्र किया। इस शत्रुता का अन्तिम परिणाम जून सन् 1757 ई0 में लड़ा गया प्लासी का युद्ध था। युद्ध में सिराजुद्दौला की पराजय हुई। बाद में उसे मार डाला गया। अंग्रेजों ने उसके एक सम्बन्धी मीरजाफर को बंगाल का नवाब बनाया। सन् 1760 ई0 में अंग्रेजों ने मीरजाफ़र को गद्दी से हटाकर मीरकासिम को गद्दी पर बैठाया, परन्तु मीरकासिम का भी अंग्रेजों से झगड़ा हुआ। मीरकासिम को बंगाल से भागना पड़ा। उसने अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सहायता ली। शुजाउद्दौला ने मीरकासिम की ओर से सन् 1764 ई0 में अंग्रेजों से बक्सर का युद्ध किया। उसकी पराजय हुई। बंगाल का शासन उस समय से अंग्रेजों के हाथ में चला गया। अंग्रेजों ने कुछ वर्षों तक नाममात्र के नवाब को बंगाल का शासक रहने दिया। अन्त में सन् 1772 ई0 में उन्होंने बंगाल, बिहार और उड़ीसा का शासन प्रत्यक्षतः अपने हाथों में ले लिया।

बंगाल के नवाब

मुर्शिदकुली खाँ (सन् 1713—1725 ई0)

↓

शुजाउद्दीन मुहम्मद खाँ (दामाद) (सन् 1725—1739 ई0)

सरफराज खाँ (पुत्र) (सन् 1739)

↓

बिहार का **नायब नाजिम** वध करके गद्दी पर बैठा

↓

अलीवर्दी खाँ (सन् 1740–1756 ई0)

↓

सिराजुद्दौला (लड़की का लड़का) (सन् 1756–1757 ई0)

↓

मीरजाफ़र (सेनापति का फूफा) (सन् 1757–1761 ई0)

↓

मीरकासिम (दामाद) (सन् 1761–1763 ई0)

↓

मीरजाफ़र (दूसरी बार) (सन् 1763–1765 ई0)

↓

नज़्मुद्दौला (द्वितीय पुत्र) (सन् 1765–1772 ई0)

सन् 1772 ई0 में वॉरेन हेस्टिंग्स ने बंगाल की नवाबी समाप्त कर दी।

3.4.6 मराठा

औरंगजेब के समय में जब मुगल साम्राज्य का गौरव अपने चरमोत्कर्ष पर था, शिवाजी के नेतृत्व में मराठों के उत्थान ने उसे गहरा आघात पहुँचाया। औरंगजेब को अपने शासन के अन्तिम 25 वर्ष दक्कन में मराठों के साथ भीषण संघर्ष में बिताने पड़े। मराठों के विरूद्ध चलने वाला यह दीर्घ संघर्ष अन्ततः मुगल साम्राज्य के पतन का कारण सिद्ध हुआ।

मराठों के इतिहास को अच्छी तरह समझने के लिए इसे दो चरणों में बाँटा जा सकता है। प्रथम चरण 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर औरंगजेब की मृत्यु तक था। इसमें शिवाजी, शम्भाजी, राजाराम और ताराबाई का काल आता है, जबकि दूसरा चरण उत्तरवर्ती मुगलकाल था। इसमें पेशवा वास्तविक शासक बन गए और मराठा साम्राज्य पेशवाओं के नेतृत्व में मराठा सरदारों का संघ बन गया। धीरे–धीरे मराठा नरेश या छत्रपति पूरी तरह पृष्ठभूमि में चले गए और अब वे केवल नाममात्र के ही नरेश रह गए। इसी दौरान मराठा क्षेत्र दक्षिण के अलावा कटक से अटक तक फैल गया। इस प्रकार मराठा महान मुगलों और ब्रिटिश सत्ता के भारत में उदय के बीच सेतु के रूप में उदित हुए। 17वीं सदी के उत्तरार्द्ध में मराठों के उत्थान के कारणों पर विद्वानों ने अनेक व्याख्यायें दी हैं। ग्रांट डफ ने लिखा है कि मराठों का उदय 'आकस्मिक अग्निकांड' की भांति हुआ, परन्तु इतिहासकारों ने मराठा इतिहास को उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों, औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीतियों और उनके परिणामस्वरूप हिन्दू जागरण, भक्ति आन्दोलन के मराठा संतों का धार्मिक आन्दोलन, जिसने मराठों के गौरव को जगाने के साथ ही घृणित जाति प्रथा पर भी वार किया और सर्वोपरि शिवाजी के चमत्कारी व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में देखा है।

मराठे महाराष्ट्र प्रदेश के निवासी थे। सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व वे परमाणुओं की तरह दक्षिण भारत में बिखरे हुए थे। इनकी आर्थिक अवस्था गयी–बीती थी और खेती–बाड़ी इनकी आजीविका का प्रधान साधन था। इनके देश की भौगोलिक स्थिति का इनके उत्थान पर गहरा असर हुआ। यह क्षेत्र पहाड़ों, नदियों एवं जंगलों से घिरा हुआ एक पथरीला एवं अनुर्वर भू–भाग है। प्रकृति ने बाह्य आक्रमणों से इसे पूर्ण सुरक्षित रखा है। अतः शत्रुओं का आक्रमण आसानी से इस पर नहीं हो सकता था। यहाँ की पर्वतीय जलवायु मराठों के लिए अत्यन्त स्वास्थ्यवर्द्धक थी। मराठे सुन्दर स्वास्थ्य के एवं बलिष्ठ होते थे। इस क्षेत्र की जमीन कंकड़ीली एवं पथरीली है और वर्षा भी बहुत कम होती थी। अतः इस बंजर भूमि से कड़ी मेहनत के बाद ही मराठे अपनी जीविकोपार्जन हेतु अन्न और फसल उपजा

पाते थे। अतः स्वभाव से वे परिश्रमी होते थे। उनमें पुरुष सुलभ गुण, सादगी, साहस, अध्यवसाय एवं आत्मविश्वास कूट–कूट कर भरे हुए होते थे। उनकी जीविकोपार्जन का दूसरा साधन लूटपाट था। मराठे स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान के कट्टर समर्थक थे। उनकी सैन्य योग्यता भी प्रशंसनीय थी। पहाड़ी प्रदेश के निवासी होने के कारण उन्होंने छापामार युद्ध शैली (गोरिल्ला युद्ध) में अत्यन्त निपुणता हासिल कर ली थी। अपने छोटे टट्टुओं पर आरूढ़ होकर वे पहाड़ों, कन्दराओं और गुफाओं में लुक–छिप कर अपने शत्रुओं से इस प्रकार युद्ध करते थे कि उनके दाँत खट्टे हो जाते थे। उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए अपने क्षेत्र में बड़े दुर्गों का भी निर्माण कर रखा था और उनकी सुरक्षा के लिए वे अपने प्राणों को भी न्योछावर कर देते थे। उनकी सामरिक श्रेष्ठता के सामने विशाल मुगल सेना भी असहाय हो जाया करती थी। इस तरह से महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति मराठों के उत्थान का एक महत्वपूर्ण कारण था।

भक्ति आन्दोलन के सन्तों, जैसे ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम और रामदास की शिक्षाओं ने मराठा राज्य के उदय में सहयोग दिया। ये सन्त जाति प्रथा का विरोध करते थे और स्थानीय मराठी भाषा में उपदेश देते थे। शिवाजी के गुरु समर्थ गुरु रामदास (सन् 1608–1682 ई0) ने अपनी पुस्तक 'दासबोध' में कर्म दर्शन का उपदेश दिया और शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को मराठों को संगठित करने और महाराष्ट्र धर्म का प्रचार करने के लिये प्रोत्साहित किया। महाराष्ट्र धर्म से उनका अभिप्राय एक ऐसे उदात्त धर्म से था, जो जातिगत भेदभाव से मुक्त था, जिसने स्त्रियों की दशा में सुधार किया, कर्मकाण्ड की अपेक्षा भक्ति को प्रधानता दी तथा बहुदेववाद के प्रचार को नियंत्रित किया। समर्थ गुरु रामदास ने इस सद्‌विचार को अपनी पुस्तक आनन्दवन भुवन में व्यक्त किया। इससे एक विशिष्ट मराठा पहचान उभर कर सामने आई, जिसने यहाँ के लोगों को एकता एवं राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित किया।

दक्षिण की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति भी मराठों के उत्थान में सहायक हुई। अहमदनगर राज्य के बिखराव और अकबर की मृत्यु के पश्चात् दक्षिण में मुगल साम्राज्य के विस्तार की धीमी गति ने मराठों के महत्वाकांक्षी सैन्य अभियानों को प्रोत्साहित किया। इस समय तक मराठे अनुभवी लड़ाकू जाति के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। दक्षिणी सल्तनतों एवं मुगलों दोनों ही पक्षों की ओर से वे सफलतापूर्वक युद्ध कर चुके थे। उनके पास आवश्यक सैन्य प्रशिक्षण और अनुभव तो था ही, जब समय आया, तो उन्होंने इसका उपयोग अपने राज्य की स्थापना के लिए किया। अन्त में शिवाजी का चमत्कारी व्यक्तित्व मराठा राज्य के उदय में प्रधान कारण बना। उनमें मराठा समाज के विभिन्न तत्वों को एक करने की अद्‌भुत क्षमता थी। वे एक कुशल सेनानायक थे। अन्य मराठा प्रमुखों, दक्षिणी सल्तनतों और मुगलों के विरूद्ध सैन्य सफलताओं ने शिवाजी को उनके जीवन काल में ही एक गाथा पुस्तक बना दिया था।इस प्रकार मराठा राज्य के उदय में अनेक तत्व उत्तरदायी थे।

3.5 सारांश

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि भारत में औरंगजेब के पश्चात मुगल साम्राज्य का विघटन हो गया। औरंगजेब के पश्चात उसके उत्तराधिकारी मुगल सम्राट उसकी तरह शक्तिशाली नहीं थे, जिसके कारण बाह्य आक्रमणों व इनकी दुर्बलता का लाभ उठाकर अनेक नये उत्तराधिकारी स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हुई। इन स्वतन्त्र राज्यों में भी एकता का अभाव था। ये परस्पर आपस में झगड़ते थे, जिस कारण इनका एकमात्र लक्ष्य केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति रह गया, जिससे भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रों में गिरावट आयी। ये विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में भी उदासीन रहे थे, जबकि यूरोपीय देशों ने इन क्षेत्रों में तीव्रता से प्रगति करने का प्रयत्न किया। भारतीय न केवल अपने आर्थिक और सैनिक साधनों की वृद्धि करने में असमर्थ रहे, बल्कि इसी अभाव के कारण उनकी बुद्धि का विकास आधुनिकता की ओर न हो सका। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव में भारतीय परम्परावादी बने रहे। इस कारण वे अपने शासन, आर्थिक ढाँचा, सामाजिक व्यवस्था आदि जीवन के किसी भी क्षेत्र में

न किसी नवीनता को जन्म दे सके और न उसमें परिवर्तन कर सके। ऐसी स्थिति में वे जीवन के किसी भी क्षेत्र में उन्नति न कर सके और पश्चिमी देशों की तुलना में बहुत पिछड़ गये। इसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि भारत अंग्रेजों का गुलाम हो गया।

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र01 मुगल साम्राज्य के विघटन के क्या कारण थे ? वर्णन कीजिये।

प्र02 मुगल साम्राज्य के पतन में आर्थिक कारणों की भूमिका का संक्षेप में वर्णन करें।

प्र03 मुगल साम्राज्य के खण्डों से बने 18वीं सदी के स्वतन्त्र राज्यों के निर्माण का वर्णन कीजिये।

प्र04 हैदराबाद राज्य के विषय में संक्षेप में वर्णन करें।

प्र05 मराठा शक्ति के उदय के कारणों का वर्णन कीजिये।

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सिन्हा, बिपिन बिहारी, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति।
2. मेहता, जे.एल., मध्यकालीन भारत का वृहत इतिहास।
3. मित्तल, ए.के., मध्यकालीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास।
4. शर्मा, एल.पी., आधुनिक भारत।
5. पाण्डे, एस.के., आधुनिक भारत।
6. नागोरी, एस.एल., मुगलकालीन भारत।